॥ न्यायस्त्र प्रमाणं स्यात् ॥

DELHI

PROJECT 39A
EQUAL JUSTICE
EQUAL OPPORTUNITY

डेथ पेनल्टी इंडिया रिपोर्ट

प्रोजेक्ट 39 A, नैशनल लॉ यूनिवर्सिटी, दिल्ली

अस्वीकरण

इस रिपोर्ट के सभी परिणाम, निष्कर्ष और विचार नैशनल लॉ यूनिवर्सिटी, दिल्ली की एकमात्र ज़िम्मेदारी हैं और उनका राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा किसी भी प्रकार से सत्यापन, पुष्टि या समर्थन नहीं करा गया है।

PROJECT 39A
EQUAL JUSTICE
EQUAL OPPORTUNITY

प्रकाशक:
नैशनल लॉ यूनिवर्सिटी, दिल्ली प्रेस
सेक्टर 14, द्वारका
नई दिल्ली 110078

अनुवादक
मुक्ता गुप्ता

आईएसबीएन
978-93-84272-20-3
@ नैशनल लॉ यूनिवर्सिटी, दिल्ली 2020
सर्वाधिकार सुरक्षित

डिज़ाइन
जेनिसिस | 9810033682

॥ न्यायस्त्र प्रमाणं स्यात् ॥

NLU DELHI

PROJECT 39A
EQUAL JUSTICE
EQUAL OPPORTUNITY

डेथ पेनल्टी इंडिया रिपोर्ट

प्रोजेक्ट 39A, नैशनल लॉ युनिवर्सिटी, दिल्ली

विषय सूची

01 प्रस्तावना 01

02 भूमिका 03

03 कार्य– प्रणाली 05

04 क़ानूनी सन्दर्भ 09

05 कार्यक्षेत्र प्रतिवेदन 16

06 सामाजिक एवम् आर्थिक परिवेश 28

07 हिरासत के अनुभव 50

08 मुक़दमा और अपील..... 64

09 क़ानूनी प्रतिनिधित्व..... 90

10 मृत्यु की प्रतीक्षा में जीवन..... 98

11 दया की माँग..... 118

12 प्रभाव 132

13 भारत में मृत्युदंड (2000–2015): एक अवलोकन 144

14 उपसंहार..... 147

प्रस्तावना

'डेथ पेनल्टी इंडिया रिपोर्ट' का यह संस्करण मूल रिपोर्ट को और सुलभ बनाने के लिए लिखा गया है ताकि हमारे शोध की व्यापक पहुँच हो सके और यह हिंदी–भाषी जज, वक़ील, राजनेता, शिक्षाविद, पत्रकार और नागरिक समाज के सदस्यों के साथ साझा हो सके। यद्यपि मूल रिपोर्ट दो खंडो में, 170 और 205 पन्नों में, विभाजित थी, किंतु यह संस्करण मूल रिपोर्ट से अधिक संक्षिप्त एवं कई मायनों में अधिक समृद्व है। चूँकि मृत्यु–दंड की सज़ा भारतवासियों के नाम पर दी जाती है और निष्पादित की जाती है, इसलिए हम सब के लिए भारत में मृत्यु–दंड प्रणाली को समझना ज़रूरी हो जाता है। भारत के लोगों तक पहुँचने की हमारी कोशिश का यह पहला क़दम है– और हम आशा करते हैं कि हम अपने विशाल और विविध देश में हर किसी तक पहुँचने के लिए अलग अलग भाषाओं में इस रिपोर्ट का अनुवाद कर सकें।

रिपोर्ट के इस संस्करण का उद्देश्य हमारे शोध को मृत्यु–दंड पाए क़ैदियों और उनके परिवार के लिए अधिक सुलभ बनाने का भी है। इसके द्वारा हम अपनी प्रशासन की समझ को उन लोगों के साथ साझा करना चाहते हैं जो जीवन के कठिनतम दंडादेश का सामना कर रहे हैं। इसको लिखने का अभिप्राय उन लोगों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना है, जिन्होंने इस शोध को पूर्ण करने में हमारी मदद की। इसलिए इस शोध पर प्रथम अधिकार उन्हीं लोगों का है।

इस रिपोर्ट का सर्वेक्षण क़ैदियों और उनके परिवारों के लिए कुछ नया नहीं होगा। परंतु शायद उन्हें अपने अनुभव दूसरों के साथ तुलना करके कुछ उपयोगी लगें। यद्यपि उनके अनुभव, अपने जीवन और परिस्थितियों में बहुत अलग एवं निजी हैं, फ़िर भी इस रिपोर्ट के द्वारा उन्हें यह पता चलेगा कि उनके संघर्ष के सहभागी दूसरे भी हैं। इसके अतिरिक्त, बंदी एवं उनके परिवारों के लिए यह रिपोर्ट, अपने वक़ील के साथ अर्थयुक्त संवाद के अभाव में, मृत्यु–दंड के विभिन्न चरणों में क़ानूनी प्रक्रिया को समझने में उपयोगी होगी। वे यह समझ सकेंगे कि किस प्रकार क़ानूनी सुरक्षा के तरीकों का बार बार उल्लंघन किया जाता है।

इस रिपोर्ट का अभिप्राय उन लोगों की आवाज़ आप सब तक पहुँचना है, जिन्हें मृत्युदंड की परिचर्चा एवं वाद–विवाद में शायद ही कभी सुना जाता हो। बावजूद इसके कि उनके जीवन पर इस सज़ा से भी गहरे निशान हैं । इस रिपोर्ट को लिखते समय हम क़ैदियों और उनके परिवार वालों के लिए हमारी ज़िम्मेदारी के प्रति पूर्णतया सचेत रहे, और आशा करते हैं कि हमने उनके साथ न्याय किया। यह उनके लिए भी मौका है

यह देखने का कि हम अपने प्रयास में सफल रहे हैं या नहीं।

अंग्रेज़ी में लिखी 'द डेथ पेनल्टी रिसर्च प्रोजेक्ट', की मूल रिपोर्ट उप–कुलपति प्रोफेसर रणबीर सिंह, प्रोफेसर श्रीकृष्ण देव राव (पूर्व रजिस्ट्रार) और प्रोफेसर जी एस बाजपेई (वर्तमान रजिस्ट्रार) के समर्थन के बिना आयोजित नहीं की जा सकती थी । देश भर में जेलों तक पहुँचने की सुविधा के लिए हम राष्ट्रीय क़ानूनी सेवा प्राधिकरण (National Legal Services Authority) और विशेष रूप से श्रीमती आशा मेनन (National Legal Services Authority की पूर्व सदस्य सचिव) के भी आभारी हैं।

हम एक बार फ़िर से सभी छात्र शोधकर्ताओं, स्वयंसेवकों और विशेषज्ञों को धन्यवाद देना चाहते हैं जिनके बिना यह परियोजना को अंजाम तक पहुँचाना मुश्किल था। इनका योगदान मूल रिपोर्ट के खंड 1 में स्वीकार किया गया है।

अंत में, हम सुश्री ऋषिका सहगल को दो भाग की मुख्य रिपोर्ट को सारांशित कर इस संस्करण को तैयार करने के प्रयासों के लिए, श्रीमती मुक्ता गुप्ता को उसका हिंदी अनुवाद करने के लिए, और श्रीमती सरिता कश्यप को अनुवाद संपादित करने के प्रयासों के लिए धन्यवाद करते हैं। इस अनुवादित संस्करण की अवधारणा और प्रकाशन में सुश्री श्रेया रस्तोगी, सुश्री पूर्णिमा राजेश्वर और सुश्री मौलश्री पाठक द्वारा प्रदान किए गए बहुमूल्य प्रशासनिक समर्थन के लिए हम कृतार्थ हैं।

– डॉ अनूप सुरेंद्रनाथ
नई दिल्ली

भूमिका

मृत्युदंड अनुसंधान परियोजना भारत में सज़ा–ए–मौत पाने वाले क़ैदियों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का दस्तावेज़ीकरण (प्रोफ़ाइल को डॉकयुमेंट) एवम् न्याय प्रणालियों के विभिन्न पहलुओं के साथ उनकी बातचीत समझने का प्रयास है। इस परियोजना का उद्देश्य हमें भारत में मृत्युदंड के तरीकों की व्यापक और गहन समझ को विकसित करने की दिशा में रहा है।

मृत्युदंड एक अनूठी सज़ा है, क़ैद के किसी भी रूप से काफी अलग । मृत्युदंड सज़ा के तहत एक क़ैदी को जीवन और मौत के बीच जिस अनिश्चितता को झेलना पड़ता है, यह तर्क इस परियोजना के मूल में है, इसकी नींव में है। यह पहलू मृत्युदंड को क़ैद के किसी भी अन्य रूप से बिल्कुल भिन्न करता है। कार्यभार से दबी न्यायपालिकाएँ, सुविधाओं के अभाव से जूझती कारागार प्रणाली और आर्थिक रूप से कमज़ोर क़ैदियों को प्राप्त लचर क़ानूनी सहायता के कारण मृत्युदंड पाने वाले क़ैदियों तक सही जानकारी पहुँच ही नहीं पाती। क़ानूनी प्रक्रिया से बेखबर क़ैदी, मौत के खौफ से लगातार जूझता रहता है और उसकी हालत बद से बदतर होती जाती है।

मुद्दा यह है कि 'सज़ा–ए–मौत', जो और सज़ाओं से बिल्कुल अलग है, उसे क़ानून किस तरह से लागू कर रहा है। इस परियोजना का एक बड़ा हिस्सा मृत्युदंड पाने वालों के क़ानूनी ढाँचे के विभिन्न स्तरों पर तथ्यों की सच्चाई या कमी को जानने के लिए समर्पित है। क़ैदी और उनके परिवारों से हुई बातचीत के दौरान सामने आई आम चिंताओं को हमने अपने शोध में पेश करने का प्रयास किया है। उनकी बातों ने हमें यह सोचने पर मजबूर किया कि हमारी न्याय प्रणाली में मौत की सज़ा के उपयोग में कई गंभीर मुद्दे हैं। इसके अलावा, यह रिपोर्ट क़ैदियों के लिए उपलब्ध वक़ीलों (सरकारी या ग़ैर सरकारी) की गुणवत्ता पर प्रकाश डालती है।

यह रिपोर्ट मृत्युदंड के तहत क़ैदियों की सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करती है। हमने पाया है कि मृत्युदंड की सज़ा वर्ग, लिंग, जाति, धर्म और शैक्षिक स्तर से जुड़ी है और अधिकतर समाज में हाशिए पर रहने वाला एक विशेष वर्ग ही इसे झेलता है। हालाँकि हमारे निष्कर्ष के आधार पर यह तर्क करना निहायत ग़लत होगा कि आपराधिक न्याय प्रणाली में प्रत्यक्ष भेदभाव है, तथापि हमारे निष्कर्ष आपराधिक न्याय प्रणाली के प्रभाव को समझने में महत्वपूर्ण होंगे, जो कुछ वर्गों को और भी हाशिये पर कर रहा है। यह बात उन परिवारों के अनुभवों से स्पष्ट होती है, जिनके घरवालों को गिरफ़्तार कर सज़ा सुनाई गई है। एक सदस्य की गिरफ़्तारी और उसका न्याय प्रणाली के साथ संघर्ष का असर पूरे

परिवार की आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति पर गहराई से पड़ता है।

रिपोर्ट में एक अध्याय है, जिसमें उन लोगों के स्थितियों का वर्णन है, जिन्हें पिछले 15 वर्षों में मृत्युदंड मिला है। यह अध्याय भारत में विभिन्न अदालतों में दिये गए निर्णयों का विश्लेषण करके लिखा गया है। यह हमें निचली अदालतों द्वारा लगाए गए मृत्युदंड के फ़ैसलों की प्रवर्तियाँ दिखाने में सक्षम है और सबूत मिलता है कि निचली अदालतों में दिये गए फ़ैसले शायद ही मायने रखते हों। लेकिन यह बात साफ है कि मृत्यु दंड के फ़ैसले को लागू होने के इंतज़ार में यकीनन क़ैदी लंबे समय तक खौफ की ज़िंदगी जीने को मजबूर रहता है।

हमारे शोध के माध्यम से मृत्युदंड प्रबंधन के इर्द–गिर्द उभरने वाली चिंताएं बुनियादी और गंभीर हैं। आपराधिक न्याय प्रणाली में यह संकट बहुत लंबे समय से है जो और भी चिंतनीय है, क्योंकि इस पर भरोसा रखने के परिणाम कितने भयानक होंगे, इसका अंदाज़ा लगाना मुश्किल है।

कार्य–प्रणाली

मृत्युदंड अनुसंधान परियोजना कार्यान्वित करने के लिये, उन सभी क़ैदियों का साक्षात्कार किया गया जिन्हें जून 2013 से जनवरी 2015 के बीच मृत्युदंड सुनाया गया। अध्ययन के लिए भारत के प्रत्येक राज्य के क़ैदियों को चिन्हित किया गया। शोधकर्ता जिस दिन राज्य में प्रवेश करते थे उसी दिन उस क़ैदी से मिलने की तारीख़ तय कर ली जाती थी। उन क़ैदियों के परिवारों से भी साक्षात्कार किया गया।

मृत्यु–दंड पाए क़ैदियों की गणना प्रमाणित करना

आरम्भ में ही हमने अनुभव किया कि मृत्युदंड पाए क़ैदियों की पूरी संख्या प्रामाणिक सूत्रों से उपलब्ध नहीं है। इसलिए हमारा पहला काम था, उनकी सही संख्या सुनिश्चित करना। राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (नालसा) के ज़बर्दस्त सहयोग से हम राज्य विधिक सेवा प्राधिकारी, ज़िला विधिक सेवा प्राधिकारी, महानिरीक्षक/कारागार अधीक्षक और वो सभी जेल जहाँ मृत्युदंड पाए क़ैदी रखे जाते थे, इन सब सेवाओं से संपर्क कर सके। भारत में प्रत्येक जेल और राज्य में मृत्यु की सज़ा के तहत क़ैदियों की सूचियाँ प्राप्त करनें के लिए हमनें इन संस्थानों के साथ पत्राचार के माध्यम से, भारत मे प्रत्येक जेल और राज्य मे मृत्यु की सज़ा के तहत कैदियो की सूचियाँ प्राप्त करने के लिए हमने इन संस्थानो के साथ पत्राचार के माध्यम से, सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के तहत जानकारी के लिए सूचना अनुरोध और जेल यात्राओं के द्वारा इकट्ठा करी। इस तरह हम मृत्युदंड पाए क़ैदियों की सूची पाने में सफल हुए। हाई कोर्ट में जिन क़ैदियों के मामले मृत्युदंड की पुष्टि की प्रतीक्षा में थे, उनकी सूची हमने रजिस्ट्रार जनरल ऑफ कोर्ट से प्राप्त की एवं उन्हीं से हमने दोबारा इस गणना की जाँच भी करवाई।

मृत्युदंड पाए क़ैदियों तक पहुँच

भारतीय संविधान के अनुसार, सभी जेल संदर्भित राज्य के आधीन होते हैं। इसलिए 'नालसा' के सहयोग से हमने अलग–अलग राज्यों के गृह–विभाग से अनुमति माँगी कि हम जेल मे बंद, मृत्युदंड पाए क़ैदियों से मिल कर उनका साक्षात्कार कर सकें। कुछ राज्यों ने हमें पूरा सहयोग दिया और हमारे निवेदन पर तुरंत कार्यवाही की, लेकिन कुछ राज्यों को मनाने के लिये हमें कई पत्र एवं बैठकें करनी पड़ीं। महाराष्ट्र सरकार से अनुमति पाने में लगभग एक वर्ष लग गया। तमिलनाडू सरकार ने तो इजाज़त ही नहीं दी। बार–बार यही कहते रहे कि उन्हें दिल्ली की एजन्सियों द्वारा हमारे शोधकर्ताओं की सुरक्षा मंजूरी का इंतज़ार है। मालूम नहीं वो कौनसी एजन्सियॉ थीं, जिनके संपर्क में वे थे। कुल मिलाकर 385 मृत्युदंड पाए क़ैदियों में से 373 क़ैदी हमारी परियोजना का हिस्सा बने।

इन 373 में से भी 17 क़ैदियों का हम विशेष कारणों के चलते साक्षात्कार नहीं कर पाये। कुछ तो इलाज के लिये दूसरे शहरों में भेज दिये गये थे, कुछ मानसिक रोगी थे और कुछ का मुक़दमा अन्य राज्यों में चल रहा था। महाराष्ट्र सरकार ने हमें पाँच क़ैदियों से साक्षात्कार की इजाज़त नहीं दी, क्योंकि उनको मृत्युदंड आतंकवादी गतिविधि और बम–ब्लास्ट केस में दिया गया था। ये पाँचों क़ैदी मुसलमान थे और उनको 1993 के मुंबई बम–ब्लास्ट, 2003 के मुंबई ट्विन कार बम–ब्लास्ट और 2010 में पुणे जर्मन बेकरी केस के लिए दंड मिला था। इसके बावजूद ये सभी 17 क़ैदी हमारी शोध में शामिल किए गये हैं, क्योंकि उनके केस के बारे में हमें उनके परिवार और उनके वक़ीलों से साक्षात्कार द्वारा महत्वपूर्ण दस्तावेज़ एवम् तथ्यपूर्ण जानकारी मिली थी। इसके अतिरिक्त 85 क़ैदियों के परिवारों से हम साक्षात्कार नहीं कर पाये। इसके कई कारण थे जैसे, कुछ परिवारों ने साक्षात्कार से इन्कार कर दिया (कुछ का क़ैदियों से संबंध–विच्छेद होने के कारण), कई परिवार को खोज निकालनें में हम असमर्थ रहे और कई परिवार ऐसे इलाक़ों में थे जहाँ पहुँच पाना बहुत मुश्किल था।

क़ैदी और उनके परिवारों से साक्षात्कार

क्षेत्रीय साक्षात्कार से पहले, हमने उन विशेषज्ञों से विचार–विमर्श किया, जिन्हें मृत्युदंड प्रणाली की अच्छी जानकारी थी। तत्पश्चात, साक्षात्कार हेतु क़ैदी और उनके परिवारों के लिये अलग–अलग प्रश्नावली तैयार की। उन्मुखीकरण सत्र में शोधकर्ताओं को अभियोक्ता, पुलिस जाँच–कर्मी, बचाव–पक्ष के वक़ील, मुक़दमें एवं अपील के न्यायाधीश और अन्य विद्वानों से मिलवाया गया। इसके अलावा हमने सरकारी रिपोर्टों पर सामूहिक परिचर्चा, केस के फ़ैसले, आपराधिक क़ानून से जुड़ी फिल्में और लंबी रिपोर्टों के सारांश एवं अंश तैयार किये ।

इस परियोजना में साक्षात्कार की नीति इस तरह बनाई गई कि पहले एक–एक कर के हर क़ैदी से साक्षात्कार किया गया फ़िर उनके घर जा कर, परिवार के सदस्यों से बात चीत की गई। किंतु दुर्भाग्यवश हमें साक्षात्कार के लिये केवल एक ही मौक़ा मिला। इसलिए हमारी जानकारी सीमित ही रही। यदि हमें और मौक़े मिलते तो हमारा ये आलेख और अधिक गहन होता किंतु राज्य सरकार से अनुमति न मिलने के कारण ये संभव न हो सका ।

शोधकर्ताओं को सख़्त हिदायत दी गई थी कि साक्षात्कार सहज बात–चीत की तरह हो न कि ऐसे मानों कोई तहकीकात की जा रही हो, तथा प्रश्नोतरी का इस्तेमाल कम से कम किया जाए और अगर करना भी हो तो किसी संदर्भ में ही हो। इसलिए हमें हर प्रश्न का उत्तर नहीं मिल सका जो कि विभिन्न मुद्दों पर मिली प्रतिक्रियाओं की अलग संख्या से ज़ाहिर है।

सरकार ने अनुमति नहीं दी, इसलिए हम लोग अपनी रिकॉर्डिंग मशीन जेल के अन्दर नहीं ले जा पाए। हाथ से लिखे नोट्स पर ही निर्भर रहना पड़ा। लेकिन घर पर परिवार के सदस्य भी वॉइस रिकॉर्डर से सहमे हुए थे और खुल कर बात नहीं कर पा रहे थे। अतः हमने एहतियात बरती कि साक्षातकार जेलर या पुलिस अधीक्षक के ऑफिस में न हों। कुछ जेलों में पहरेदारों को कुछ दूरी पर खड़ा कर रखा था ताकि क़ैदी उनकी नज़र में रहें। इससे क़ैदियों को बेहिचक बोलने में बाधा हुई और हमारी मुश्किलें बढ़ गयीं। घर पर भी परिवार वालों से साक्षात्कार के दौरान उस इलाक़े के लोग कुतूहलवश इकट्ठा हो जाते थे। फलस्वरूप, परिवार वाले पडौसियों के सामने क़ैदियों के विषय में परिचर्चा नहीं करना चाहते थे। हमें इस समस्या का समाधान खोजना पड़ा। मुलाक़ात का समय एवं स्थान कहीं और निर्धारित किया जिससे वो खुल कर बात कर सकें। इस बात का फ़ैसला करना कि क़ैदी दोषी हैं अथवा नहीं, हमारा ध्येय क़तई नहीं था। इस बात की चर्चा भी कहीं नहीं की गयी है। यह रिपोर्ट साक्षात्कार द्वारा एकत्रित उनके सामाजिक तथा आर्थिक जीवन शैली का वर्णन है। हम ने शुरू में ही समझ लिया था कि उन लोगों के पास कोई लिखित एवं ठोस सबूत नहीं होने के कारण उनकी किसी भी बात की पुष्टि करना व्यर्थ था।

क़ैदियों एवं उनके परिवारों की पहचान की गोपनीयता एवम् सुरक्षाः

सब क़ैदियों और उनके परिवारों को यह आश्वासन दिया गया कि उन्होंने जो भी जानकारी दी है, वह केवल शोध और उसके प्रकाशन के लिये ही प्रयोग की जायेगी। यह बात मौखिक रूप से समझा कर उन्हें अंग्रेज़ी एवं स्थानीय भाषा में लिखित में भी दी गई। उनसे कहा गया कि उन पर किसी भी तरह का दवाब नहीं है कि पूछे गए हर सवाल का जवाब दें। इस तरह हमने उनको अपने अनुसंधान एवं परियोजना से अवगत करवाया।

गोपनीयता एवं सुरक्षा रखने के लिये निम्नलिखित माप–दण्ड अपनाए गएः

* सब क़ैदियों के नाम उनके परिवारों सहित बदल कर काल्पनिक नाम दिये गए हैं। यदि किसी जीवित व्यक्ति से यह नाम मेल खाता हो तो यह केवल मात्र संयोग ही होगा।
* किसी के गाँव, शहर, कस्बा, ज़िला, यहाँ तक कि राज्य के नाम का भी उल्लेख नहीं है।
* जिन अदालतों में क़ैदी पर मुक़दमा चल रहा है, निचली से ले कर हाई–कोर्ट तक उनका नाम भी नहीं दिया गया है।
* वह तारीखें जो अहम हैं मसलन, अपराध का

समय, गिरफ़्तारी का समय, तीनों कोर्ट के फ़ैसले कब और कहाँ हुए, सब छुपाए गए हैं। भले ही वो फ़ैसला निचली अदालत का हो, हाई–कोर्ट का हो या सुप्रीम कोर्ट का।

* दया–याचिका की अपील की सुनवाई की तारीख भी प्रकाशित नहीं की गई है।
* उन मुक़दमों का ज़िक्र भी नहीं किया गया है, जिनके फ़ैसले उन क़ैदियों से संबधित हैं, जो हमारे अनुसंधान से जुड़े हैं।

समीक्षा एवं विश्लेषणः

समीक्षा एवं विश्लेषण की टीम के निरंतर प्रयास के बाद क्षेत्रीय साक्षात्कार से संकलित विषय–वस्तु को रूप–रेखा दी गई। इसका विश्लेषण किया गया। तत्पश्चात् इस विश्लेषण को माइक्रोसॉफ़्ट एक्सएल में पुनरावलोकन करने में आठ महीने लग गए। फ़िर नियमावली बनाने के लिये माइक्रोसॉफ़्ट एक्सएल के साथ डेटा विज़वुलाईज़ेशन सॉफ़्टवेर्स का भी इस्तेमाल किया गया। जो तस्वीर सामने आई उससे तालिका एवं लेखा–चित्र बनाये गए। मूल विषय को कोड किया गया और फ़िर उसका गुणात्मक विश्लेषण किया गया।

कार्य प्रणाली का पुनरवलोकन

इस रिपोर्ट को हम दूसरे तरीक़े से भी बना सकते थे जिससे कार्य में इतना विलंब न होता। क़ैदियों के परिवारों को खोजने में हमने बहुत समय गँवाया। यह भी दुर्भयपूर्ण है की क़ैदियों के निचली अदालत के वकीलों के साथ साक्षात्कारों को हम पूरा कर पाने में असमर्थ रहे। यह परियोजना अपने–आप में एक बड़ी चुनौती थी। इसका संचालन करना बेहद संवेदनशील और प्रयोगात्मक था। हमने इससे बहुत कुछ सीखा।

तटस्थता

मृत्युदंड की इस अनुसंधान परियोजना में शोधकर्ताओं के रवैये से कार्य में कोई रुकावट नहीं आई अपितु काफी सहयोग मिला। उन्हें स्पष्ट आदेश थे कि क़ैदी और उनके परिवार को किसी प्रकार की सहायता नहीं दी जायेगी– जैसे रुपया–पैसा, भोजन, कपड़े इत्यादि। क़ैदी और परिवारों को साफ–साफ बता दिया गया था कि उनसे साक्षात्कार केवल अनुसंधान के लिए है, उनकी सहायता करने के लिये नहीं। फ़िर भी क़ैदी हमसे बार–बार अनुरोध करते रहे कि हम दुनिया का ध्यान उनके हाल की तरफ खींचे और बेरहम क़ानून के अन्याय को उजागर करें।

क़ानूनी सन्दर्भ

ग्राफ़िक 1:

मृत्युदंड के मामलों के चरण

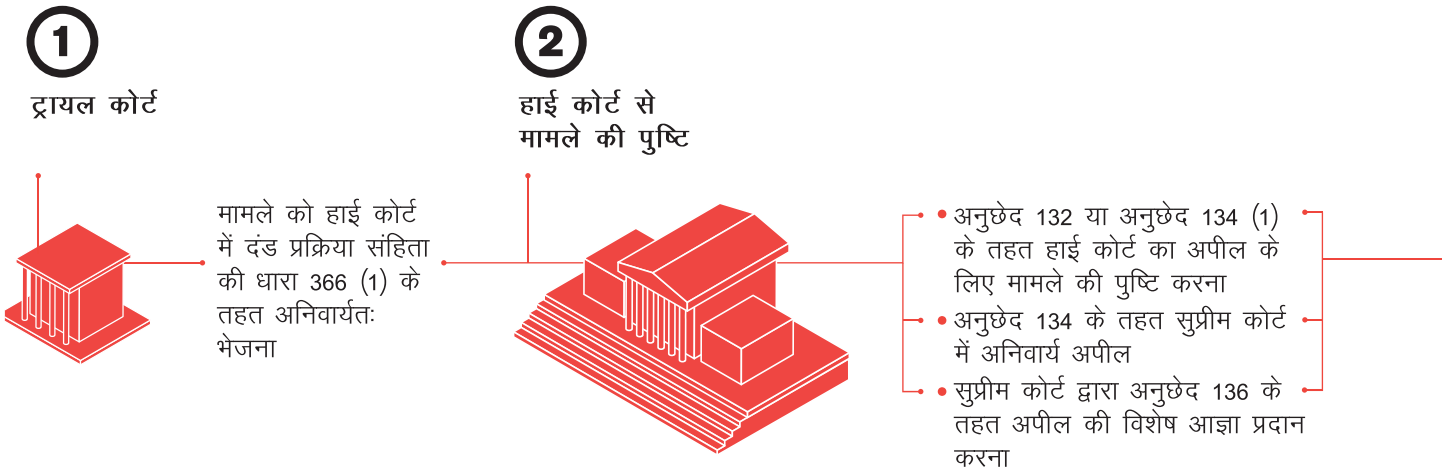

भारत में 18 केंद्रीय क़ानूनों में से 59 धाराएँ मृत्युदंड प्रदान करती हैं। **(तालिका 1)**[1] । 59 धाराओं में से 12 भारतीय दंड संहिता के तहत हैं। हमारे लिए सभी 29 राज्यों से ऐसी जानकारी संकलित करना सम्भव नहीं था क्योंकि सम्बंधित राज्य क़ानून तक पहुँचना बेहद मुश्किल था।

मृत्युदंड के मामलों के चरण

आम तौर पर मृत्युदंड के मामले सेशन कोर्ट में आयोजित किए जाते हैं। **(ग्राफ़िक 1)**। दंड प्रक्रिया संहिता 1973, स्पष्ट रूप से आपराधिक मामलों को दो अलग चरणों में मुहैया करवाती है। पहले चरण में अभियुक्त के अपराध पर निर्णय लेने के लिए अदालत को नियमानुसार सबूत की आवश्यकता होती है। एक बार जब आरोपी का अपराध सिद्ध हो जाता है, तब एक अलग सुनवाई होनी चाहिए।[2] उपयुक्त सज़ा निर्धारण करने के लिए न्यायालय कई महत्वपूर्ण तथ्यों को नज़र

1. विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग द्वारा तैयार केंद्रीय क़ानूनों की सूची जिसमें मृत्यु के द्वारा दंडनीय अपराध शामिल हैं। इनको http://www.indiacode.nic.in/ पर प्रकाषित किया गया है।

2. धारा 235(2), दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

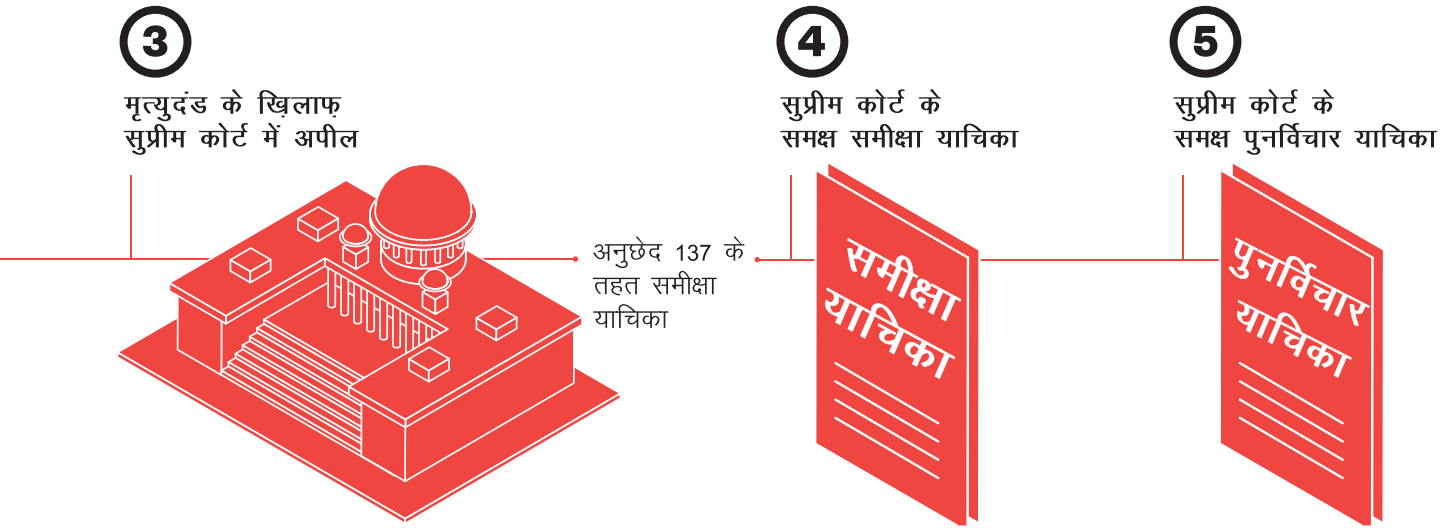

तालिका 1:

केंद्रीय क़ानून जिनमें अपराधों पर मृत्युदंड दिए जा सकता है।

वायु सेना अधिनियम	1950
आयुध अधिनियम	1959
भारतीय सेना अधिनियम	1950
असम राइफ़ल अधिनियम	2006
सीमा सुरक्षा बल अधिनियम	1968
तटरक्षक बल अधिनियम	1978
सती (रोकथाम) अधिनियम	1987
दिल्ली मेट्रो रेल्वे (संचालन और अनुरक्षण) अधिनियम	2002
जिनेवा कन्वेन्शन अधिनियम	1960
भारत तिब्बत सीमा पोलीस बल अधिनियम	1992
स्वापक औषिधि और मनः प्रभावी पदार्थ अधिनियम	1985
भारतीय नौसेना अधिनियम	1957
पेट्रोलियम और खनिज पाइपलाइन (उपयोगकर्ता के अधिकार का अधिग्रहण) अधिनियम	1962
सशस्त्र सीमा बल अधिनियम	2007
अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम	1989
समुद्री नेविगेशन और महाद्वीपीय शेल्फ पर निश्चित प्लेटफॉर्म की सुरक्षा के ख़िलाफ़ गैरक़ानूनी कृत्यों का दमन अधिनियम	2002
गैरक़ानूनी गतिविधियां प्रतिबन्ध अधिनियम	1967
भारतीय दण्ड संहिता	1860

में रखता है। यदि मृत्युदंड का फ़ैसला होता है तो सेशन कोर्ट के लिए ज़रूरी है कि वो विशेष कारणों को रिकॉर्ड करे।[3]

यह भी ज़रूरी है कि सेशन कोर्ट द्वारा दी गई मृत्युदंड की सज़ा की पुष्टि हाई कोर्ट करे।[4]

इसके अतिरिक्त कुछ केंद्रीय क़ानून ऐसे हैं, जो दंड प्रक्रिया संहिता[5] के आवेदनों को सम्मिलित नहीं करते। इसलिए भले ही क़ैदी अपील करता है या नहीं, सेशन कोर्ट द्वारा लगाई गई मौत की सज़ा को पुष्टि के लिए सम्बंधित हाई कोर्ट में भेजा जाता है।

कुछ परिस्थितियों को छोड़ कर मृत्युदंड पाए क़ैदियों को सुप्रीम कोर्ट में अपने मामले की सुनवाई का कोई अधिकार उपलब्ध नहीं होता है। आपराधिक मामलों में संविधान के अनुछेद 132 के तहत सप्रीम कोर्ट के सामने अपील रखी जा सकती है, अगर हाई कोर्ट यह प्रमाण पत्र दे कि इस मामले में उन क़ानूनी सवालों को शामिल किया गया है जो संविधान की व्याख्या से सम्बंधित हैं। सुप्रीम कोर्ट में संविधान के अनुछेद 136 के तहत भी मामला दर्ज किया जा सकता है। यह न्यायालय के विवेक पर निर्भर है कि जो मामले स्पेषल लीव पेटिषन (एसएलप) कि तरह दायर होते है, वह उनको सुनना चाहता है या नहीं। सुप्रीम कोर्ट ने शायद ही कभी मृत्युदंड पाए क़ैदी की अपील सुनने से इंकार किया है लेकिन फ़िर भी इस तरह के इंकार की काफ़ी घटनाएँ सामने आई हैं, जिसके कारण यह गम्भीर चिंता का कारण बन गया है। पिछले दशक में 'एसएलप' के तहत 11 क़ैदियों के 9 मामलों को बिना गुण–दोष सुने शुरुआती चरण में ही ख़ारिज कर दिया गया था। **(तालिका 2)**

3. धारा 354 (3), दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

4. धारा 366, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

5. वायुसेना अधिनियम, 1950; सेना अधिनियम, 1950; असम राइफ़िल अधिनियम, 2006; सीमा सुरक्षा बल अधिनियम, 1968; भारतीय तट रक्षक अधिनियम, 1978; भारत–तिब्बत सीमा पुलीस बल अधिनियम,1992; नौसेना अधिनियम 1957; सशस्त्र सीमा बल अधिनियम, 2007; और आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1987

तालिका 2:

सुप्रीम कोर्ट द्वारा 2004 के बाद से जिन 'विशेष आज्ञा' की याचिकाओं को शुरुआत में ही ख़ारिज कर दिया गया

क़ैदी का नाम	याचिका ख़ारिज होने की तिथि	न्यायाधीश
लाल चँद	फ़रवरी, 2004	बी.एन. अग्रवाल, ए.आर. लक्षमनन, JJ.।
ज़फ़र अली	अप्रैल, 2004	दोराईस्वामी राजू, अरिजित पसायत, JJ.।
तोते दिवान	अगस्त, 2005	बी.पी. सिंह, एस.एच. कपाडिया, JJ.।
संजय	जुलाई, 2006	बी.पी. सिंह, अल्तमास कबीर, JJ.।
बन्दु	जुलाई, 2006	बी.पी. सिंह, अल्तमास कबीर, JJ.।
द्यानेश्वर बोरकर	जुलाई, 2006	बी.पी. सिंह, अल्तमास कबीर, JJ.।
मगन लाल	जनवरी, 2012	एच.एल. दत्तु, सी.के. प्रसाद, JJ.।
जितेंद्र @ जीतू , बाबू @ केतन और सन्नी @ देवेंद्र	जनवरी, 2015	एच.एल. दत्तु, CJI, ए.के. सीकरी, आर.के. अग्रवाल, JJ.।
बाबासाहेब मारुति काम्बले	जनवरी, 2015	एच.एल. दत्तु, CJI, ए.के. सीकरी, आर. के. अग्रवाल, JJ.।

अनुछेद 132 और 136 के अलावा, संविधान के अनुछेद 134 के अंतर्गत मृत्युदंड मामलों में निम्नलिखित तीन उदाहरणों में सुप्रीम कोर्ट में अपील अनिवार्य है:

1 जब निचली अदालत के रिहाई के आदेश को हाई कोर्ट रद्द कर देता है और मृत्युदंड लागू कर देता है।

2 जब हाई कोर्ट निचली अदालत से मुक़दमा वापिस ले कर अपने कोर्ट में चलाता है और फ़िर अभियुक्त को मृत्युदंड देता है।

3 जब हाई कोर्ट यह प्रमाणित करता है कि मामला सुप्रीम कोर्ट में अपील के लिए उपयुक्त है।

सुप्रीम कोर्ट के निर्णय लेने के बाद उस फ़ैसले पर पुनर्विचार की अपील तीस दिनों के अंदर, अनुछेद 137 के तहत दायर की जा सकती है। सितम्बर 2014 में, सुप्रीम कोर्ट की पाँच न्यायाधीशों की बेंच ने मृत्युदंड के मामलों में दायर की गयी पुनर्विचार याचिकाओं को खुली अदालत में सुनवाई करने का आदेश दिया[6]।

6. मोहम्मद आरिफ़ बनाम रेजिस्ट्रार, भारतीय सुप्रीम कोर्ट (2014) 9 एससीसी 737, पैराग्राफ़ 40–41; न्यायाधीष चमलेश्वर द्वारा व्यक्त असंतोष भी देखें (2014) 9 एससीसी 762

इससे पहले मृत्युदंड के पुनर्विचार की अपील पर फ़ैसला अन्य मामलों की तरह खुली अदालत में नहीं बल्कि न्यायाधीशों के चेंबर में लिया जाता था।

यदि कोई पुनर्विचार याचिका ख़ारिज कर दी जाती है तो सुप्रीम कोर्ट अपने "निर्णय या आदेश को दोबारा जांचने की अनुमति दे सकता है, अगर यह स्थापित हो जाता है कि न्यायिक सिद्धान्तों का उल्लंघन हुआ है या फ़िर शंका हो कि न्यायाधीश ने पक्षपात किया है।[7] पुनर्विचार याचिका सामान्य तौर पर मौखिक तर्कों के बग़ैर तय होगी जब तक सुप्रीम कोर्ट अन्य आदेश ना दे।

मृत्यु–दंड पाए हुए व्यक्ति, राज्यपाल (संविधान का अनुछेद 161) या भारत के राष्ट्रपति (अनुछेद 72) से दया याचिका या माफ़ी के लिए माँग कर सकते हैं।[8] राज्यपाल या राष्ट्रपति संवैधानिक रूप से दया–याचिका के कार्यकारी अधिकारी की सलाह से बँधे हैं लेकिन संविधान राज्यपाल/राष्ट्रपति को निर्णय लेने की समयावधि के बारे में चुप है।[9] राज्यपाल और राष्ट्रपति की शक्ति न्यायिक निर्णय से भिन्न होती है। वह अभियुक्त के अपराध को मिटा नहीं सकती। इस शक्ति का प्रयोग केवल अदालत के सामने रखे हुए सबूतों तक ही सीमित नहीं है वे अन्य तथ्यों की जाँच भी कर सकते हैं, जो सज़ा से सम्बंधित हैं– जैसे क़ैदी की उम्र, सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियाँ, लिंग और मानसिक स्वास्थ्य। यह ज़रूरी नहीं है कि कार्यकारी अधिकारी कारण बताएँ कि माफ़ी क्यों स्वीकार हुई या ख़ारिज कर दी गई।

राज्यपाल या राष्ट्रपति द्वारा दया–याचिकाएँ ख़ारिज करने के निर्णय सीमित आधार पर न्यायिक समीक्षा के आधीन है। जनवरी 2014 में सुप्रीम कोर्ट ने शत्रुघ्न चौहान बनाम भारत संघ,[10] में कहा कि राज्यपाल अथवा राष्ट्रपति अन्य बीच में आने वाली परिस्थितियों पर ग़ौर किए बिना यदि दया याचिका ख़ारिज करते हैं तो यह संविधान के अनुछेद 21 के तहत, जीवन के अधिकार का उल्लंघन होगा और मृत्युदंड को आजीवन कारावास में बदलने के लिए पर्याप्त आधार होगा। अन्य परिस्थितियों में,

7. रूपा अषोक हुर्रा बनाम अषोक हुर्रा और अन्य (2002) 4 एससीसी 388

8. केंद्र षासित प्रदेषों में मृत्यु की सज़ा पाए व्यक्ति केवल भारत के राष्ट्रपति को माफ़ी की याचिका प्रेषित कर सकते हैं।

9. षमषेर सिंह बनाम पंजाब राज्य (1974) 2 एससीसी 831, पैराग्राफ़ 57

10. (2014) 3 एससीसी 1

याकूब मेमोन

मार्च 1993 में हुए मुंबई बम विस्फोटों के सम्बंध में, याकूब अब्दुल रज़ाक़ मेमोन को अगस्त 1994 में गिरफ़्तारी किया गया। 155 महीने (12 साल, 11 महीने) तक सुनवाई के बाद, विषेष अदालत, आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1987 ने जुलाई 2007 में उसे मौत की सज़ा दी। 'टाडा' के प्रावधानों के अनुसार उसके फ़ैसले हाई कोर्ट के पास नहीं जा सकते थे, केवल सुप्रीम कोर्ट को ही उसका अधिकार है। याकूब मेमोन के मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने 68 महीने बाद (पाँच साल और आठ महीने) मार्च 2013 में, मृत्युदंड की पुष्टि की। मौत की सज़ा में 96 महीने (आठ वर्ष) रहने के बाद 30 जुलाई 2015 को मेमोन को फाँसी दी गई।

पागलपन/ मानसिक बीमारी/ सिज़ोफ़्रेनिया, एकांत कारावास, कोर्ट के फ़ैसले जो ग़लत घोषित हो गए है[11] और दया–याचिका के फ़ैसले में ग़लत कार्यवाही होना शामिल है। यदि कार्यकारी अधिकारी, फ़ैसले में अस्पष्ट एवं अनुचित देरी करते हैं तो उसे यातना के रूप में माना जाएगा और यह सज़ा कम करने का आधार होगा।[12]

भारत में मृत्युदंड फाँसी द्वारा दिया जाता है और फाँसी की इस सज़ा को सुप्रीम कोर्ट द्वारा संविधान के प्रावधानों के अनुरूप होना चाहिए।[13] सुप्रीम कोर्ट ने इलाहाबाद हाई कोर्ट के फ़ैसले की पुष्टि करते हुए कहा कि मृत्यु वारंट जारी करते हुए फाँसी की तारीख़ व समय और स्थान तय करने के लिए किस प्रक्रिया का पालन करना चाहिए।[14] स्वतंत्रता के बाद भारत में फाँसी पर चढ़ाए गए क़ैदियों की कुल संख्या के मंत्रालय/ एजंसी द्वारा बनाए गए कोई सरकारी रिकॉर्ड नहीं है। सभी जेलों से इस जानकारी को इकट्ठा करने में हमारी कोशिश नाकामयाब रही। जेलों से मिली जानकारी यहाँ संग्रहित हैः http://www.project39a.com/prisoners-executed-in-india-since-independence-1/

मृत्युदंड की संवैधानिकता

भारत में मृत्युदंड की संवैधानिकता को मई 1980 में सुप्रीम कोर्ट के पाँच न्यायाधीशों की पीठ ने सही ठहराया।[15] इस के अनुसार मृत्युदंड, संविधान के अनुछेद 21– जीवन के अधिकार का उल्लंघन नहीं कर रहा है लेकिन बहुमत ने यह माना कि मृत्युदंड केवल 'विरल से विरलतम' मामलों में ही लागू करना चाहिए; जिसमें ये ध्यान रखना चाहिए कि 'अपराध की परिस्थितियों' के साथ–साथ 'अपराधी की परिस्थितियों' के सम्बन्ध में, उत्तेजक और क्षमा–योग्य कारक क्या हैं। इस निर्णय में यह नोट किया गया कि मृत्युदंड केवल

11. न्यायालय के निर्णय को ग़लत ठहराया जाता है अगर यह क़ानूनी प्रावधान से या पिछले निर्णय से बेख़बर होते हैं

12. शत्रुघ्न चौहान बनाम भारत संघ (2014) 3 एससीसी 1, पैराग्राफ़ 49

13. दीना बनाम भारत संघ (1983) 4 एससीसी 645, पैराग्राफ़ 81

14. शबनम बनाम भारत संघ (2015) 6 एससीसी 702, पैराग्राफ़ 21; "पीपल यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइटस" बनाम भारत संघ पीआइएल संख्या 57810 of 2014 (इलाहाबाद उच्च न्यायालय)

15. बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य (1980) 2 एससीसी 684। बहुमत में मुख्य न्यायाधीष वाई वी चंद्रचूड और न्यायाधीष आर एस सरकारिया, ऐ सी गुप्ता और एन एस ऊँटवालिया ने मृत्युदंड की संवैधानिक वैधता की पुष्टि करी। इससे असहमत राय न्यायाधीष पी एन भगवती ने अगस्त 1982 में दी। उन्होंने मृत्युदंड को असंवैधानिक बताया। मृत्यु–दंड की संवैधानिकता पर पहले ही अक्टूबर 1972 में सुप्रीम कोर्ट की पाँच न्यायाधीषों की बेंच द्वारा जगमोहन सिंह बनाम उत्तर प्रदेष राज्य (1973) 1 एससीसी 20 में फ़ैसला सुनाया जा चुका था और उसकी पुष्टि हो चुकी थी।

'विरल से विरलतम' मामलों में उचित ठहराया जाएगा जब निश्चित रूप से कोई विकल्प नहीं रह जाता।[16]

पिछले तीन दशकों से 'विरल से विरलतम' सज़ा स्वेच्छाचारिता और न्यायिक असंगति से भरा हुआ है, जो कि चिंता का विषय है। इन चिंताओं का ना केवल व्यापक रूप से विश्लेषण कर दस्तावेज़ीकरण किया गया है[17] बल्कि सुप्रीम कोर्ट ने साफ़ तौर पर माना है कि उन मामलों की लम्बी लाइन है, जिनमें ग़लत व्याख्या और ग़लत तरीक़े से 'विरल से विरलतम' सिद्धांत को लागू किया गया है।[18]

सुप्रीम कोर्ट ने 'अनिवार्य मृत्युदंड' को असंवैधानिक माना है[19] फ़िर भी यह कुछ केंद्रीय क़ानूनों का हिस्सा बन चुका है जो कि गम्भीर चिंता का विषय है। भारतीय दंड संहिता,1860 की धारा 195(ए), धारा 3 (1)(ज)(ई), समुद्री नेविगेशन और महाद्वीपीय शेल्फ़ पर निश्चित प्लेटफॉर्म की सुरक्षा के ख़िलाफ़ गैरक़ानूनी कृत्यों का दमन, 2002, और धारा 3(2)(ई) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचारों निरोधक) अधिनियम, 1989 अब भी 'अनिवार्य मृत्युदंड' प्रदान करते हैं।

भारत के क़ानून आयोग की सिफारिशें

भारत के क़ानून आयोग ने दो बार मृत्युदंड की व्यापक समीक्षा की है।[20] अपनी 262वीं रिपोर्ट में (अगस्त 2015) भारत के क़ानून आयोग ने चरण–बद्ध तरीक़े से मृत्युदंड को समाप्त करने की सिफ़ारिश की है। प्रथम चरण में यह सिफ़ारिश की गयी है की मृत्युदंड सिर्फ़ आतंकवाद से सम्बन्धित अपराधों में हो। अन्य किसी भी अपराध में ना हो।

16. बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य (1980) 2 एससीसी 684, पैराग्राफ़ 209

17. 'विरल से विरलतम' सिद्धांत के उपयोग में विसंगतियों के विस्तृत विष्लेषण के लिए एमनेस्टी इंटर्नैषनल इंडिया और पीयूसीएल तमिल नाड, लीथल लॉटरीः द डेथ पेनलटी इन इंडिया– अ स्टडी ओफ़ सुप्रीम कोर्ट जजमेंट्स इन डेथ पेनलटी केसेस 1950–2006,2008, जो नीचे दिए गए पते पर हैंः https://www.amnesty.org/en/documents/ASA20/007/2008/en/

18. संतोष कुमार बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य (2009) 6 एससीसी 498, पैराग्राफ़ 63; संगीत और अन्य बनाम हरियाणा राज्य (2013) 2 एससीसी 452, पैराग्राफ 34–41; और शंकर किसानराव खाडे बनाम महाराष्ट्र राज्य (2013) 5 एससीसी 546, पैराग्राफ़ 124

19. मिथु बनाम पंजाब राज्य (1983) 2 एससीसी 277, पैराग्रैफ़ 23; यह भी देखें, बम्बई हाई कोर्ट का निर्णय इंडीयन हार्म रिडकषन नेटवर्क बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, 2010 की क्रिमिनल रिट याचिका संख्या 1784 (बम्बई हाई कोर्ट) जिसने स्वापक औषिधि और मनः प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 31 ए में अनिवार्य मौत की सज़ा को खत्म कर दिया। और सुप्रीम कोर्ट का पंजाब राज्य बनाम दलबीर सिंह, (2012) 3 एससीसी 346, पैराग्रैफ़ 91 में निर्णय जिसमें शस्त्र अधिनियम, 1959 की धारा 27(3) में अनिवार्य मृत्युदंड को ख़त्म कर दिया।

20. भारतीय क़ानून आयोग, 35 कैपिटल पनिश्मेंट', 1967 यहाँ उपलब्ध हैः http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/Report35Vol1and3.pdf कानून आयोग ने निष्कर्ष निकाला कि मृत्युदंड के उन्मूलनवाद के तर्कों की योग्यता के बावजूद, भारत एक समाज के रुप मे उन्मूलन के साथ प्रयोग के लिए तैयार नहीं था। कानून आयोग ने अपनी 187 वी रिर्पोट,'मोड ओफ एक्सेक्यूशन ओफ़ डेथ सेंटेन्सेज़ एंड इन्सिडेंटल मैटर्ज़',2003, में फांसी की सजा के निष्पादन के तरीक़ों पर विचार किया है।

कार्यक्षेत्र प्रतिवेदन

इस परियोजना के दौरान मृत्युदंड की सज़ा के तहत 385 क़ैदी थे। 20 राज्य और एक केंद्रशासित प्रदेश (अंडमान और निकोबार द्वीप समूह) में से 373 क़ैदी इस अध्ययन का हिस्सा रहे। **(ग्राफ़िक 1)**[1] शेष 12 क़ैदी जो इस अध्ययन का हिस्सा नहीं हैं, उन्हें तमिलनाडु में मौत की सज़ा सुनाई गई थी। हमारे कई प्रयासों के बावजूद तमिलनाडु सरकार ने दिल्ली में 'एजेंसियों' से सुरक्षा मंजूरी की कमी का हवाला देते हुए हमें जेल में साक्षात्कार आयोजित करने की अनुमति नहीं दी थी। हमें यह कभी नहीं बताया गया कि ये 'एजेंसियां' कौन सी थीं।

373 क़ैदियों में से 361 पुरुष और 12 महिलाएं थीं। जबकि उत्तर प्रदेश में मृत्युदंड पाए क़ैदियों की पूर्ण संख्या सबसे ज़्यादा थी (79)। वहीं दिल्ली में आबादी की तुलना में (10 लाख आबादी में 1.79 व्यक्ति) सबसे ज़्यादा क़ैदियों (30) को मृत्युदंड की सज़ा सुनाई गई थी।

परियोजना में साक्षात्कार किए गए क़ैदी 67 जेलों में क़ैद थे, जिनमें से 42 केन्द्रीय जेल में थे और 25 ज़िलों की जेल में थे। इन 67 जेलों में से 30 में फाँसी देने के तख़्त मौजूद थे। **(तालिका 1)**।

अपराध की प्रकृति

भारत के 18 केंद्रीय विधानों की 59 धाराओं में सज़ा के रूप में मृत्युदंड की अनुमति है, जिनमें से 12 धराएँ भारतीय दंड संहिता, 1860 के तहत

1. इस अध्ययन के लिए दिल्ली को एक राज्य माना गया है।

ग्राफ़िक 1:

भारत में मृत्युदंड पाए क़ैदी

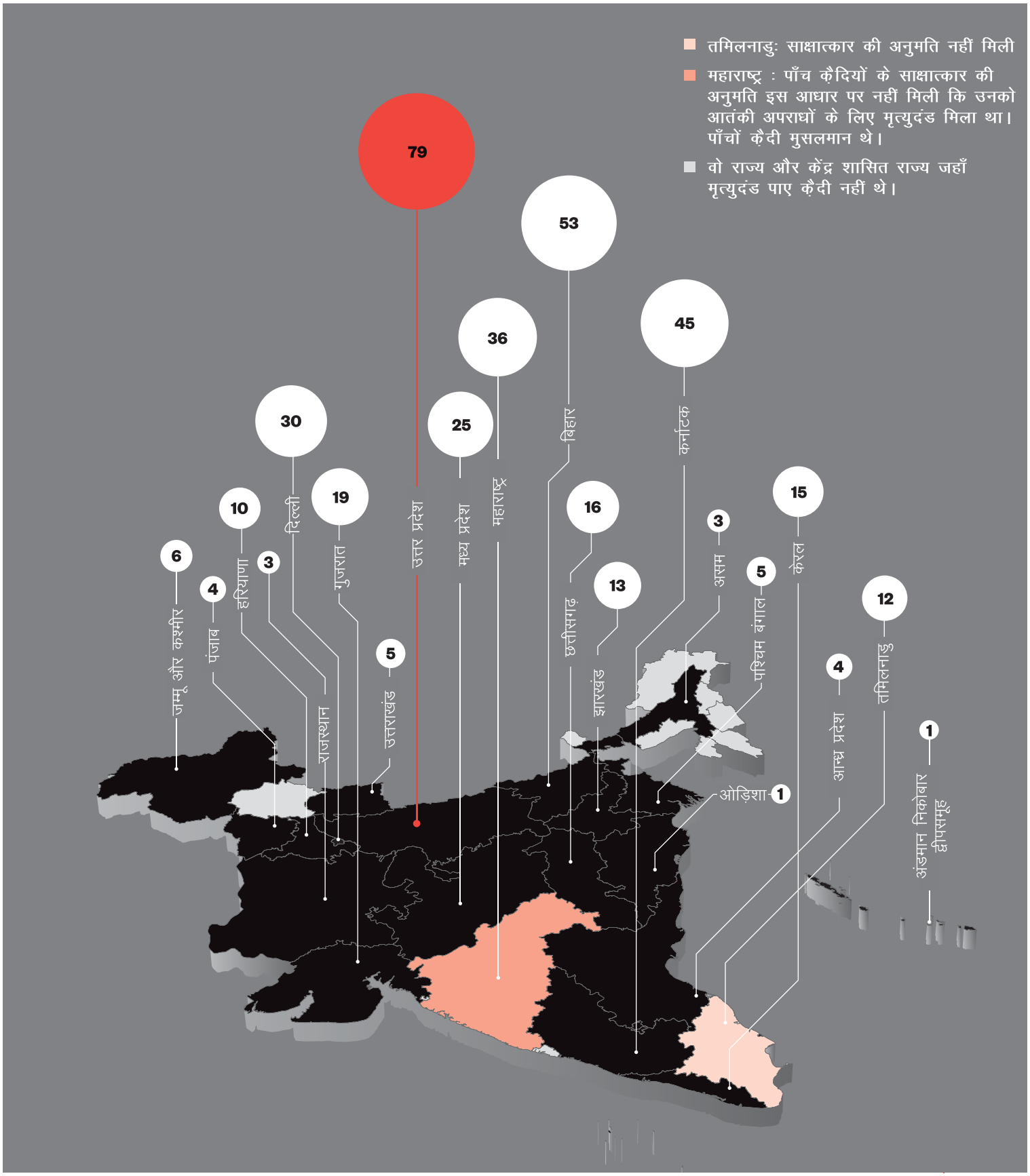

तालिका 1:

वे जेल जहाँ मृत्यु–दंड पाए क़ैदियों को क़ैद रखा गया है

राज्य	जेल प्रकार	जेल	क़ैदियों की संख्या	फाँसी का तख़्त
अंडमान निकोबार द्वीपसमूह	ज़िला	ज़िला जेल, प्रोथरापुर	1	हाँ
आन्ध्र प्रदेष	केंद्रीय	केंद्रीय कारागार,कड़पा	1	नहीं
		केंद्रीय कारागार, राजमुन्दरी	3	हाँ
असम	केंद्रीय	केंद्रीय जेल, गुवाहाटी	1	नहीं
		केंद्रीय जेल, जोरहाट	1	हाँ
	ज़िला	विषिष्ट जेल, नागाओं	1	नहीं
बिहार	केंद्रीय	केंद्रीय जेल, बक्सर	2	नहीं
		केंद्रीय जेल, गया	3	नहीं
		आदर्ष केंद्रीय कारागार, बेओर, पटना	14	नहीं
		षहीद जुब्बा साहनी केंद्रीय जेल, भागलपुर	21	हाँ
		षहीद खुदी राम बोस केंद्रीय जेल, मुज़्ज़फरपुर	7	नहीं
	ज़िला	ज़िला जेल, आरा	5	नहीं
		ज़िला जेल, खागरीआ	1	नहीं
छत्तीसगढ़	केंद्रीय	केंद्रीय कारावास, दुर्ग	7	नहीं
		केंद्रीय कारावास, रायपुर	9	हाँ
दिल्ली	केंद्रीय	केंद्रीय जेल, तिहार	30	हाँ
गुजरात	केंद्रीय	अहमदाबाद केंद्रीय कारावास	6	नहीं
		लाजपोर (सूरत) केंद्रीय कारावास	1	नहीं
		वदोदरा केंद्रीय कारावास	12	हाँ
हरियाणा	केंद्रीय	केंद्रीय जेल, अंबाला	6	हाँ
	ज़िला	ज़िला जेल, भिवानी	4	नहीं
जम्मू और कष्मीर	केंद्रीय	केंद्रीय जेल कोटभलवाल, जम्मू	3	नहीं
		केंद्रीय जेल, श्रीनगर	1	नहीं
	ज़िला	ज़िला जेल, जम्मू	2	हाँ
झारखंड	केंद्रीय	बिरसा मुंडा केंद्रीय जेल, होटवार, राँची	5	हाँ
		केंद्रीय जेल मेदिनिनगर, पालामाऊ	1	नहीं
		लोकनायक जयप्रकाष नारायण केंद्रीय जेल, हज़ारीबाग़	7	हाँ
कर्नाटक	केंद्रीय	केंद्रीय कारावास, बेलगाम	45	हाँ
केरल	केंद्रीय	केंद्रीय कारावास, कन्नूर	6	हाँ
		केंद्रीय कारावास, थिरुवअनंथपुरम	9	हाँ
मध्य प्रदेष	केंद्रीय	केंद्रीय जेल, भोपाल	3	नहीं
		केंद्रीय जेल, ग्वालियर	2	नहीं
		केंद्रीय जेल, इंदौर	14	नहीं
		नेताजी सुभाष चंद्र बोस केंद्रीय जेल, जबलपुर	6	हाँ

तालिका 1:

भारत में मौत की सज़ा पाने वाले क़ैदियों को रखने वाली कारागारें (जारी)

महाराष्ट्र	केंद्रीय	मुंबई केंद्रीय कारागार	1	नहीं
		नागपुर केंद्रीय कारागार	13	हाँ
		यरवदा केंद्रीय कारागार	22	हाँ
ओड़िशा	केंद्रीय	सर्कल जेल, बेरहामपुर	1	हाँ
पंजाब	केंद्रीय	केंद्रीय कारागार, पटियाला	4	हाँ
राजस्थान	केंद्रीय	जयपुर केंद्रीय कारागार	3	हाँ
उत्तर प्रदेश	केंद्रीय	केंद्रीय कारागार, आगरा	12	हाँ
		केंद्रीय कारागार, बरेली	3	हाँ
		केंद्रीय कारागार, फतेहगढ़	2	नहीं
		केंद्रीय कारागार, नैनी	11	हाँ
		केंद्रीय कारागार, वाराणसी	7	नहीं
	ज़िला	ज़िला कारागार, आजमगढ़	1	नहीं
		ज़िला कारागार, बदायूँ	2	नहीं
		ज़िला कारागार, बाराबंकी	1	नहीं
		ज़िला कारागार, बस्ती	1	नहीं
		ज़िला कारागार, एटा	4	नहीं
		ज़िला कारागार, फैजाबाद	7	हाँ
		ज़िला कारागार, गाजियाबाद	5	नहीं
		ज़िला कारागार, हरदोई	3	नहीं
		ज़िला कारागार, झांसी	1	हाँ
		ज़िला कारागार, कानपुर	1	हाँ
		ज़िला कारागार, मैनपुरी	1	नहीं
		ज़िला कारागार, मथुरा	8	नहीं
		ज़िला कारागार, मऊ	1	नहीं
		ज़िला कारागार, मुरादाबाद	1	नहीं
		ज़िला कारागार, मुजफ्फरनगर	5	नहीं
		ज़िला कारागार, रामपुर	1	नहीं
		ज़िला कारागार, सिद्धार्थ नगर	1	नहीं
उत्तराखंड	ज़िला	ज़िला कारागार, देहरादून	1	हाँ
		ज़िला कारागार, रोशनाबाद, हरिद्वार	4	नहीं
पश्चिम बंगाल	केंद्रीय	अलीपुर केंद्रीय सुधार गृह, कोलकाता	2	हाँ
		बेरहमपुर केंद्रीय सुधार गृह, मुर्शिदाबाद	2	हाँ
		प्रेसीडेंसी सुधार गृह, कोलकाता	1	हाँ

नारकोटिक ड्रग्स और साइकोट्रोपिक सब्सटेंसेस एक्ट (एनडीपीएस) अधिनियम के तहत मौत की सज़ा

कलाम को एनडीपीएस की धारा 31 ए के तहत मौत की सज़ा सुनाई गई थी। वह पहली बार 21 वर्ष की आयु में व्यावसायिक मात्रा में चरस के मामले में गिरफ़्तार हुआ था। अक्टूबर 2000 में उसे अपने इक़बालिया बयान और अपने सह–अभियुक्त के बयान के आधार पर मृत्युदंड की सज़ा सुनाई गई, हालाँकि इन बयानों को इस आधार पर वापस ले लिया गया था कि ये यातना दे कर लिए गए थे। उसने कहा कि उसे गंभीर रूप से पीटा गया था और जलती सिगरेट से उसके शरीर को जलाया गया था, जिसके निषान अभी तक मौजूद हैं। हालाँकि हाई कोर्ट ने इस फ़ैसले को बरकरार रखा, परंतु इस फ़ैसले के ख़िलाफ़ एक अपील 2009 से सुप्रीम कोर्ट में लंबित है। इस मामले की लंबित अवधि के दौरान जब कलाम पैरोल पर था तो उसे व्यावसायिक मात्रा में चरस की डिलीवरी के लिए गिरफ़्तार किया गया। अपने पहले अपराध के आधार पर उसे एनडीपीएस की धारा 31 ए के तहत और बाद में इस दूसरे अपराध के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई। पहले अपराध के बारे में सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले के इंतज़ार में, मौत की सज़ा के ख़िलाफ़ अपील हाई कोर्ट में लंबित है। नतीजतन, कलाम 127 महीने (10 साल और 7 महीने) से जेल में है, जिसमें से पाँच साल से ऊपर वह मृत्यु पंक्ति पर है।

हैं। इन 18 विधानों में से सात का उपयोग इस परियोजना **(तालिका 2)** में क़ैदियों को सज़ा सुनाने के लिए किया गया था। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि भारतीय दंड संहिता को मृत्युदंड देने के लिए सबसे अधिक बार लागू किया गया था। हमारे अध्ययन के दौरान किसी भी राज्य के क़ानून के तहत किसी क़ैदी को मौत की सज़ा नहीं दी गई थी।

हत्या और ग़ैर–हत्या वाले अपराध

18 केंद्रीय क़ानून जिनके तहत मृत्युदंड की सज़ा दी जा सकती थी, 13 हत्या के अपराध, यानी जीवन के नुकसान से जुड़े अपराध और 41 ग़ैर–हत्या के अपराध मौत की सज़ा से दंडनीय हैं।[2] अमेरिका में ग़ैर–हत्या के अपराधों के लिए मौत की सज़ा होनी चाहिए या नहीं, इस मुद्दे पर व्यापक रूप से बहस हुई है, जिसमें अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले के अनुसार ग़ैर–हत्या मामलों में जैसे बलात्कार,[3] जिसमें नाबालिग का बलात्कार[4] भी शामिल है, मृत्युदंड देना असंवैधानिक है। अगस्त 2015 में भारत के सुप्रीम कोर्ट ने भारतीय दंड संहिता की धारा 364 ए की

2. भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 364 ए, 376 ए और 376 ई के तहत अपराधों को हत्या और ग़ैर–हत्या, दोनों के रूप में माना जाता है क्योंकि ये मौत की सज़ा के लिए उन परिस्थितियों में अनुमति देते हैं जहाँ जीवन का नुकसान शामिल हो या नहीं हो। इसके अलावा, जिन व्यक्तियों पर रक्षा क़ानून लागू होते हैं, उनके द्वारा किए गए सिविल अपराध, रक्षा क़ानून के तहत अपराध माने जाते हैं। हालाँकि, ऐसे व्यक्तियों को उन सिविल क़ानून के तहत दंड दिया जा सकता है, जहाँ मृत्युदंड अधिकतम सम्भव सज़ा है। रक्षा क़ानून में आठ ऐसे प्रावधान हैं।

3. कॉकर बनाम जॉर्जिया 43 संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, 584 (1977)

4. कैनेडी बनाम लुइसियाना 554 संयुक्त राष्ट्र अमेरिका 407 (2008)

तालिका 2:

क़ानून जिसके अंतर्गत क़ैदियों को मौत की सज़ा सुनाई गई

क़ानून	क़ैदियों की संख्या
भारतीय दंड संहिता, 1860	363
विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908	13
आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1987	13
आयुध अधिनियम,1959	5
सीमा सुरक्षा बल अधिनियम, 1968	1
स्वापक औषिधि और मनः प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985	1
ग़ैरक़ानूनी गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम, 1967	1

संवैधानिकता को बरकरार रखा, जो फिरौती के लिए अपहरण जैसे गैर–हत्या वाले अपराध के लिए मृत्यु की सज़ा की अनुमति देता है।[5]

इस परियोजना के 361 क़ैदियों को हत्या के लिए मृत्युदंड दिया गया था जबकि अन्य 12 को गैर–हत्या के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई थी। इन 12 क़ैदियों में से आठ को भारतीय दंड संहिता की धारा 120 के तहत 'युद्ध छेड़ने' के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई थी जबकि अन्य तीन को फ़िर से बलात्कार करने के लिए अपराधी ठहराए जाने पर भारतीय दंड संहिता की धारा 376 ई के तहत मौत की सज़ा सुनाई गई थी। इसके अतिरिक्त एक क़ैदी को नारकोटिक ड्रग्स और साइकोट्रोपिक सब्सटेंसेस एक्ट, 1985 (एनडीपीएस) की धारा 31 ए के तहत मौत की सज़ा सुनाई गई थी जो कि वाणिज्यिक मात्रा में ड्रग को ले जाने के लिए दोबारा सज़ा के मामले में मृत्युदंड प्रदान करती है।

5. विक्रम सिंह / विकी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (2015) 9 एससीसी 502

अपराध की श्रेणियां

हमारे अध्ययन के क़ैदियों को निम्नलिखित अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया और मौत की सज़ा सुनाई गई। इन्हें अपराध की प्रकृति के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।

1 हत्या : इसमें ऐसे मामले शामिल हैं, जहाँ क़ैदियों को भारतीय दंड संहिता (हत्या) की धारा 302 के तहत या शस्त्र अधिनियम,1959 के साथ भारतीय दंड संहिता (हत्या) की धारा 302 के तहत, विस्फोटक पदार्थ अधिनियम,1908 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम,1989 के तहत दोषी ठहराया गया था।

2 यौन अपराधः ऐसे मामलों में हत्या के आरोप के साथ मुख्य अपराध बलात्कार होता है। इसमें ऐसे मामले भी शामिल हैं जहाँ

ग्राफिक 2:

मृत्युदंड पाए क़ैदियों के अपराध की प्रकृति का राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व

अपराध की प्रकृति	क़ैदियों की संख्या
हत्या	213
यौन अपराध	84
आतंकी अपराध	31
अपहरण के साथ हत्या	24
डकैती के साथ हत्या	18
रक्षा क़ानून के तहत अपराध	2
ड्रग संबंधित अपराध	1

बलात्कार के अपराध को दोबारा करने के लिए इसे भारतीय दंड संहिता की धारा 376 ई के तहत मृत्युदंड दिया गया।

3 आतंकी अपराधः इसमें ऐसे मामले शामिल हैं जहाँ क़ैदी को आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1985 (टाडा), आतंकवाद अधिनियम की रोकथाम, अधिनियम 2002 ("पोटा"), गैरक़ानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1967 के तहत या भारतीय दंड संहिता धारा 121 के तहत 'युद्ध छेड़ने' के अपराध के लिए दोषी ठहराया गया था।

4 अपहरण के साथ हत्याः इसमें उन मामलों को शामिल किया गया जहाँ मुख्य आरोप अपहरण के साथ हत्या का था।

5 डकैती के साथ हत्याः इसमें ऐसे मामले शामिल हैं जहाँ क़ैदी को भारतीय दंड संहिता की धारा 396 के तहत डकैती के साथ हत्या के लिए दोषी ठहराया गया था।

6 रक्षा क़ानून के तहत अपराधः हमारे अध्ययन के क़ैदियों में से एक को सीमा सुरक्षा बल अधिनियम, 1968 के तहत एक अपराध के लिए मौत की सज़ा दी गई थी जबकि दूसरे को सेना अधिनियम, 1950 के तहत मृत्यु की सज़ा सुनाई गई थी।

7 ड्रग संबंधित अपराधः इसमें ऐसे मामले शामिल हैं जहाँ क़ैदियों को दोबारा अपराध करने के लिए एनडीपीएस की धारा 31 ए के तहत मौत की सज़ा सुनाई गई थी।

हत्या के लिए सबसे ज़्यादा संख्या में क़ैदियों को (213) मौत की सज़ा सुनाई गई थी जो अध्ययन के कुल क़ैदियों का 57.1% **(ग्राफिक 2)** हिस्सा बनते थे। इनमें से एक व्यक्ति की हत्या के लिए 25.8% (55 क़ैदियों) को मौत की सज़ा सुनाई गई थी। हालाँकि ऐसे मामलों का बारीकी से विश्लेषण करने की आवश्यकता है फ़िर भी यह सवाल उठता है कि क्या सभी हत्याओं के लिए जो धारा 302 के तहत आती हैं, मृत्युदंड की सज़ा देना आवश्यक है?

राज्य–वार अपराधों का विश्लेषण

अपराध की प्रकृति का राज्यवार विश्लेषण करने से पता चलता है कि उत्तरप्रदेश और बिहार में हत्या के लिए मृत्युदंड की सज़ा सबसे अधिक संख्या में सुनाई गयी थी। (हत्या के लिए 213 मृत्युदंड पाए क़ैदियों में से सामूहिक रूप से 46%) और हरियाणा में सभी 10 मृत्युदंड पाए क़ैदियों को मानव हत्याकांड के लिए दोषी ठहराया गया था। यौन अपराधों के लिए 84 मृत्युदंड पाए क़ैदियों में से 17.9% (15 क़ैदी) महाराष्ट्र से थे और 16.7% (14 क़ैदी) मध्य प्रदेश

से थे। यह इन राज्यों में सभी मृत्युदंड पाए क़ैदियों का क्रमशः 41.7% और 56% भाग था।

आतंकवादी अपराधों के लिए कर्नाटक में सबसे ज्यादा क़ैदियों को मौत की सज़ा सुनाई गई थी (12 क़ैदी, जो 31 क़ैदियों जिनको आतंकी अपराधों के लिए सज़ा सुनाई गई का 38.7%) जबकि बिहार दूसरे नम्बर पर था जिसमें 'टाडा' के तहत दोषी ठहराए गए सात (22.6%) क़ैदी थे। उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल ऐसे दो राज्य थे, जिनमें रक्षा क़ानून के तहत एक–एक क़ैदी को मौत की सज़ा सुनाई गई थी। एनडीपीएस के तहत गुजरात में एक क़ैदी को मौत की सज़ा सुनाई गई थी।

अपराध की प्रकृति और क़ानूनी कार्यवाही का कार्यकाल

विभिन्न अपराधों **(तालिका 3, 4 और 5)** की क़ानूनी कार्यवाही में विभिन्न चरणों की औसत अवधि में विविधता पाई गई थी। जिन अपराधों के लिए अधिक संख्याओं में मृत्युदंड की सज़ा सुनाई गई थी, उसमें से यौन अपराध के मामलों में ट्रायल कोर्ट और हाई कोर्ट के चरण में औसत समय कम से कम था। दूसरी ओर, आतंकवाद अपराध के मामलों में कार्यवाही सबसे लंबे समय तक चली। दिलचस्प बात यह है कि यौन अपराध के मामलों में कम समय की अवधि की प्रवृत्ति को सुप्रीम कोर्ट में दोहराया नहीं गया था, जहाँ ऐसे मामलों की पुष्टि के लिए औसतन सबसे ज़्यादा समय लिया गया था।

यौन अपराध के मामलों में कार्यवाही की काफ़ी कम अवधि लगने पर विशेष ध्यान देने की ज़रूरत है। हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में कार्यवाही में समय लगना एक आम बात है। इसलिए हमें यह जानना ज़रूरी है कि यौन अपराध के मामलों का निर्णय इस तरह की तेज़ गति से कैसे लिया जाता है और क्या इन प्रक्रियाओं को पूरी निष्ठा से निभाया जाता है ताकि ऐसे मामलों में निष्पक्ष सुनवाई हो और आरोपी के अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित हो।

तालिका 3:

अपराध की प्रकृति के कारण जाँच की अवधि का अलग होना

अपराध की प्रकृति	क़ैदियों की संख्या	ट्रायल की अवधि –औसत
रक्षा क़ानून के तहत अपराध	2	1 साल
यौन अपराध	84	1 साल, 6 महीने
अपहरण के साथ हत्या	24	3 साल, 1 महीने
हत्या	213	3 साल, 4 महीने
ड्रग संबंधित अपराध	1	5 साल, 1 महीने
डकैती के साथ हत्या	18	8 साल, 2 महीने
आतंकी अपराध	31	8 साल, 4 महीने
राष्ट्रीय संख्या	373	3 साल, 2 महीने

हालाँकि यह ज़रूरी नहीं है कि यौन अपराध के मामलों में मूलभूत सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ हो लेकिन हमारे अध्ययन में क़ैदियों के कुछ बयान भिन्न प्रकार के सुझाव देते हैं। उमंग[6] का मुक़दमा सिर्फ़ नौ दिन चला, जिसमें उसे दोषी भी ठहराया गया और मौत की सज़ा भी सुनाई गई थी। यह इस अध्ययन में सबसे कम अवधि का मुक़दमा दर्ज किया गया था। उमंग, जो कभी स्कूल नहीं गया था, उसने बताया "मुझे पाँच दिनों तक पुलिस के लॉक–अप में पीटा गया और अन्य पाँच दिनों में अदालत ले जाया गया था"। वह अपने ख़िलाफ़ लगे आरोपों से अवगत नहीं था और अदालत की कार्यवाही जो अंग्रेज़ी में थी, वह उसकी समझ से बाहर थी। सरकारी वक़ील से उसकी केवल एक बार मुलाक़ात हुई थी और वक़ील ने उसे उसके ख़िलाफ़ अभियोजन पक्ष के मामले को नहीं समझाया था।

आतंकवाद के अपराधों में क़ानूनी कार्यवाही के लंबे समय की अवधि की वास्तविक स्थिति, इन मामलों में कारावास की अवधि को ही देख कर समझी जा सकती है। अन्य अपराधों के लिए मृत्युदंड पाए क़ैदियों की तुलना में आतंकी अपराधों के लिए मौत की सज़ा पाए क़ैदी, क़ैद में ज़्यादा समय बिताते हैं। आतंकी मामलों में औसतन क़ैद की अवधि 158 महीने है (13 साल, दो महीने) जो अन्य सभी अपराधों के लिए कारावास की औसत अवधि (66 महीने या पाँच साल, छह महीने) से कहीं ज़्यादा है।

जिन 103 क़ैदियों के मामले सुप्रीम कोर्ट में लम्बित थे, उनमें से या तो दया याचिका के लम्बित मामले थे या जिनकी याचिका ख़ारिज कर दी गई थी। इनमें से 13 क़ैदियों को 'टाडा' के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया था। इस अधिनियम के तहत, ट्रायल कोर्ट के निर्णय पर सीधे सुप्रीम कोर्ट के समक्ष अपील हो सकती है, उच्च न्यायालय के सामने नहीं। इसलिए उच्च न्यायालय में ऐसे क़ैदियों का कोई डेटा उपलब्ध नहीं है।

6. सभी क़ैदी और उनके परिवार के सदस्यों के नाम बदल दिए गए हैं। क़ैदी और उनके परिवार के सदस्यों को दिए गए नाम काल्पनिक हैं और किसी भी वास्तविक व्यक्ति से समानता एक संयोग और अनभिप्रेत है।

तालिका 4:

अपराध की प्रकृति के कारण हाई कोर्ट की पुष्टि की अवधि का अलग होना

अपराध की प्रकृति	क़ैदियों की संख्या	उच्च न्यायालय की पुष्टि की औसतन अवधि
यौन अपराध	27	6 महीने
डकैती के साथ हत्या	6	9 महीने
हत्या	37	11 महीने
अपहरण के साथ हत्या	11	1 साल, 5 महीने
आतंकी अपराध	9	3 साल, 10 महीने
राष्ट्रीय संख्या	90	11 महीने

तालिका 5:

अपराध की प्रकृति के कारण सुप्रीम कोर्ट की पुष्टि की अवधि का अलग होना

अपराध की प्रकृति	क़ैदियों की संख्या	सरीम कोर्ट की पुष्टि की औसतन अवधि
हत्या	19	1 साल, 2 महीने
अपहरण के साथ हत्या	5	1 साल, 8 महीने
डकैती के साथ हत्या	6	2 साल, 1 महीने
आतंकी अपराध	11	2 साल, 4 महीने
यौन अपराध	9	2 साल, 8 महीने
राष्ट्रीय संख्या	50	1 साल, 10 महीने

51 क़ैदियों में से जिनकी दया याचिका या तो लम्बित थी या ख़ारिज कर दी गई थी, 1 क़ैदी ने सुप्रीम कोर्ट में अपील नहीं की थी।

अध्ययन से जुड़े क़ैदियों की श्रेणियाँ

मृत्युदंड के मामलों में श्रेणी अनुसार हमारे अध्ययन के क़ैदियों को निम्नानुसार वर्गीकृत किया गया है:

* जिन क़ैदियों को ट्रायल कोर्ट द्वारा मौत की सज़ा सुनाई जा चुकी है पर हाई कोर्ट के समक्ष सज़ा की पुष्टि के लिए मामला लंबित है।
* जिन क़ैदियों की मृत्युदंड की सज़ा की पुष्टि हाई कोर्ट ने कर दी है लेकिन अपील सुप्रीम कोर्ट के सामने लंबित है।
* जिन क़ैदियों की दया याचिका किसी राज्य के राज्यपाल या राष्ट्रपति द्वारा विचाराधीन है। (उन क़ैदियों सहित जिनकी मौत की सज़ा की पुष्टि सुप्रीम कोर्ट ने की है लेकिन जिन्होंने विभिन्न कारणों से दया याचिका दायर नहीं की है)
* जिन क़ैदियों की दया याचिका खारिज कर दी गई है

ग्राफिक 4

ग्राफिक 4 में उपरोक्त सभी श्रेणियों में क़ैदियों की कुल संख्या दी गई है और प्रत्येक श्रेणी में क़ैदियों की राज्यवार संख्या भी बताई गई है।

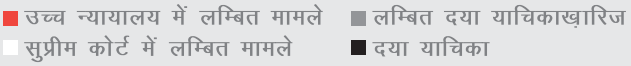

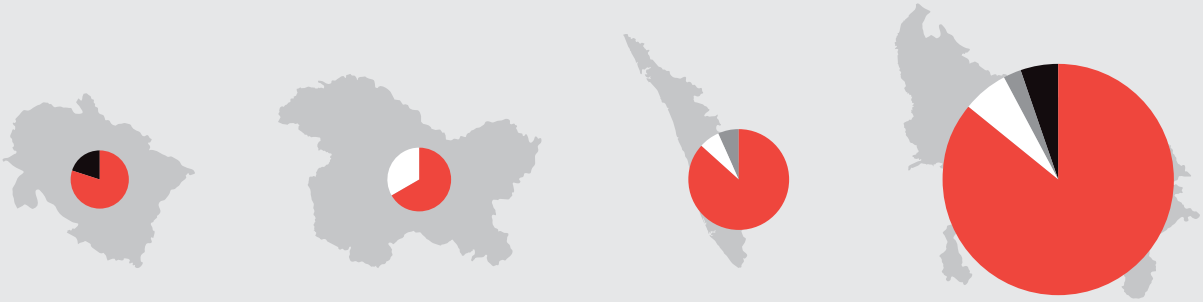

उत्तराखंड

4	0
0	1

जम्मू और कश्मीर

4	0
2	0

केरल

13	1
1	0

उत्तर प्रदेश

68	2
5	4

गुजरात

16	0
3	0

पंजाब

0	3
1	0

असम

1	2
0	0

पश्चिम बंगाल

3	0
2	0

270

उच्च न्यायालय में लम्बित मामले

52

सुप्रीम कोर्ट में लम्बित मामले

30

लम्बित दया याचिका ख़ारिज

21

दया याचिका

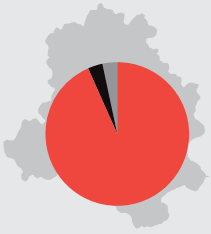

दिल्ली

28 | 1
0 | 1

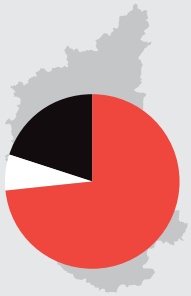

कर्नाटक

33 | 0
3 | 9

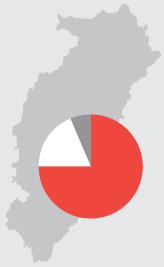

छत्तीसगढ़

12 | 1
3 | 0

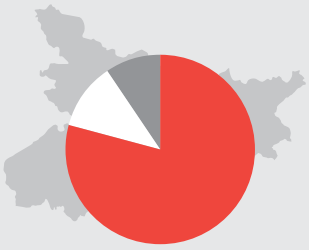

बिहार

42 | 5
6 | 0

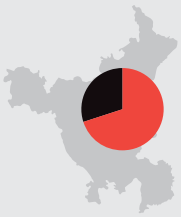

हरियाणा

7 | 0
0 | 3

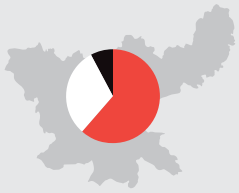

झारखंड

8 | 0
4 | 1

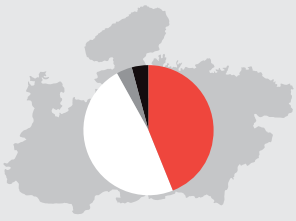

मध्य प्रदेश

11 | 1
12 | 1

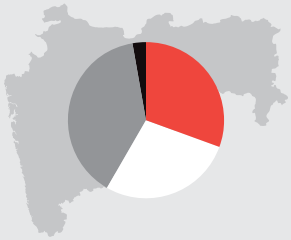

महाराष्ट्र

11 | 14
10 | 1

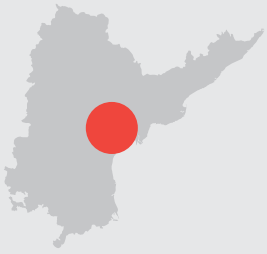

आन्ध्र प्रदेश

4 | 0
0 | 0

राजस्थान

3 | 0
0 | 0

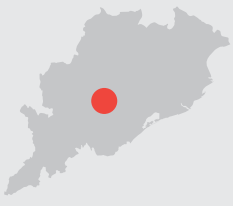

ओड़िशा

1 | 0
0 | 0

अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह

1 | 0
0 | 0

सामाजिक एवम् आर्थिक परिवेश

भारत में मृत्यु दंड किसको मिलता है?

भारत मे मृत्युदंड की सज़ा पर एक सार्थक परिचर्चा करने के लिए यह अनिवार्य है कि हम पहले यह सुनिश्चित कर लें की वास्तव में यह सज़ा किन लोगों को दी जाती है। भारत की आपराधिक न्याय प्रणाली के अवलोकन के अनुभव से हमें यह आभास था की मृत्युदंड सज़ा आमतौर पर उन्हें ही दी जाती है जो ग़रीब हैं और समाज के पिछड़े वर्गों से आते हैं। हमारे शोध के नतीजे इस बात की पुष्टि करते हैं कि मृत्युदंड की सज़ा असंगत रूप से आर्थिक और सामाजिक रूप से कमज़ोर लोगों को दी जाती है। यद्यपि हमारे इस अनुसंधान को तर्क के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता तथापि यह इस ओर अवश्य इशारा करता है कि किस तरह उपेक्षित समाज पर मृत्युदंड का असामान्य असर होता है।

इस अध्याय में प्रस्तुत सामाजिक–आर्थिक विश्लेषण, क़ैदियों और उनके परिवारों के साक्षात्कार पर आधारित है। शुरू में ही हमें एहसास हो गया कि क़ैदी और उनके परिवारों के पास सबूत के तौर पर किसी दस्तावेज़ तक पहुँच नहीं हैं, इसलिए हमने दस्तावेज़ों के द्वारा मिली जानकारी को क्रॉस चेक नहीं किया। एक और बात ग़ौर करने की है कि यह शोध केवल उन मृत्युदंड पाए क़ैदियों तक सीमित है जो हमारे अनुसंधान की समयावधि में आते हैं। उसके आगे, भविष्य में, क़ैदियों के सामाजिक–आर्थिक परिवेश के विषय पर सामयिक शोध हमें अधिक निर्णायक तस्वीर प्रदान करेगा।

उम्र

सज़ा निर्धारित करने में क़ैदी की उम्र एक महत्वपूर्ण गुणक है। सुप्रीम कोर्ट ने बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य मामले में यह कहा कि 'अगर अपराधी युवा या बुज़ुर्ग है तो उसे मृत्युदंड नहीं दिया जाएगा'।[1] तर्क ये है कि जवान व्यक्ति की पूरी ज़िंदगी उसके आगे पड़ी है और आपराधिक न्याय प्रणाली का झुकाव उनके सुधार पर होता है। वयस्कों के मुक़ाबले युवा अधिक संवेदनशील होते हैं, इसलिए उनको वयस्क के समान सज़ा देना कठोर होगा। दूसरी तरफ़, एक बुज़ुर्ग व्यक्ति समाज के लिए ज़्यादा ख़तरा नहीं है, ऐसे व्यक्ति को मृत्युदंड देना न्याय संगत नहीं है। मृत्युदंड के पक्ष में बहस करने वाले लोग यह तर्क देते

1. (1980) 2 एससीसी 684, पैराग्राफ़ 206

तालिका 1:

घटना के समय क़ैदियों की आयु

घटना के समय क़ैदियों की आयु (वर्ष में)	क़ैदियों की संख्या	प्रतिशत
18 साल से कम	18	5.8
18–21	54	17.4
22–25	38	12.3
26–40	140	45.2
41–60	53	17.1
60 साल से ज़्यादा	7	2.3

63 क़ैदियों की उम्र से संबंधित जानकारी उपलब्ध नहीं है।

तालिका 2:

साक्षात्कार के समय क़ैदियों की आयु

साक्षात्कार के समय क़ैदियों की आयु (वर्ष में)	क़ैदियों की संख्या	प्रतिशत
18–21	17	5.5
22–25	25	8.1
26–40	141	45.5
41–60	100	32.3
60 साल से ज़्यादा	27	8.7

63 क़ैदियों की उम्र से संबंधित जानकारी उपलब्ध नहीं है।

हैं की मृत्युदंड न्याय पालिका का एक आवश्यक अंग है क्यूँकि कुछ अराजक तत्व समाज के लिए ज़ोखिम हैं इसलिए उन्हें यह दंड देना बहुत ज़रूरी है। पर यह तर्क उन व्यक्तियों पर लागू नहीं होता है जो बुढ़ापे की चरम सीमा पर हैं।

युवा या बुज़ुर्ग क़ैदियों को मृत्युदंड देने के ख़िलाफ़ न्यायिक घोषणाओं के बावजूद हमारे अध्ययन में 54 क़ैदी, 18–21 साल की उम्र के बीच थे और 7 क़ैदियों की उम्र 60 वर्ष से अधिक थी।

किशोर होने का दावा

हमारे अध्ययन में 18 व्यक्तियों ने दावा किया कि वे घटना के समय किशोर थे (18 वर्ष से कम आयु) फ़िर भी उन्हें मृत्युदंड सुनाया गया। अन्तर्राष्ट्रीय अनुबंध नागरिक और राजनीतिक अधिकार के तहत, जिनको भारत भी मानता है, किशोरों पर मौत की सज़ा नहीं लगाई जा सकती। भारतीय क़ानून में भी किशोरों पर सामान्य आपराधिक न्याय प्रणाली नहीं लगाई जा सकती[2] और उन्हें किसी भी मामले में मौत की सज़ा नहीं दी जा सकती।[3] किशोरों के लिए

2. हालाँकि बाल न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015, के अनुसार 16 और 18 वर्ष की आयु के बीच युवा, जघन्य अपराध के मामलों में सामान्य अपराधिक न्याय प्रणाली के तहत होते हैं, परंतु किसी भी मामले में उन को मौत की सज़ा नहीं दी जा सकती है।

3. धारा 21, बाल न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015

सबसे कम उम्र से लेकर सबसे बूढ़े मृत्युदंड के क़ैदी

हमारे अध्ययन में सितम्बर 1996 में गिरफ़्तार किया गया 'मुत्तेष' सब से कम उम्र का व्यक्ति था जिसे भारतीय दंड संहिता की धारा 396 के तहत मौत की सज़ा सुनाई गई थी। हालाँकि मुत्तेष का दावा था कि गिरफ़्तारी के समय उसकी उम्र सिर्फ़ ग्यारह वर्ष की थी लेकिन जाँच–कर्ता अधिकारियों ने उसे 18 वर्ष का बताया था। माता–पिता की मृत्यु के बाद मुत्तेष अपने भाई की तलाष में, जो एक कुली था, बैंगलोर चला गया था। गिरफ़्तारी से पहले मुत्तेष जीविका के लिए मैला ढोता था और निर्माण स्थलों पर ईंट बिछाने का काम करता था। मुत्तेष ने साढ़े सत्रह साल जेल में काटे जिसमें से साढ़े तीन साल मृत्यु पंक्ति पर थे। उसे हाई कोर्ट ने 2014 में इस आधार पर बरी कर दिया कि उसका अपराध साबित करने के लिए कोई सबूत नहीं था। परंतु अन्य आपराधिक मुक़दमों के चलते उसे जेल से रिहाई नहीं मिली।

हमारे अध्ययन में सबसे वृद्ध व्यक्ति का नाम धीर था। गिरफ़्तारी के समय उसकी उम्र 78 वर्ष थी। 13 अन्य लोगों के साथ उसको 16 लोगों की हत्या का दोशी पाया गया था। इस कारण उसे मृत्युदंड की सज़ा मिली थी। धीर अषिक्षित था, कभी स्कूल नहीं गया था। गिरफ़्तारी के समय वह अपनी पत्नी और सात बच्चों के साथ रह रहा था। जब हम उसके साथ साक्षात्कार करने गए तब तक वह तीन साल और नौ महीने की सज़ा जेल में काट चुका था। उसको चलने फिरने में मुष्किल होती थी और साक्षात्कार तक आने के लिए भी उसको सहारे की आवश्यकता पड़ी।

ग्राफ़िक 1:

विभिन्न राज्यों में घटना के समय किशोर, युवा वयस्क या साठ से अधिक आयु के क़ैदियों की संख्या।

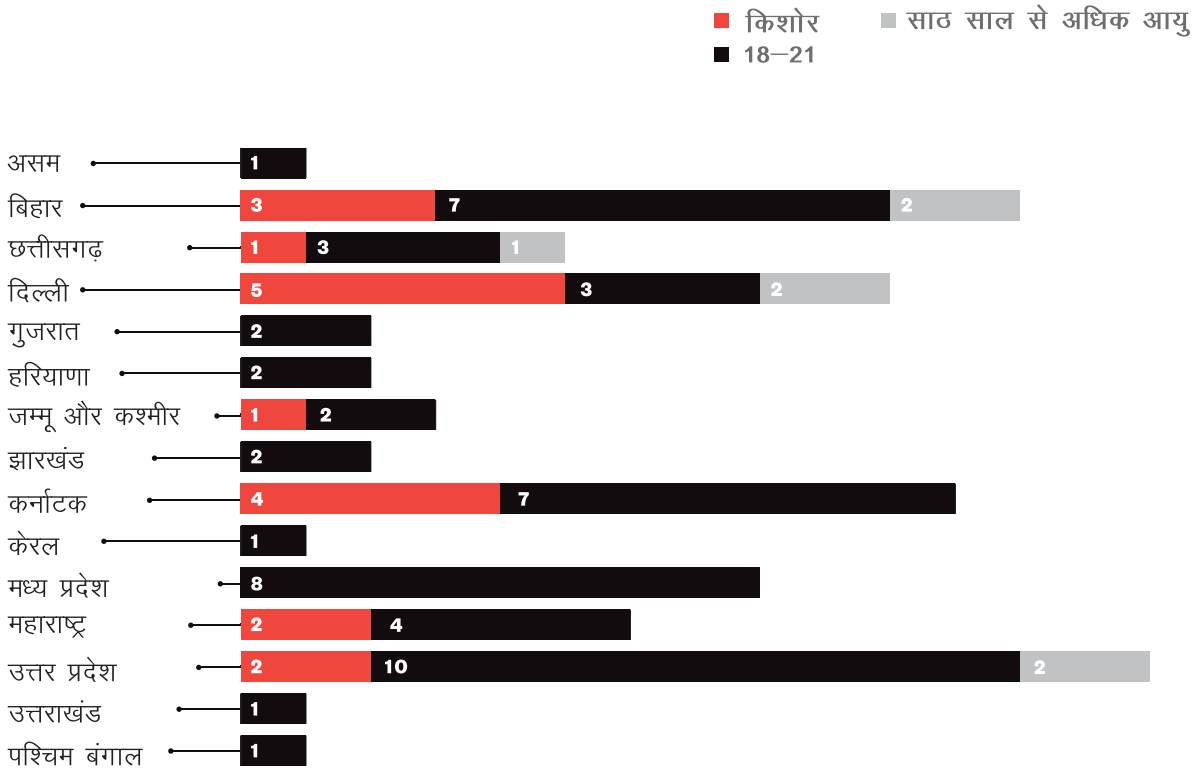

63 क़ैदियों की उम्र से संबंधित जानकारी उपलब्ध नहीं है।

'मोरे' भाई

मोरे परिवार के छः सदस्यों को चार लोगों की हत्या और एक लड़की के बलात्कार एवं हत्या के आरोप में गिरफ़्तार किया गया था। सुप्रीम कोर्ट ने उन्हें दोषी मानते हुए मृत्युदंड की सज़ा सुना दी। सज़ा सुनाने के बाद छः में से एक भाई गोपाल मोरे को सेशन कोर्ट ने स्कूल के सर्टिफ़िकेट के आधार पर जिसे पहले किसी कोर्ट ने नहीं माना था,'किशोर' घोषित कर दिया। इस फ़ैसले से पहले गोपाल नौ वर्ष जेल में रह चुका था, जिसमें से छह वर्ष मृत्यु पंक्ति पर थे और उसकी दया–याचिका को बिना उसकी उम्र का लिहाज़ किए राज्यपाल ने नामंजूर कर दिया था। शेष पाँच भाईयों में से जो अब भी मृत्यु पंक्ति पर है। भैरव मोरे ने बताया कि गिरफ़्तारी के समय वह केवल ग्यारह वर्ष का था लेकिन स्कूल न जाने की वजह से उसके पास उम्र का कोई सबूत नहीं था जैसा कि उसके बड़े भाई गोपाल के पास था।

'मोरे' भाई अनुसूचित जन जाति के हैं। इस घटना के पहले वह मज़दूरी करते थे, गटर की खुदाई तथा रेत के कट्टे उठाने का काम करते थे। वर्तमान में पाँच भाईयों में से जिन्हें मृत्युदंड की सज़ा मिली थी, चार कभी स्कूल नहीं गए थे और एक बहुत थोड़े समय के लिए स्कूल में था। अपने साक्षात्कार के दौरान नागेश मोरे ने बताया कि उसने सात या आठ साल की उम्र से काम करना शुरू कर दिया था, इसलिए उसे कभी स्कूल जाने का मौक़ा ही नहीं मिला। भवन–निर्माण के अलावा उन्होंने मैला ढोने का काम भी किया ताकि अपने बच्चों के लिए पर्याप्त धन कमा सकें। सभी मोरे भाई ग्यारह साल से जेल में हैं। इन ग्यारह सालों में वे आठ साल से मृत्यु पंक्ति पर हैं ।

अलग क़ानून, किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम है।

किशोर होने का दावा बड़ा पेचीदा है। एक तो उम्र के सबूत का कोई लिखित प्रमाण पत्र नहीं होता, दूसरे गिरफ़्तारी के बाद लम्बा समय बीतने के कारण उनकी सही उम्र का पता लगाना और भी मुश्किल होता है। किंतु इससे अधिक चिंता का विषय यह है कि अदालत में किशोर होने के दावे पर ज़्यादातर ग़ौर नहीं करा जाता है। 18 किशोर क़ैदियों में से हम 15 क़ैदियों के अदालती फ़ैसलों का पता लगा सके, उनमें से 12 मामलों में किशोर होने का दावा ही नहीं किया गया था। बाक़ी फ़ैसलों में जहाँ किशोरावस्था का दावा किया गया था या तो अदालत ने बिना जाँच किए ही उन्हें ख़ारिज कर दिया या अपने फ़ैसलों में अपराध की जघन्यता को देखते हुए कोई तर्क नहीं माना और इस तरह के दावों को सतही तौर पर ख़ारिज कर दिया।

पूर्व आपराधिक रिकॉर्ड

क़ैदी का पिछले आपराधिक रिकॉर्ड एक और पहलू है, जिसे अक्सर सज़ा देने के दौरान माना जाता है। शंकर किसनराओ खड़े बनाम महाराष्ट्र राज्य,[4] मामले में सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया कि क़ैदी के ख़िलाफ़ कोई अपराधिक मुक़दमा सिर्फ़ दर्ज हो जाना ही मृत्युदंड देने में

4. (2013) 5 एससीसी 546

दलविंदर

दलविंदर को मई 1997 में पाँच व्यक्तियों की हत्या का दोषी मानते हुए मौत की सज़ा सुनाई गई थी। इससे पहले उसे एक महिला, जो मृतकों की रिश्तेदार थी, के बलात्कार के आरोप में दस साल की सज़ा मिली थी। हाई कोर्ट ने सुनवाई के समय यह अवलोकन करा कि बलात्कार के मामले में एक मृतक की गवाही ही हत्या का मक़सद था, जिसकी वजह से मौत की सज़ा सुनाई गयी। सुप्रीम कोर्ट ने भी इस निर्णय की पुष्टि की।

इसके बाद दलविंदर ने राष्ट्रपति को अपनी दया–याचिका पेश की जिसके विचार के दौरान उसे बलात्कार के मामले से बरी कर दिया गया। राष्ट्रपति ने उसकी दया याचिका को स्वीकार नहीं किया। दलविंदर ने राष्ट्रपति के इस फ़ैसले को चुनौती देते हुए हाईकोर्ट में रिट याचिका दायर करी जिसमें उसने कहा कि बलात्कार मामले में उसे निर्दोष साबित करनें वाले काग़ज़ राष्ट्रपति के सामने रखे ही नहीं गए। इस तथ्य को नज़र में रखते हुए हाई कोर्ट ने कहा कि जब दलविंदर को बलात्कार मामले में बरी कर दिया गया था तो इसका दया याचिका पर बड़ा असर हो सकता था। ख़ासकर इसलिए कि सुप्रीम कोर्ट ने उसके भाई की, जो सह–आरोपी था, मृत्यु–दंड की सज़ा कम कर दी, यह मानते हुए कि बलात्कार के मामले में वह शामिल नहीं था। इसे मद्देनज़र रखते हुए हाई कोर्ट ने दलविंदर की सज़ा को कम करते हुए कहा कि इसकी वजह से उसके मामले में पक्षपात हुआ जिस से उसके मूलभूत अधिकार का उल्लंघन हुआ और दया–याचिका पर सही परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं हुआ। हाई कोर्ट ने दलविंदर की सज़ा कम तो कर दी लेकिन तब तक वह जेल में बीस साल और चार महीने की सज़ा काट चुका था, जिसमें से सोलह साल पाँच महीने मृत्यु पंक्ति पर थे।

ग्राफ़िक 2:

मृत्युदंड पाए क़ैदियों के पिछले आपराधिक रिकॉर्ड

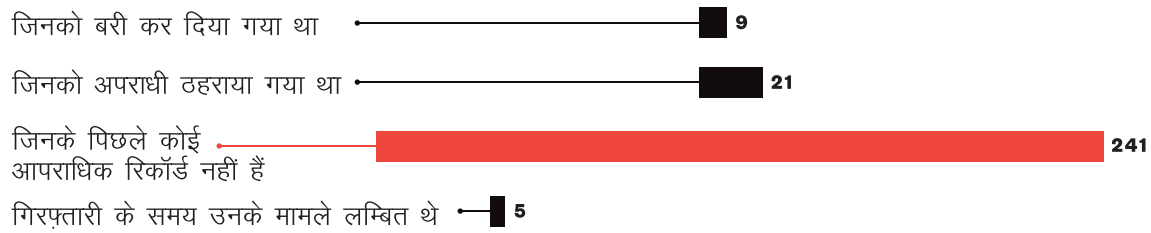

97 क़ैदियों के पिछले आपराधिक इतिहास की जानकारी उपलब्ध नहीं है।

प्रवर्धक परिस्थिति नहीं मानी जाएगी, जब तक कि अपराधी का उस मामले में दोष साबित ना हो जाए और सज़ा ना हो जाए'। इसलिए क़ैदी के पिछले अपराध तभी प्रासंगिक होंगे अगर उन अपराधों में क़ैदी का दोष साबित हो चुका हो।

हमारे अध्ययन में भारत में मृत्युदंड के क़ैदियों में से उन क़ैदियों की भारी संख्या थी जिनका कोई पिछला आपराधिक रिकॉर्ड नहीं था। 276 क़ैदियों में से 241 क़ैदी (87.3%) के कोई भी पिछले आपराधिक रिकॉर्ड नहीं थे। **(ग्राफ़िक 2)**

ग्राफ़िक 3:

मृत्युदंड पाए क़ैदियों के व्यवसाय

* इसमें सिर्फ़ 'अनियत शारीरिक श्रम वाले मज़दूर– गैर कृषि' वाले व्यवसाय को शामिल किया गया है।

अनियत शारीरिक श्रम वाले मज़दूर

- ऑटो – ड्राइवर
- ईंट के भट्टे पर मज़दूर
- बस कंडक्टर/ बस की सफ़ाई करने वाला
- निर्माण कार्य में मज़दूर
- दैनिक वेतन पर मज़दूर
- मुर्ग़ीपालन/ मछली पालन/ पशु–पालन में नियुक्त
- वस्त्रविक्रेता
- होटल/ खाने की जगहों पर मदद करने वाला
- सफ़ाई कामगार
- मरम्मत करने वाला
- रिक्शेवाला
- रद्दी विक्रेता
- मल ढोने वाला
- दुकान पर मदद करने वाला
- छोटी फ़ैक्टरी में कार्यरत
- सड़क पर समान बेचने वाला
- ट्रांसपोर्ट मज़दूर

कम भुगतान वाले निजी वेतनभोगी रोज़गार

- दुकान पर मदद करने वाला/सहायक
- घरेलू नौकर
- ड्राइवर
- चौकीदार
- अस्पताल का चपरासी

कम भुगतान वाले सार्वजनिक वेतनभोगी रोज़गार

- LIC के बीमा एजेंट
- म्यूनिसिपल सफ़ाई कर्मचारी

आर्थिक संकट

अध्ययन में हमने क़ैदियों के आर्थिक असुरक्षा के बारे में जो दस्तावेज़ बनाए हैं, वो उनके व्यवसाय (पेशे) पर आधारित हैं। माना कि सिर्फ व्यवसाय ग़रीबी सिद्ध नहीं कर सकता, मगर हमने इसे क़ैदियों की मापदंड के तौर पर इस्तिमाल करा हैं। हमारे व्यवसाय–आधारित विश्लेषण को चुनने के कई कारण हैं। अधिकांश मामलों में हमारे साक्षात्कार और आपराधिक घटना के बीच के समय का अंतराल बहुत अधिक था, जिससे क़ैदी और उनके परिवार वालों को याद ही नहीं था कि घटना के समय उनकी आमदनी क्या थी। ज़्यादातर लोगों का जवाब यही था कि भरण–पोषण जितनी खेती कर लेते थे। इसके अलावा अन्य पहलू जैसे बाल–मृत्यु दर, आहार, सेहत, साफ़–सफ़ाई और जीवन–स्तर के बारे में जानकारी इक्कठा करने में हम असमर्थ रहे।

आर्थिक संकट को निर्धारित करने के लिए हमने एक और तथ्य माना है– क़ैदी के पास अपनी कितनी ज़मीन है, ज़मीन पर खेती हो सकती है और खेती से कमाई; इसलिए यह आर्थिक सम्पत्ति भी हो सकती है। ज़मीन का मालिक होना व्यक्ति

स्वयं के छोटे उद्योग

- साइकिल मरम्मत की दुकान का मालिक
- स्वयं की टैक्सी का ड्राइवर
- वितरण व्यवसाय
- अनौपचारिक बैंकिंग
- चमड़े का काम
- फ़ोन कनेक्शन का व्यापार
- बैटरी इन्वर्टर का व्यापार
- गैराज का मालिक
- संगीत का शिक्षक
- छोटे ट्रांसपोर्ट व्यापार का मालिक
- पेट्रोल और सिगरेट विक्रेता
- सम्पत्ति दलाल
- दुकान का मालिक
- दर्ज़ी

सार्वजनिक वेतनभोगी रोज़गार

- सेना / सीमा सुरक्षा बल सिपाही
- श्रेणी के सरकारी कर्मचारी
- ज़िला परिषद कर्मचारी
- सरकारी विद्यालय का शिक्षक
- नगर निगम कर्मचारी
- पोलीस अफ़सर
- सार्वजनिक बैंक का क्लर्क
- सार्वजनिक निगम का ड्राइवर
- रेल कोच की कार्यशाला में कर्मचारी
- रेल क्लर्क
- राज्य परिवहन बस का ड्राइवर
- आशुलिपिक
- ट्यूब वेल का ऑपरेटर
- विश्वविद्यालय का प्रोफ़ेसर / प्रशासनिक अधिकारी

निजी वेतन भोगी रोज़गार

- वक़ील
- बैंक मैनेजर
- चार्टर्ड अकाउंटेंट
- हीरे की कटाई में कार्यरत
- वित्त कम्पनी मैनेजर
- बीमा कम्पनी सलाहकार
- बीमा कम्पनी कर्मचारी
- संस्थान से जुड़े स्कूल के मैनेजर
- निजी विद्यालय में शिक्षक
- निजी परिवहन कम्पनी का मैनेजर

मध्यम और बड़े व्यवसाय

- टिन पत्रक बनाने के उद्योग में कार्यरत
- भूमि–भवन बिक्री व्यापार में कार्यरत
- टेंट हाउस व्यापार
- लकड़ी का व्यवसाय
- कार्यक्रम प्रबंधक
- होटल मालिक
- चमड़े का उद्योगपति
- गाड़ी के अतिरित पुर्ज़ों की दुकान का मालिक
- कैंटीन स्टोर का मालिक
- कम्प्यूटर सेंटर का मालिक
- किराने की दुकान का मालिक
- मोड्यूलर किचन का व्यापार
- पान की दुकान का मालिक
- फ़ोटोग्राफ़ी के स्टूडियो का मालिक
- ट्यूशनकेंद्र का मालिक
- मसालों का थोक व्यापारी

की सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा को बढ़ाता है। इसलिए जो लोग चार से दस हेक्टेयर ज़मीन के मालिक हैं या जिनके पास इससे अधिक (दस हेक्टेयर से अधिक) ज़मीन है उनको हमने आर्थिक रूप से कमज़ोर श्रेणी में नहीं रखा है।

अध्ययन में क़ैदियों के व्यवसायों को निम्नलिखित तरीक़ों से वर्गीकृत किया गया है:

1 शारीरिक श्रम करने वाले और सामयिक मजदूर (कृषि और ग़ैर कृषि)
2 न्यूनतम और छोटे किसान (अपने या पट्टे की भूमि पर खेती जो चार हेक्टेयर से कम हो)
3 कम भुगतान वाले सार्वजनिक और निजी वेतनभोगी रोज़गार
4 खुद के छोटे उद्योग
5 छात्र
6 बेरोज़गार व्यक्ति
7 धार्मिक व्यवसाय
8 सरकारी और निजी वेतनभोगी रोज़गार
9 मध्यम और बड़े किसान (खुद के अथवा पट्टे पर भूमि की खेती जो चार हेक्टेयर से अधिक हो)
10 मध्यम और बड़े व्यापार

ऊपर दी गई कुछ श्रेणियाँ विभिन्न व्यवसायों के संग्रह का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिन्हें **(ग्राफ़िक 3)** में विभाजित किया गया है। इस अध्ययन के प्रयोजन के लिए हमने 1–6 श्रेणी के लोगों को 'आर्थिक रूप से कमज़ोर' माना है। जो मध्यम या बड़ी ज़मीन के मालिक थे (4–10 हेक्टेयर और 10 हेक्टेयर से अधिक) उन्हें 'आर्थिक रूप से कमज़ोर' की श्रेणी से बाहर रखा गया है।[5]

आर्थिक असुरक्षा का अनुभव 1–6 श्रेणियों के बीच बदलता रहता है। हमने वो सीमा रेखा तय करने का प्रयास किया है जिसके नीचे अभियुक्त की सार्थक रूप से क़ानूनी प्रक्रिया में भाग लेने की क्षमता काफ़ी कम हो जाती है। आपराधिक न्याय प्रणाली में अभियुक्त की भागीदारी में उसकी आर्थिक क्षमता की महत्वपूर्ण भूमिका है जैसे, उसकी ज़मानत प्राप्त करने की योग्यता, क़ाबिल वक़ील लेना, विशेषज्ञ गवाह लाना और हाई कोर्ट तथा सुप्रीम कोर्ट में अपील लड़ने की क्षमता रखना।

आर्थिक संकटः राष्ट्र और राज्य का विश्लेषण

हमारे अध्ययन में लगभग तीन चौथाई क़ैदी (74.1% या 274 क़ैदी) आर्थिक रूप से कमज़ोर थे। **(ग्राफ़िक 4)** 209 क़ैदी, जो आर्थिक रूप से कमज़ोर थे, उनमें से 63.2% अपने परिवार के मुख्य या अकेले कमाने वाले थे। **(ग्राफ़िक 5)**

5. इसके अतिरिक्त, हमने उन छात्रों और बेरोजगार व्यक्तियों को छोड़ दिया है जिनके परिवार के व्यवसाय श्रेणी 7–10 के बीच में है, या जिनके परिवारों के पास मध्यम या बड़े क्षेत्र की ज़मीन है।

ग्राफ़िक 4:

मृत्युदंड पाए क़ैदियों की आर्थिक स्थिति

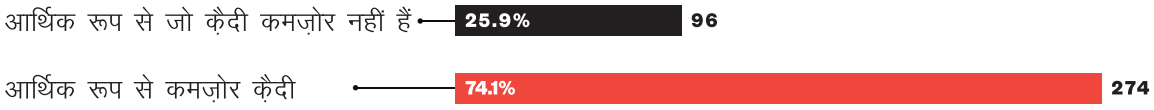

3 क़ैदियों की आर्थिक स्थिति के बारे में जानकारी उपलब्ध नहीं है।

ग्राफ़िक 5:

आर्थिक रूप से कमज़ोर क़ैदियों पर परिवारों की निर्भरता की स्थिति

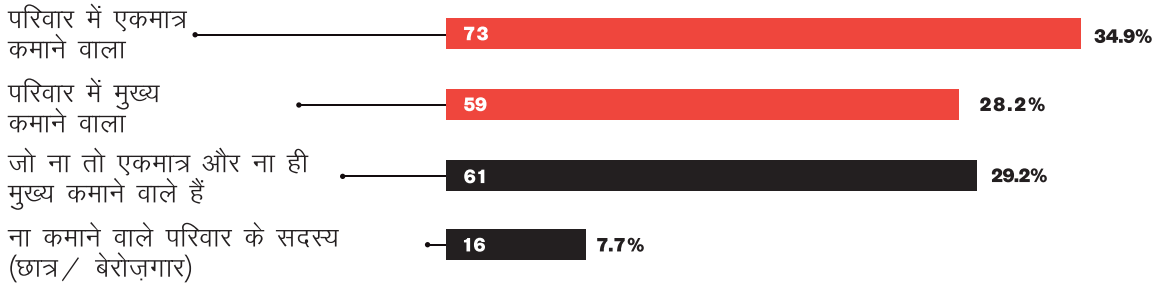

तालिका 3:

राज्य जिनमें आर्थिक रूप से कमज़ोर क़ैदियों का अनुपात अधिक है

राज्य	क़ैदी जो आर्थिक रूप से कमज़ोर नहीं हैं	क़ैदी जो आर्थिक रूप से कमज़ोर हैं
केरल	1	14
महाराष्ट्र	4	32
गुजरात	4	15
झारखंड	3	10
बिहार	13	39
छत्तीसगढ़	4	12
कर्नाटक	11	33
दिल्ली	6	24
मध्य प्रदेश	7	18
हरियाणा	3	7
उत्तर प्रदेश	30	48

ग्राफ़िक 6:

आर्थिक स्थिति का चरण बद्ध प्रतिनिधित्व

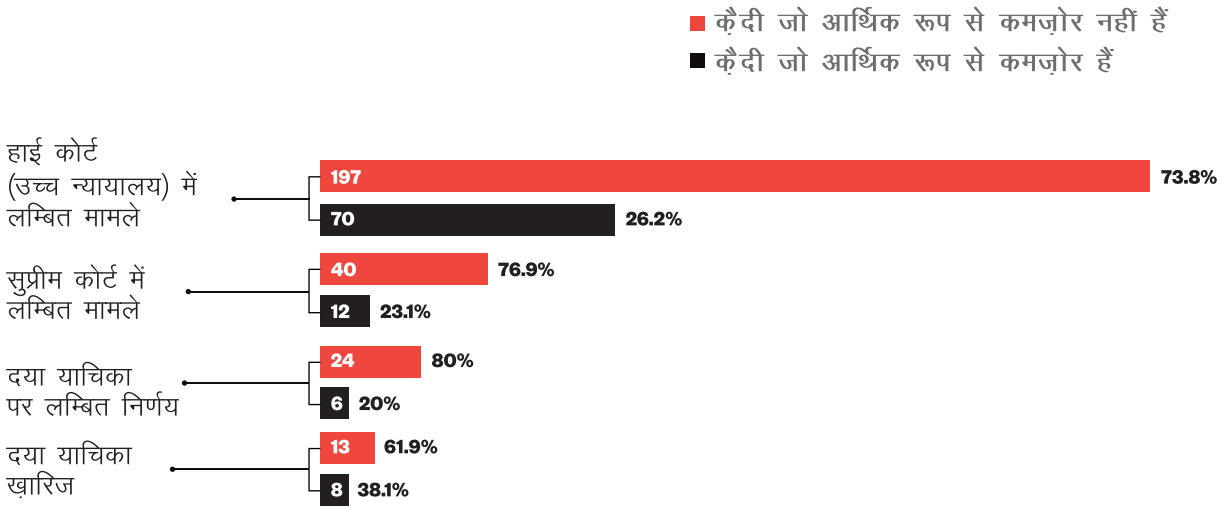

तीन क़ैदियों की आर्थिक स्थितिके बारे में जानकारी उपलब्ध नहीं है।

जिन राज्यों में दस से अधिक मृत्युदंड के क़ैदी थे उनमें से केरल में सबसे अधिक अनुपात था– 15 में से 14 यानि 93.3 प्रतिशत क़ैदी आर्थिक रूप से कमज़ोर थे। **(तालिका 3)** में उन अन्य राज्यों की सूची है जिनमें मृत्युदंड पाए क़ैदियों की संख्या अधिक है। उनमें से 75 प्रतिशत या अधिक वो क़ैदी हैं जो 'आर्थिक रूप से कमज़ोर' श्रेणी में आते हैं।

बिहार, कर्नाटक और उत्तर प्रदेश– प्रत्येक राज्य से एक क़ैदी की आर्थिक स्थिति की जानकारी उपलब्ध नहीं है। जिन राज्यों में दस से कम मृत्युदंड प्राप्त क़ैदी थे, उन राज्यों का डेटा यहाँ नहीं लिया गया है।

आर्थिक स्थिति का चरण–बद्ध तरीक़े से विश्लेषण

प्रत्येक चरण में– जैसे क़ानूनी कार्यवाही में जो मामले हाई कोर्ट या सुप्रीम कोर्ट में विचारधीन हैं, दया याचिका की अपील या उनकी नामंजूरी तक आर्थिक रूप से कमज़ोर मृत्युदंड पाए क़ैदियों का कुल अनुपात (74.1 प्रतिशत) दिखाई देता है। **(ग्राफ़िक 6)**

ये ध्यान रहे कि हमने घटना के समय की क़ैदियों की आर्थिक स्थिति निर्धारित की है। क़ानूनी लड़ाई में बहुत अधिक ख़र्चे होते हैं और क़ैदियों से जेल में भेंट करने के लिए भी परिवारों को अधिक ख़र्च उठाना पड़ता है, जिसके कारण जैसे–जैसे मुक़दमा अदालत में आगे बढ़ता है, क़ैदी की आर्थिक स्थिति बद से बदतर होती जाती है।

शैक्षिक स्थिति

मृत्युदंड पाए क़ैदियों की शिक्षा का स्तर उनकी सामाजिक उपेक्षा और वंचितता का एक महत्वपूर्ण सूचक है। यह हमें उनकी आर्थिक एवं सामाजिक रूपरेखा समझने में मदद करता है। शैक्षिक स्थिति यह भी सूचित करती है कि क़ानूनी कार्यवाही में वे किस प्रकार का अलगाव महसूस करते हैं और किस हद तक अपने ख़िलाफ़ केस और क़ानूनीं प्रक्रिया समझ पाते हैं।

(ग्राफ़िक 7) यह दिखाता है कि 23% क़ैदी कभी स्कूल नहीं गए। 9.6% क़ैदी स्कूल गए परंतु उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा भी पूरी नहीं की और 61.6% ने माध्यमिक स्कूल शिक्षा बीच में ही छोड़ दी।

ग्राफ़िक 7:

मृत्युदंड पाए क़ैदियों की शैक्षिक स्थिति

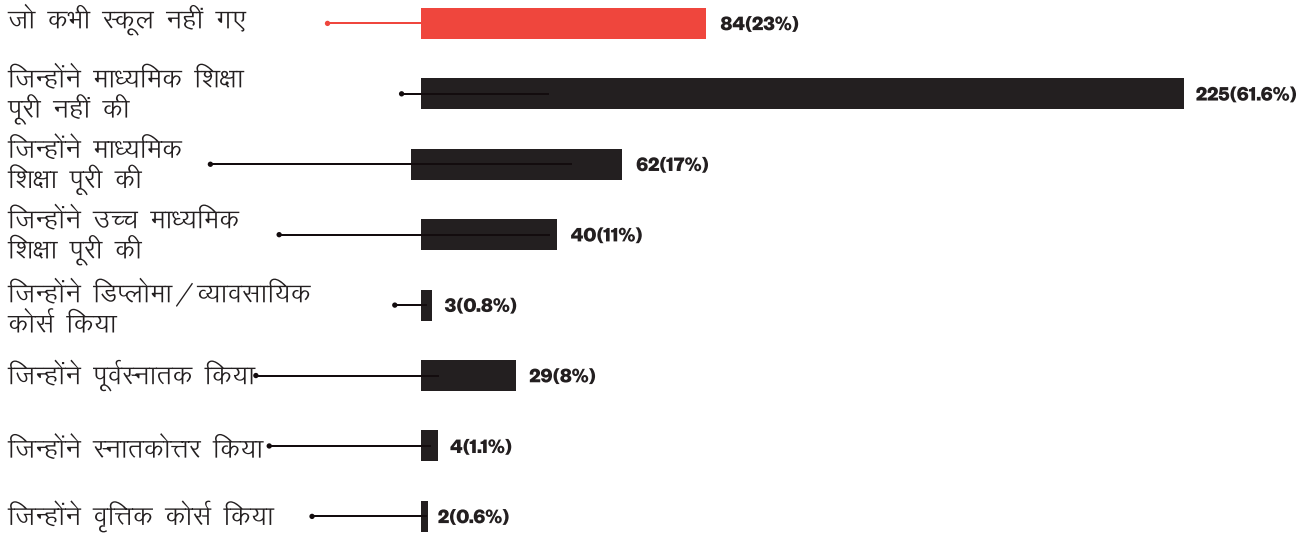

आठ क़ैदियों का शैक्षिक विवरण उपलब्ध नहीं है। वर्ग 'कभी स्कूल नहीं गए (84 क़ैदी), वर्ग 'माध्यमिक शिक्षा पूरी नहीं की' में शामिल है।

तालिका 4:

विभिन्न राज्यों में मृत्यु दंड पाए क़ैदियों की शैक्षिक स्थिति

राज्य	शैक्षिक स्तर				
	कभी स्कूल नहीं गए	माध्यमिक शिक्षा पूरी नहीं की	माध्यमिक शिक्षा पूरी की	उच्च माध्यमिक शिक्षा पूरी की	उच्च शिक्षा पूरी की
बिहार	18 (35.3%)	28 (57.2%)	9 (17.6%)	7 (13.7%)	5 (9.8%)
छत्तीसगढ़	2 (12.5%)	9 (56.3%)	5 (31.3%)	2 (12.5%)	0
दिल्ली	8 (26.7%)	19 (63.3%)	3 (10%)	4 (13.3%)	4 (13.3%)
गुजरात	1 (5.3%)	17 (89.5%)	1 (5.3%)	1 (5.3%)	0
हरियाणा	1 (10%)	5 (50%)	3 (30%)	1 (10%)	1 (10%)
झारखंड	6 (46.2%)	9 (69.2%)	3 (23.1%)	0	1 (7.7%)
कर्नाटक	15 (34.1%)	27 (62.8%)	9 (20.5%)	3 (6.8%)	5 (11.4%)
केरल	0	10 (71.4%)	3 (21.5%)	0	1 (7.1%)
मध्यप्रदेश	4 (16%)	12 (48%)	7 (28:)	5 (20%)	1 (4%)
महाराष्ट्र	6 (17.1%)	23 (65.7%)	4 (11.4:)	3 (8.6%)	5 (14.3%)
उत्तरप्रदेश	15 (19.5%)	47 (61%)	10 (13:)	10 (13%)	10 (13%)

इस तालिका में वर्ग 'कभी स्कूल नहीं गए (84 क़ैदी), वर्ग 'माध्यमिक शिक्षा पूरी नहीं की' में शामिल है। इन राज्यों में सात क़ैदियों के शैशिक स्तर की जानकारी उपलब्ध नहीं है।

चित्रभानु

पिता से पिटाई खाने पर चित्रभानु, जो तीसरी कक्षा में पढ़ रहा था, घर से भाग गया। काम की तलाश में पंजाब, दिल्ली और महाराष्ट्र भटकने के बाद वह एक मिठाई की दुकान पर छुट्टा काम करने लगा। उसने बताया कि गिरफ़्तारी के समय वह केवल बारह वर्ष का था। चित्रभानु ने जेल में फ़िर से पढ़ाई शुरू की और साक्षात्कार के समय वह समाज–शास्त्र में स्नातकोत्तर, साथ ही मानव अधिकार में सर्टिफ़िकेट कोर्स कर रहा था। उसने पर्यटन अध्ययन का कोर्स कर लिया था और अंग्रेज़ी बोलने में भी माहिर है। इसके बावजूद भी जेल में उसकी दिनचर्या शिक्षा पर ही केंद्रित है। चित्रभानु अपने भविष्य को लेकर बेहद चिंतित है जिसके कारण कई बार उसे रात में नींद नहीं आती। साक्षात्कार के समय चित्रभानु को जेल में 19 साल हो गए थे, जिसमें से 16 साल और 3 महीने मृत्यु पंक्ति पर थे।

जाति और धर्म संरचना

(ग्राफ़िक 8) से यह बात स्पष्ट है कि भारत में 76% (279 क़ैदी) मृत्युदंड पाए क़ैदी पिछड़ी जाति और धार्मिक अल्प–संख्यक हैं। यद्यपि हमारा उद्देश्य यह प्रस्तावित करना नहीं है कि मृत्युदंड देने में भेद–भाव होता है, फ़िर भी परिचर्चा में यह कहना ज़रूरी है कि किस तरह ग़रीब और उपेक्षित लोगों पर मृत्युदंड की सज़ा अपना असामान्य प्रभाव डालती है।

ग्राफ़िक 8:

मृत्युदंड पाए क़ैदियों की सामाजिक वर्गानुसार संख्या

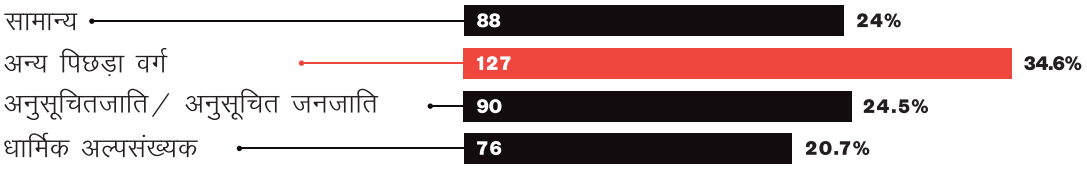

14 क़ैदी जो अन्य पिछड़ा वर्ग तथा धार्मिक अल्प संख्यक वर्ग दोनों में ही आते हैं, इनकी संख्या दोनों वर्गों में डाली गई हैं। छः क़ैदियों की जाति के बारे में जानकारी उपलब्ध नहीं है।

मूसाहर

मूसाहर, दलित जाति में निर्धनतम महा दलित माने जाते हैं। 2009 में मूसाहर जाति के दस लोगों को अन्य पिछड़े वर्ग (ओबीसी) के सोलह व्यक्तियों के नरसंहार के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई थी। इस में से नौ व्यक्ति अनपढ़ थे और कभी स्कूल नहीं गए थे। पूरे गाँव में मुनीश ही था जिसे कुछ औपचरिक शिक्षा मिली थी। सभी दस क़ैदी अपने परिवार के एकमात्र कमाने वाले थे। रामरंग के परिवार ने बताया कि उसकी गिरफ़्तारी के बाद उसके दस साल के बेटे को मजबूरन मज़दूरी करनी पड़ी। अपनी माँ और पाँच भाई–बहनों के लिए वह बच्चा अकेला कमाने वाला है। रामरंग का परिवार कई बार रात को ख़ाली पेट सोता है। उन्हें मालूम नहीं है कि हाई कोर्ट का क्या फ़ैसला होगा। रामरंग को चाहे मृत्युदंड हो या आजीवन कारावास, उसके परिवार के लिए तो दोनों ही सज़ा बुरी थी। हर हाल में उन्हें तो भूखे ही मरना है।

राज्यवार जाति और धर्म की संरचना का विश्लेषण

हालाँकि भारत में अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जन जाति वाले मृत्युदंड पाए क़ैदियों का अनुपात 24.5% है लेकिन उन राज्यों में से जहाँ दस या उससे अधिक क़ैदियों को मृत्युदंड मिला था महाराष्ट्र में 50%,मध्य प्रदेश में 36%, कर्नाटक में 36.4%, बिहार में 31.4% और झारखंड में 30.8% यह अनुपात काफ़ी अधिक था। **(ग्राफ़िक 9)** धार्मिक अल्पसंख्यकों की भागीदारी जिन राज्यों में अधिक थी वे हैं– गुजरात (79%), केरल (60%) और कर्नाटक (31.8%)

सबसे निचले पद पर यानि हाई कोर्ट में लम्बित मामलों में, मृत्युदंड पाए क़ैदियों की सामाजिक स्थिति लगभग सम्पूर्ण राष्ट्रीय आँकड़ों को दर्शाती है। जैसे–जैसे हम क़ानूनी कार्यवाही में पदानुक्रम नीचे से ऊपर जाते हैं, सामान्य श्रेणी के क़ैदियों की संख्या कम हो जाती है और तुलना में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की संख्या बढ़ जाती है। **(तालिका 5)**

ग्राफ़िक 9:

भिन्न –भिन्न राज्यों में मृत्युदंड पाए क़ैदियों का सामाजिक वर्ग

14 क़ैदी जो अन्य पिछड़े वर्ग तथा धार्मिक अल्पसंख्यक वर्ग दोनों में ही आते हैं, इनकी संख्या दोनों वर्गों में डाली गई हैं। छः क़ैदियों की जाति के बारे में जानकारी उपलब्ध नहीं है।

तालिका 5:

मृत्युदंड पाए क़ैदियों की संख्या में वर्गानुसार चरण–बद्ध विविधता

जाति	उच्च न्यायालय में लम्बित	सुप्रीम कोर्ट में लम्बित	दया याचिका लम्बित और ख़ारिज
सामान्य	71 (26.7:)	8 (15.7:)	9 (18:)
अन्य पिछड़ा वर्ग	98 (36.8:)	17 (33.3:)	12 (24:)
धार्मिक अल्प संख्यक	52 (19.6:)	15 (29.4:)	9 (18:)
अनुसूचितजाति / अनुसूचित जनजाति	55 (20.7:)	14 (27.5:)	21 (42:)

14 क़ैदी जो अन्य पिछड़े वर्ग तथा धार्मिक अल्प संख्यक वर्ग दोनों में ही आते हैं, इनकी संख्या दोनों वर्गों में डाली गई हैं। छः क़ैदियों की जाति के बारे में जानकारी उपलब्ध नहीं है। जिन क़ैदियों की सामाजिक स्थिति की जानकारी उपलब्ध थी, उनकी हर चरण में कुल संख्या के आधार पर प्रतिशत की गणना की गई है।

आतंकी अपराधों से सम्बंधित मृत्युदंड पाए क़ैदियों की सामाजिक स्थिति

इस अध्ययन में 373 क़ैदियों में से 31 क़ैदियों को आतंकी गतिविधियों के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई थी। इनमें से 29 क़ैदी (93.5%) अनुसूचित जाति एवं धार्मिक अल्प–संख्यक थे जिनमें से 19 मुसलमान थे (31 क़ैदियों का 61.3%)।

विभिन्न सामाजिक– आर्थिक कारक

पारस्परिक विभिन्न कारकों से हम मृत्युदंड पाए क़ैदियों की वंचितता की हद को समझ सकते हैं। इससे हमें यह भी जानकारी मिलती है कि उनकी आर्थिक–सामाजिक एवं शैक्षिक कमज़ोरियों की वजह से कितना अलगाव महसूस होता है और क़ानूनी लड़ाई में भाग लेने में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

शैक्षिक स्थिति और आर्थिक असुरक्षा

हमारे पास 364 क़ैदियों की आर्थिक एवं शैक्षिक जानकारी उपलब्ध थी। इनमें से 200 क़ैदी (54.9%) ऐसे थे जो दोनों स्थितियों में वंचित थे। उन्होंने माध्यमिक शिक्षा भी पूरी नहीं की और आर्थिक रूप से भी कमज़ोर थे। इनमें से 79 (21.7%) क़ैदी कभी स्कूल नहीं गए थे।[6]
(ग्राफ़िक 10)

शिक्षा स्तर के भीतर आर्थिक स्थिति का विश्लेषण करते हुए एक प्रबल रुझान देखा गया। जैसे–जैसे शिक्षा स्तर ऊपर उठता गया, वैसे–वैसे आर्थिक रूप से कमज़ोर क़ैदियों की संख्या घटती गई। जिन क़ैदियों की माध्यमिक शिक्षा पूरी नहीं हुई थी उनमें से 89.3% आर्थिक रूप से कमज़ोर थे। (224 में से 200 ऐसे थे जिनकी माध्यमिक शिक्षा अधूरी रह गई थी) लेकिन स्नातक स्तर के क़ैदियों में ये अनुपात कम हो गया जहाँ आर्थिक

6. नौ क़ैदियों की आर्थिक भेद्यता और शैक्षिक प्रोफ़ाइल के बारे में जानकारी उपलब्ध नहीं है।

ग्राफ़िक 10:

मृत्युदंड पाए क़ैदियों की शैक्षिक और आर्थिक स्थिति

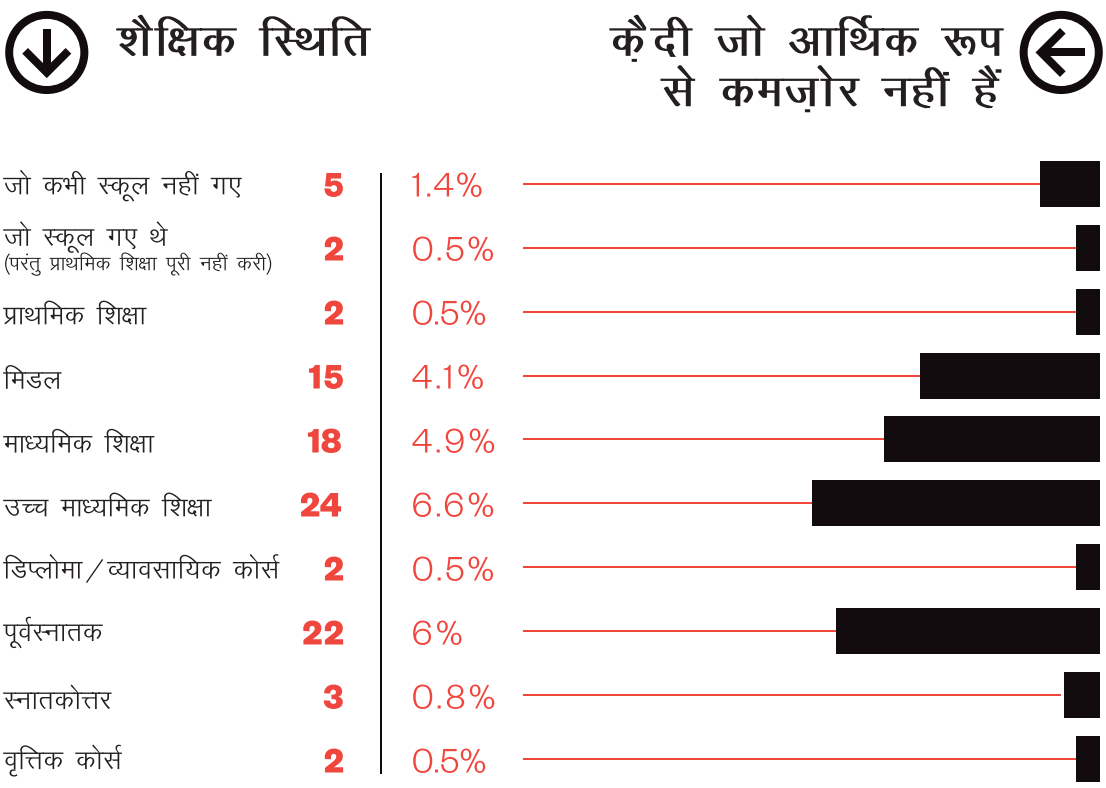

जिन क़ैदियों की शैक्षिक और आर्थिक स्थिति की जानकारी उपलब्ध थी (373 में से 364 क़ैदी), उनकी कुल संख्या के आधार पर प्रतिशत की गणना की गई है।

रूप से कमज़ोर क़ैदियों की संख्या 24.1% ही थी। (29 में से 7 क़ैदी पूर्व स्नातक थे)

आर्थिक रूप से कमज़ोर क़ैदियों में से 74.3% (269 में से 200 क़ैदी) ने माध्यमिक शिक्षा पूरी नही की थी। आर्थिक रूप से जो क़ैदी कमज़ोर नहीं थे उनमें से 25.3% (95 क़ैदी जो आर्थिक रूप से कमज़ोर नहीं थे, में से 24 क़ैदी) ने माध्यमिक शिक्षा पूरी नहीं की थी।

शैक्षिक और सामाजिक स्थिति

73.9% (65 क़ैदी) अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति श्रेणी में आने वाले क़ैदियों ने अपनी माध्यमिक शिक्षा पूरी नहीं की थी। उनमें से 36 (40.9%) कभी स्कूल नहीं गए थे। **(तालिका 6)**

64% (48 क़ैदी) धार्मिक अल्प–संख्यक थे और 61.5% (67 क़ैदी) पिछड़ी जाति (ओबीसी) के क़ैदी थे जिन्होंने माध्यमिक शिक्षा पूरी नहीं की थी। उसकी तुलना में सामान्य श्रेणी के 47.1% (41 क़ैदी) क़ैदियों ने अपनी माध्यमिक शिक्षा पूरी नहीं की थी।

क़ैदी जो अन्य पिछड़ा वर्ग तथा धार्मिक अल्पसंख्यक वर्ग दोनों में ही आते हैं, इनकी संख्या दोनों वर्गों में डाली गई हैं। छः क़ैदियों की सामाजिक श्रेणी और आठ क़ैदियों की शैक्षिक स्थिति के बारे में जानकारी उपलब्ध नहीं है। हर सामाजिक वर्ग में जिन क़ैदियों के शैक्षिक स्तर की जानकारी पता थी, उन क़ैदियों की कुल संख्या के आधार पर प्रतिशत की गणना की गई है।

कैदी जो आर्थिक रूप से कमज़ोर हैं

तालिका 6:

मृत्युदंड पाए कैदियों की प्रत्येक सामाजिक श्रेणी में शैक्षिक स्थिति

शैक्षिक प्रोफ़ायल	सामाजिक प्रोफ़ायल			
	सामान्य	अन्य पिछड़े वर्ग	अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति	धार्मिक अल्प संख्यक
माध्यमिक शिक्षा पूरी नहीं करी	41 (47.1%)	80 (65%)	65(73.9%)	48(64%)
माध्यमिक	22 (25.3%)	18 (14.6%)	13 (14.8%)	8 (10.7%)
उच्च माध्यमिक	13 (14.9%)	13 (10.6%)	7 (8%)	7 (9.3%)
पूर्वस्नातक	8 (9.2%)	11 (8.9%)	3 (3.4%)	7 (9.3%)
स्नातकोत्तर	2 (2.3%)	1 (0.8%)	0	1 (1.3%)
वृत्तिक कोर्स	1 (1.1%)	0	0	1 (1.3%)

ग्राफ़िक 11:

प्रत्येक सामाजिक श्रेणी में क़ैदियों की आर्थिक स्थिति

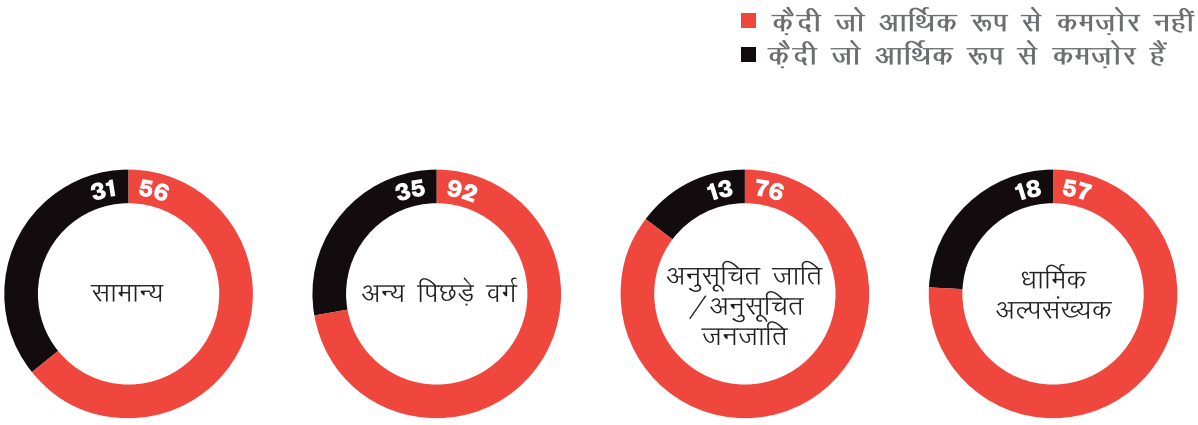

3 क़ैदियों की आर्थिक स्थिति और 6 क़ैदियों की सामाजिक वर्ग की स्थिति के बारे में जानकारी उपलब्ध नहीं है।

सामाजिक और आर्थिक स्थिति

प्रत्येक सामाजिक श्रेणी की आर्थिक स्थिति का डेटा देखा गया जिसमें 85.4% क़ैदी जो अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के थे वे आर्थिक रूप से भी कमज़ोर थे। **(ग्राफ़िक 11)**। इसकी तुलना में 64.4% आर्थिक रूप से कमज़ोर क़ैदी सामान्य श्रेणी के थे।

आर्थिक कमज़ोरी, शैक्षिक और सामाजिक स्थिति

क़ैदियों की शैक्षिक एवं सामाजिक स्थित को आर्थिक असुरक्षा के साथ अध्ययन से हमें उन क़ैदियों की संख्या पता करने में मदद मिली जो आपराधिक न्याय प्रणाली में तीनों कारकों से प्रभावित थे। जिन क़ैदियों को मृत्युदंड की सज़ा सुनाई गई थी उनमें से 48 क़ैदी (13.5%) आर्थिक रूप से कमज़ोर थे, कभी स्कूल नहीं गए थे और धार्मिक अल्पसंख्यक एवं अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के थे।[7] **(तालिका 7)**। इसके अलावा 108 क़ैदी (30.2%) जो आर्थिक रूप से कमज़ोर थे उन्होंने अपनी माध्यमिक शिक्षा पूरी नहीं की थी और वो भी धार्मिक अल्पसंख्यक या अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के थे।

इस तालिका में 'कभी स्कूल नहीं गए' वर्ग 'माध्यमिक शिक्षा पूरी नहीं की' में भी शामिल है। जिन क़ैदियों की शैक्षिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति की जानकारी उपलब्ध थी (373 में से 358 क़ैदी), उनकी कुल संख्या के आधार पर प्रतिशत की गणना की गई है।

7. 15 क़ैदियों की आर्थिक भेद्यता, शैक्षिक और / या सामाजिक प्रोफ़ाइल के बारे में जानकारी उपलब्ध नहीं है।

दत्ता

दत्ता का जन्म कोरबू समुदाय में हुआ जो भारत की एक अनुसूचित जनजाति के अंतर्गत आता है। शहर से 200 किलोमीटर दूर एक छोटे से गाँव में वह अपने माता–पिता के साथ एक मिट्टी की झोपड़ी में रहता था, जिसमें बिजली नहीं थी। अपने माता–पिता की तरह दत्ता भी निरक्षर था और कभी स्कूल नहीं गया था। वह 19वर्ष का था जब उसे गिरफ़्तार किया गया था और तब से वह अब तक जेल में था। अपने साक्षात्कार के समय उसने बताया कि जेल में उसका पढ़ाई के प्रति झुकाव हुआ। उस समय उसने इंदिरा गांधी खुला विश्वविद्यालय द्वारा संचालित दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम के माध्यम से पाँचवी कक्षा में नाम लिखवाया था। उसने गर्व से बताया कि उसने अपना और अपने पिता का नाम हिंदी में लिखना सीख लिया है। जब हमारे शोधकर्ताओं ने यह बात उसके माता–पिता को बताई तो वे खुशी से फूले नहीं समाए और उन्हें अपने बेटे पर गर्व हुआ। हालाँकि कुछ ही पलों में उनकी खुशी ग़ायब हो गई। उन्होंने तुरंत उन परिस्थितियों के बारे में बात की जिसमें उनके बेटे ने इस उपलब्धि को हासिल किया था और उसके अनिश्चित भाग्य पर चिंता व्यक्त की।

तालिका 7:

आर्थिक रूप से कमज़ोर क़ैदियों की शैक्षिक एवं सामाजिक स्थिति

शैक्षिक प्रोफ़ायल	जाति	क़ैदी संख्या
जो कभी स्कूल नहीं गए	सामान्य	8 (2.2%)
	अन्य पिछड़े वर्ग	21 (5.9%)
	अनुसूचितजाति/अनुसूचित जनजाति	12 (3.4%)
	धार्मिक अल्प संख्यक	36 (10.1%)
जिन्होंने माध्यमिक शिक्षा पूरी नहीं करी	सामान्य	32 (8.9%)
	अन्य पिछड़े वर्ग	67 (18.7%)
	अनुसूचितजाति/अनुसूचित जनजाति	44 (12.3%)
	धार्मिक अल्प संख्यक	64 (17.9%)

मृत्युदंड पाने वाली महिला क़ैदी

हमारे अध्ययन के दौरान 12 मृत्युदंड पायी क़ैदी महिला थीं जो 385 क़ैदियों में से 3.1% थीं।

घटना के समय इनमें से 7 महिलायें 26 से 40 वर्ष की आयु के बीच कीथीं, दो 21 वर्ष से कम और एक 60 साल के ऊपर थी।[8] यहाँ एक बार फ़िर सुप्रीमकोर्ट के उस फ़ैसले पर ध्यान देना उपयुक्त होगा जहाँ बचन सिंह[9] के केस में कहा गया था कि युवा और वृद्ध व्यक्ति को मौत की सज़ा नहीं दी जाएगी। महिला क़ैदियों की उम्र, घटना के समय और साक्षात्कार के समय (**तालिका 9**) में दी गई है।

8. घटना के समय एक महिला क़ैदी के उम्र की जानकारी उपलब्ध नहीं है।

9. बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य (1980) 2 एससीसी 684, पैराग्राफ़ 206।

तालिका 8:

मृत्युदंड प्राप्त महिला क़ैदी

राज्य	संख्या
दिल्ली	3
महाराष्ट्र	3
उत्तर प्रदेश	2
छत्तीसगढ़	1
हरियाणा	1
कर्नाटक	1
मध्य प्रदेश	1

तालिका 9:

मृत्युदंड प्राप्त महिला क़ैदियों की उम्र

उम्र	महिला क़ैदियों की संख्या	
	घटना के समय	साक्षात्कार के समय
18–21	2	0
22–25	1	1
26–40	7	7
41–60	0	2
60 से ज़्यादा	1	1

एक महिला क़ैदी के बारे में जानकारी उपलब्ध नहीं है।

सामाजिक स्थिति के संदर्भ में मृत्युदंड पाने वाली सभी महिला क़ैदी पिछड़े वर्ग की या मुसलमान थीं। **(तालिका 10)**। उनमें से अधिकांश अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी)(सात क़ैदी) की थीं और तीन अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की थीं। शेष दो क़ैदी मुसलमान थीं।

महिला क़ैदियों की शैक्षिक स्थिति के विश्लेषण से पता चला कि उनमें से छः कभी स्कूल नहीं गईं

तालिका 10:

मृत्यदंड प्राप्त महिला क़ैदियों की सामाजिक स्थिति

जाति	महिला क़ैदियों की संख्या
अन्य पिछड़े वर्ग	7
अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति	3
धार्मिक अल्प संख्यक	2

तालिका 11:

मृत्युदंड पाने वाली महिला क़ैदियों की शैक्षिक स्थिति

शैक्षिक प्रोफ़ायल	महिला क़ैदियों की संख्या
जो कभी स्कूल नहीं गई	6
जिन्होंने माध्यमिक शिक्षा पूरी नहीं की	7
माध्यमिक शिक्षा पूरी की	1
उच्च माध्यमिक शिक्षा पूरी की	2
स्नातकोत्तर	1

तालिका 12:

मृत्युदंड पाने वाली महिला क़ैदियों की व्यावसायिक और आर्थिक स्थिति

व्यवसाय	महिला क़ैदियों की संख्या	आर्थिक स्थिति
बेरोज़गार	9	आर्थिक रूप से कमज़ोर
अनियत शारीरिक श्रम वाले मज़दूर–गैर कृषि	1	आर्थिक रूप से कमज़ोर
सार्वजनिक वेतनभोगी रोज़गार	1	आर्थिक रूप से कमज़ोर नहीं
निजी वेतनभोगी रोज़गार	1	आर्थिक रूप से कमज़ोर नहीं

तालिका 13:

प्रत्येक राज्य में महिला क़ैदियों की अपराध–आधारित संरचना

अपराध के प्रकार	महिला क़ैदियों की संख्या
डकैती के साथ हत्या	1
अपहरण के साथ हत्या	2
हत्या	8
आतंक अपराध	1

थीं। **(तालिका 11)**।[10] एक ने प्राथमिक शिक्षा पूरी की थी, एक ने माध्यमिक और दो ने उच्च माध्यमिक शिक्षा पूरी की थी। सिर्फ़ एक महिला क़ैदी थी जिसने दो विषयों में स्नातक किया था– अंग्रेज़ी और भूगोल में।

इस तालिका में 'कभी स्कूल नहीं गए' वर्ग 'माध्यमिक शिक्षा पूरी नहीं की' में भी शामिल है। एक महिला क़ैदी की शैक्षिक स्थिति की जानकारी उपलब्ध नहीं है।

10. एक महिला क़ैदी की शैक्षिक स्थिति के बारे में जानकारी अनुपलब्ध है।

ज़ैना

ज़ैना और साबिक़ को ज़ैना के परिवार के सात सदस्यों की हत्या के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई। ज़ैना ने अपने बेटे को जेल में जन्म दिया। जेल के नियमों के अनुसार वह लगभग सात वर्ष तक उसके साथ रहा। ज़ैना के शिक्षा स्तर की वजह से उसे जेल में अन्य बच्चों को पढ़ाने की अनुमति मिल गई थी जिसके बदले जेल प्रसाशन से उसे कुछ पैसे मिल जाते थे। जेल के नियमानुसार, ज़ैना के सात वर्षीय बेटे को उससे अलग होना पड़ा था। यह निर्णय लेने के दौरान ज़ैना ज़बरदस्त भावनात्मक अशांति से गुज़री थी। वह नहीं चाहती थी कि उसका बेटा राज्य कल्याण एजेन्सी में भेजा जाए इसलिए उसने बेटे को अपने पुराने दोस्त के पास रहने के लिए भेज दिया था। ज़ैना और साबिक़ के मृत्युदंड की पुष्टि करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि नाबालिग निर्भर संतान होना सज़ा देने के लिए अप्रासंगिक कारक है।

उनकी गिरफ़्तारी के समय बारह महिला क़ैदियों में से नौ बेरोज़गार थीं, जबकि एक दैनिक वेतन पाने वाली मज़दूर थी। **(तालिका 12)**। केवल दो महिला क़ैदी वेतन पा रही थीं। एक सरकारी स्कूल में शिक्षिका थी और एक किसी बीमा कम्पनी में काम करते हुए उच्च शिक्षा के लिए पढ़ाई जारी रखे हुई थी।

अपराधों की श्रेणी, जिनमें महिला क़ैदियों को मौत की सज़ा सुनाई गई थी वो हैं: अपहरण और हत्या, डकैती के साथ हत्या, आतंकी अपराध और केवल हत्या। **(तालिका 13)**। बारह महिला क़ैदियों में से आठ को पूर्णतया केवल हत्या के लिए केवल मौत की सज़ा दी गई। आतंकवादी अपराध के लिए मौत की सज़ा पाने वाली एक मात्र महिला क़ैदी मुसलमान थी। यह उल्लेखनीय है कि सभी महिला क़ैदी जिन्हें मृत्युदंड मिला था उनके साथ पुरुष–सह–अपराधी थे।[11]

महिला क़ैदियों में से माही और अदिता ने जेल में सबसे लम्बा समय काटा था। जेल में 18 साल में से उन्होंने 13 साल मृत्यु पंक्ति पर बिताए थे।

अपने बचपन के अनुभवों पर चर्चा करते समय 12 में से सात महिला क़ैदियों ने कहा 18 वर्ष की उम्र से पहले ही उनकी शादी हो चुकी थी। इनमें से नूरिया की सबसे कम उम्र में शादी हुई थी। तब वो केवल दस वर्ष की थी। एक और क़ैदी, रोशनी ने कहा कि उसकी शादी पंद्रह साल की उम्र में हुई थी और पहला बच्चा सोलह साल की उम्र में हो गया था। शादी के शुरू के दिनों में उसका पति उसको मारता था, बाहर काम के लिए जाने से मना करता था और घर पर ही रहने के लिए मजबूर करता था। निर्मिति ने कहा कि उसकी शादी तेरह वर्ष की आयु में हो गई थी और उसे कभी स्कूल पढ़ने नहीं भेज गया क्योंकि वह एक लड़की थी। उसने बताया कि इस मामले में फ़सने से पहले उसने अपने घर की चार–दीवारों के बाहर कभी किसी से बात नहीं की थी। परंतु जेल में रह कर अब वो अपने मन की बात बोलना सीख गई है।

11. इनमें से एक मामले में माही और आदिता को माही के पति (जिसे सत्र अदालत ने माफी दे दी थी) द्वारा दिए गए अनुमोदक साक्ष्य के आधार पर दोषी ठहराया गया और मौत की सज़ा सुनाई गई। अनुमोदक साक्ष्य के बारे में अधिक जानकारी के लिए, 'मुक़दमा और अपील' पर अध्याय 7 देखें।

हिरासत के अनुभव

इस अध्याय में क़ैदियों की गिरफ़्तारी (या आत्मसमर्पण) के समय के अनुभव और ट्रायल से पहले उन के साथ पुलिस और जाँच एजेंसियों द्वारा किये गए बर्ताव पर फोकस किया गया है। आपराधिक क़ानूनी प्रक्रिया में अपराधों की जाँच और ट्रायल के लिए सबूत जुटाने में यह चरण महत्वपूर्ण है। संविधान और दण्ड प्रक्रिया की संहिता (Code of Criminal Procedure) 1973 ऐसी आवश्यक धाराएँ हैं जो पुलिस को मामलों की जाँच करते समय अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करने से बचाव प्रदान करती हैं। परंतु मृत्युदंड पाए क़ैदियों की गिरफ़्तारी (या आत्मसमर्पण) के समय के अनुभव और हिरासत में पुलिस और जाँच एजेंसियों द्वारा किया गया व्यवहार, एक बड़े पैमाने पर हिरासत में हिंसा और संवैधानिक सुरक्षा के नियमों के उल्लंघन की चौंका देने वाली तस्वीर सामने लाता है। यह चौंका देने वाली इसलिए है क्योंकि क़ानूनन हिरासत में अपराधियों के संवैधानिक अधिकारों की सुरक्षा ना केवल एक अपराधी का मौलिक अधिकार है, बल्कि यह समाज में क़ानून के प्रति सम्मान को भी दर्शती है।

हिरासत में यातना

हमारे अध्ययन के 80% क़ैदियों ने जब पुलिस हिरासत के अपने अनुभवों के बारे में बात की तो यह स्वीकार किया कि उन्हें हिरासत में यातनाएँ सहनी पडीं।[1] न केवल यह संख्या चौंका देने वाली थी बल्कि पुलिस द्वारा यातना देने के तरीक़े अमानवीय, अपमानजनक तथा शारीरिक और मानसिक पीड़ा के चरम रूप थे।

क़ैदियों द्वारा वर्णित अलग–अलग यातनाओं ने अक्सर उनके स्वास्थ्य और शारीरिक पवित्रता तथा अखंडता पर स्थाई प्रभाव छोड़े हैं। हिरासत में हिंसा के कुछ स्थाई प्रभाव जिनके बारे में क़ैदियों ने शिकायत की है वे हैं– स्थाई रूप से आँख और कान को नुक़सान, अंगों और अन्य शारीरिक भागों को अपूर्णीय क्षति, रीढ़ की हड्डी पर चोट। हमने अक्सर पुलिस हिरासत में लंबे समय तक तीव्र बिजली के झटकों के कारण क़ैदियों के

1. पुलिस हिरासत में अपने अनुभव के बारे में बात करने वाले 270 क़ैदियों में से, 216 (80%) ने हिरासत में हिंसा की बात की है।

गंभीर सिर दर्द के बारे में सुना। एक क़ैदी ने दावा किया कि उसे पुलिस हिरासत में लंबे समय तक बिजली के झटकों के कारण मिर्गी के दौरे पड़ने लगे। हिरासत में हिंसा के कारण जो पीड़ा क़ैदियों ने सही उसके अन्य हानिकारक परिणाम तीव्र दर्द और सूजन के कारण भोजन खाने में अक्षमता, पेशाब में रक्त, शरीर के विभिन्न भागों में फ्रैक्चर, मुंह, कान या गुदा से खून बहना है।

सुप्रीम कोर्ट ने बार–बार यह ठहराया है कि भारत के संविधान के अनुछेद 21 के तहत यातना, जीवन के अधिकार का उल्लंघन करता है जो मौलिक अधिकारों का एक प्रबल उल्लंघन है।

ग्राफिक 1:

राज्यवार हिरासत में हिंसा का विश्लेषण

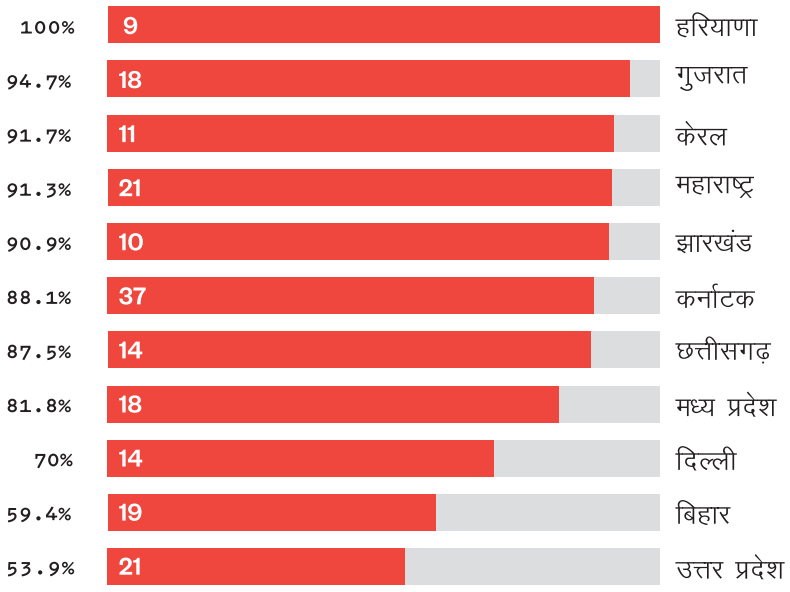

हरियाणा में एक क़ैदी, केरल से तीन, महाराष्ट्र से तेरह, झारखंड से दो, कर्नाटक से तीन, मध्य प्रदेश से तीन, दिल्ली से दस, बिहार से इक्कीस, और उत्तर प्रदेश से चालीस क़ैदियों की जानकारी उपलब्ध नहीं है।

ग्राफिक 2:

यातना के प्रकार

नाखूनों में सुई चुभोना

उलटा लटका कर मारना

हाथ–पाँव को मोटर वाली मशीन से बाँध देना

मिर्ची के बोरे में बंद करके पेड़ से लटका कर पुलिस की बंदूक़ से पीटना

मार मार कर बेहोश कर देना, फ़िर पानी या चाय पिलाकर एक जगह पर एक टाँग पर कूदने के लिए कहना

टायर के अंदर बिठा कर पीटना

मुठभेड़ में हत्या की धमकी देना

नाखूनों को खींच कर निकालना

चेहरे/सर/गुप्तांग/पाँव के तलवों पर बेल्ट/ लोहे की छड़/पाइप से पीटना

साबुन के पानी को नाक में डालना

सर को दीवार या काँच पर दे मारना

क़ैदी के गीले बदन, होंठ, निपल्स और गुप्तांग से बिजली के करंट पारित करना

वॉटर बोर्डिंग (मुँह और नाक में पानी भरने की प्रताड़ना ताकि लगे कि डूब रहे हैं)

शौचालय इस्तेमाल करने पर मनाही

त्वचा को सिगरेट या आग से जलाना

पेट्रोल को बदन पर डालना

बालों से खींचना

लम्बी अवधि तक खाना और पानी नहीं देना

शौचालय में सर डुबा देना

दाँतों को तोड़ना

उँगलियों को प्लायर से खींच कर तोड़ना

एकांत कारावास

बहुत देर तक बैठने ना देना

बर्फ़ की सिल्ली पर लिटा कर पैर तोड़ देना

गुदा में ज़बरदस्ती पाइप घुसेड़ना

टेबल पर नंगा बाँधकर कमरे में साँप छोड़ देना

हीटर पर पेशाब करने के लिए मजबूर करना

रोलर्ज़ से बदन को दबाना

तार से लटकाना

हाथ–पाँव को बेड़ियों में बाँधना/ टेबल कुर्सी से बाँधना/ या चेन से बाँधना

'एरोप्लेन' – हाथ और पाँव को पीठ पीछे बाँध कर पेट को ज़मीन से लगाकर फ़िर शरीर को ऊपर खींचना

ज़बरदस्ती नशा करवाकर पिटाई करना

'ऐसी चीज़ें जिनके बारे में बात भी नहीं कर सकते'

पेशाब पीने के लिए मजबूर करना

लम्बी अवधि के लिए नंगा रहने के लिए मजबूर करना

बर्फ़ जैसे ठंडे पानी में डुबोना

घावों पर मिर्ची पाउडर लगाना

हाथ–पाँव को बहुत ज़ोर से खींचना

महिला क़ैदी

महिला क़ैदियों में अमनप्रीत, जो गिरफ़्तारी के समय गर्भवती थी, ने बताया कि उसके शरीर को रोलर्स से दबाया गया जिसके कारण उसका गर्भपात हो गया। उसने यह भी बताया कि उस पर अत्यंत गर्म और ठंडा पानी बारी–बारी से डाला गया था। यह कार्य पुरुष व महिला पुलिस अधिकारियों की मौजूदगी में किया गया। अकीरा ने साझा किया कि उसे बिजली के झटके दिये गए और उसके बाद घावों पर मिर्च पाउडर मला गया। यह पीड़ा पहुँचाते वक्त पुलिस टीवी की आवाज़ बढ़ा देते थे ताकि कोई उसकी चीख पुकार न सुन सके। एक अन्य मामले में, रोशनी को एक कुर्सी से बांध कर पीटा जिसके कारण उसके पैर की हड्डी को क्षति पहुंची। इस दौरान उसे बार–बार अपराध क़बूल करने के लिए मजबूर किया गया ।

आतंकी अपराध

आतंकी अपराध के लिए मौत की सज़ा पाऐ हुए 22 क़ैदी जिन्होंने हिरासत हिंसा के बारे में बात की, उनमें से 16 ने बताया कि उन्हें हिरासत में रहते हुए यातनाएं दी गईं। आतंकी अपराधों में फंसे क़ैदियों ने पुलिस हिरासत में उन पर किए गए अत्याचार का विस्तृत लेखा–जोखा साझा किया।

महमूद को बुरी तरह से पीटा गया, गुप्तांगों में बिजली के करंट दिये गए और सिर्फ खाने के समय को छोड़कर पुलिस अभिरक्षा की पूरी अवधि के दौरान उसकी आंखों पर पट्टी बांधे रखी। उसके सह आरोपी, जाएद ने कहा कि जो गंभीर यातना मिली, उसके कारण कपड़े उतारते समय उसकी त्वचा छिल कर निकल जाती। कई विस्फोटों के लिए जिसके परिणामस्वरूप 22 लोगों की मौत हो गई थी, दोषी ठहराए गए चंपक ने बताया कि पुलिस ने उसके शरीर के अंदर एक लोहे की छड़ डाली और 20 दिन तक बिजली के करंट दिये।

कई व्यतियों की हत्या और संपत्ति के विनाश के लिए मृत्युदंड पाए क़ैदियों के ज्वलंत खाते इस बात की पूरी जानकारी देते हैं कि आतंकी गतिविधि के संदिग्ध व्यक्तियों के साथ हिरासत में किस प्रकार का बर्ताव हो रहा है। इन क़ैदियों के मामले पहले आतंकवाद निवारण अधिनियम, 2002 (POTA) के तहत दर्ज किए गए थे। 2004 में 'पोटा' को निरस्त किए जाने के बाद केंद्र सरकार द्वारा गठित समीक्षा समिति ने इसमें पंजीकृत सभी लंबित मामलों की जाँच की। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि मामले में अभियुक्त को इस क़ानून के तहत जाँचने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह घटना 'पोटा' के तहत कथित 'षड्यंत्र' का हिस्सा नहीं थीं।

क़ैदियों ने पुलिस हिरासत में जिस तरीक़े से उन पर अत्याचार किया गया उसके चौंका देने वाले अनुभवों का ब्योरा साझा किया। हाजिम को एक पेड़ से बांध कर पीटा गया, बिजली के करंट

अमान को एक हाई प्रोफाइल यौन हिंसा के मामले में मौत की सज़ा सुनाई गई। पुलिस रिमांड में उसके कपड़े उतार कर बेल्ट व बांस के डंडे से पीटा गया। उसके चेहरे और गुप्तांग में बिजली के करंट दिये गए जिसके कारण अत्यधिक रक्तस्राव हुआ। उसने यह भी बताया कि पुलिस ने जबर्दस्ती उसके वीर्य का नमूना इकट्ठा किया और 10–15 कोरे कागजों पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया। मेडिकल परीक्षा के लिए ले जाने से पहले पुलिस ने उसे हिरासत में लेकर उसके द्वारा झेली जा रही हिंसा के संबंध में, डॉक्टर को नहीं बताने का निर्देश दिया। फ़िर से अत्याचार होने के डर से उसने मजिस्ट्रेट को बताया कि पुलिस ने उस पर कोई बल प्रयोग नहीं किया था। रिमांड की अवधि बढ़ने पर पुलिस ने उसे निर्दयता से मारना जारी रखा। एक ब्योरे में जहाँ पुलिस के अधिकारियों से अपेक्षाओं के स्तर को इंगित करना था, अमान ने कहा कि रात की ड्यूटी वाले पुलिस कर्मी 'अच्छे लोग' थे, सिर्फ इसलिए कि उन्होने उस पर अत्याचार नहीं किया।

लगाए गए और लगातार एक मुठभेड़ में हत्या करने की धमकी दी गई। उसके सह आरोपी इम्तियाज को अपना मूत्र पीने के लिए मजबूर किया गया और उसके हाथ व पैर की उंगलियों में सूइयाँ डाली गईं। अपने साक्षात्कार के दौरान उसने बताया कि हर बार उसे 'आतंकवादी' कह कर पुकारते थे जो उसके लिए भयावह था।

यौन अपराध

यौन अपराध के लिए मौत की सज़ा पाने वाले क़ैदियों मे से 70 ने हिरासत में यातनाओं के बारे में बात की। उसमें से 63 ने स्वीकारा कि उनके साथ पुलिस हिरासत में अत्याचार हुआ। यौन अपराधों से संबंधित मामलों में फंसे क़ैदियों के ब्योरों में पुलिस अधिकारियों द्वारा यौन शोषण के खाते भी हैं।

मयूर ने बयान दिया कि उसके सारे कपड़े उतार कर मेज पर बांध दिया गया और एक सांप को कमरे में छोड़ दिया गया। इसके अलावा पुलिस ने उसके लिंग को जकड़ कर उसमें से बिजली के करंट पारित किए। हिरासत में अपने अनुभवों की चर्चा करते हुए बृजमोहन ने कहा कि पुलिस ने उसे तीन दिन तक नग्न रखा और उसके गुप्तांग पर प्रहार किया। हरिकिशन को बयान देने के लिए मजबूर करने के लिए पुलिस अधिकारी ने उसके कपड़े उतार दिए और एक सुई उसके लिंग में डाल दी। यौन शोषण के अलावा, कई क़ैदियों ने यह भी कहा कि उनके हाथ व पैरों के नाखूनों को खींच कर बाहर निकाला गया और उन्हें भोजन और पानी से वंचित रखा गया।

पुलिस अधिकारियों के सामने इक़बालिया बयान

पुलिस अधिकारी[2] को बयान और पुलिस हिरासत में (एक मजिस्ट्रेट को छोड़कर)[3] बयान भारतीय साक्ष्य अधिनियम (Indian Evidence Act), 1872 (IEA) के तहत अस्वीकार्य हैं। यह अधिनियम इसे स्वीकारता है कि पुलिस हिरासत में लोग प्रताड़ना की चपेट में आ सकते हैं। इस तरह के बयान को अमान्य करने से क़ानून यह संदेश भेजना चाहता है कि पुलिस को कठोर बल और यातना के प्रयोग से बयान ले कर सज़ा देने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। हिरासत में यातना को रोकने के लिए कई न्यायिक और

2. धारा 25, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872

3. धारा 26, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872

विधायी प्रयासों के बावजूद क़ैदियों ने बताया कि पुलिस नियमित रूप से अमानवीय और अपमानजनक प्रथाओं का प्रयोग करती है।

जिन 92 क़ैदियों ने कहा कि उन्होंने पुलिस हिरासत में जुर्म क़बूल किया, उनमें से 72 (78.3%) ऐसे थे जिन्होंने यातना के कारण बयान देने की बात कही। इस तरह के बयानों को निकलवाने के लिए अत्यधिक शारीरिक हिंसा से लेकर उनके परिवार के सदस्यों को नुकसान की धमकी देने तक जैसी तकनीकों को काम में लिया गया। इन क़ैदियों के आख्यान पुलिस की क्रूरता के सामने उनकी लाचारी का चित्रण करते हैं और यह स्पष्ट करते हैं कि उनके लिए जुर्म क़बूल करना ही इस बेदर्द यातना से राहत पाने का एकमात्र तरीका था।

शालिन शर्मा एक नाबालिग के अपहरण और हत्या के मामले में तीन अन्य लोगों के साथ अपराधी ठहराया गया था। उसने बताया कि पुलिस ने उसके कपड़े उतार कर उसके शरीर पर पेट्रोल डाला। इस के बाद बंदूक की नोक पर अपराध को क़बूल करने के लिए उसे मजबूर किया गया। एक अन्य मामले में बकुलभाई को धमकी दी गई कि उनके परिवार के सदस्यों को नुकसान पहुँचाया जाएगा। उसे बताया गया कि उसकी बहन और मंगेतर भी पुलिस हिरासत में थे। उसे अपने माता–पिता की वो तस्वीरें दिखाई गईं जहाँ वे अपना घर छोड़ एक किराए के घर में रह रहे थे। अपने परिवार को नुकसान पहुँचने के डर से उसने एक नाबालिग का अपहरण और हत्या करने की बात क़बूल कर ली। दूसरी ओर रोशन की कहानी उन क़ैदियों की दुर्दशा पर प्रकाश डालती है, जिन्होंने क़बूल करने से इन्कार कर दिया बावजूद इसके कि उन्हें बार–बार यातनाएं दी गईं। पुलिस ने उसके हाथ और पाँव खींच कर चौड़े किए और गंभीर रूप से उसकी पिटाई की। उस पर वाटरबोर्डिंग जैसी तकनीक (जहाँ पानी में उलटा लटका कर डुबाने की कोशिश की जाती है) का इस्तेमाल किया गया और पाँव के नाखूनों को खींच कर निकाला ताकि वह मजबूर हो कर एक नाबालिग लड़की के बलात्कार और हत्या के अपराध को क़बूल कर ले।

प्रक्रियात्मक सुरक्षा के उल्लंघन

भारत के संविधान, दण्ड प्रक्रिया की संहिता (Code of Criminal Procedure),1973 (सीआरपीसी) और भारत के सुप्रीम कोर्ट के ऐतिहासिक निर्णयों ने स्पष्ट प्रक्रियात्मक रूपरेखा सुझाई है। जब जाँच एजंसियाँ व्यक्तियों को गिरफ़्तार कर उन्हें पुलिस हिरासत में रखें तो इस रूपरेखा का पालन करना अनिवार्य होना चाहिए। ये रूपरेखा एक अभिन्न भूमिका निभाती है यह सुनिश्चित करने में कि सबूत इकठ्ठा करते समय उचित प्रक्रिया का पालन हो, क्योंकि यह सबूत अंततः क़ानून की अदालत में प्रस्तुत

किए जाएँगे। यह रूपरेखा ये भी सुनिश्चित करती है कि क़ानून के द्वारा शासित समाज में राज्य की पुलिस अपनी शक्तियों का अंधाधुंध इस्तेमाल नहीं कर सकती। इन सुरक्षा उपायों का उल्लंघन तो गंभीर चिंता का विषय है ही साथ ही वे एक निष्पक्ष सुनवाई के लिए अभियुक्तों के अधिकारों को कमज़ोर भी करती है। भारतीय क़ानून के तहत गिरफ़्तारी के समय उपलब्ध कुछ महत्वपूर्ण सुरक्षा के उपाय नीचे दिए गए हैं ।

गिरफ़्तार करने के आधारों की सूचना का अधिकार

भारत के संविधान का अनुच्छेद 22 सभी गिरफ़्तार व्यक्तियों को अधिकार देता है कि उन्हें यथाशीघ्र गिरफ़्तारी के आधार की जानकारी मिले। इसके अलावा सीआरपीसी (CRPC) की धारा 50 स्पष्ट करती है कि पुलिस अधिकारी का कर्तव्य है कि उस व्यक्ति को उसके अपराध का या अन्य आधार का पूरा विवरण सूचित करें जिसके लिए उसे गिरफ़्तार किया जा रहा है।

219 क़ैदियों में से जिन्होंने गिरफ़्तारी के आधार बताए जाने के बारे में बात की, 136 ने कहा कि उन्हें इसके बारे में जानकारी नहीं दी गई थी। उन्होंने बताया कि उन्हें पुलिस अधिकारियों के साथ झूठे और अक्सर अस्पष्ट कारणों के लिए साथ चलने को कहा जाता जिसमें आम प्रथाएँ जैसे 'कुछ सवाल जवाब' या 'कुछ दस्तावेजों पर हस्ताक्षर' शामिल हैं।

अकीरा को कुछ दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करने के बहाने पुलिस स्टेशन पर बुलाया गया। वह अपने बच्चे को घर पर अकेला सोता छोड़ कर गई, यह सोच कर कि उसे ज़्यादा समय नहीं लगेगा। उसने साक्षात्कार के दौरान अपनी उस पीड़ा का वर्णन किया जब वह अपने बच्चे के पास कभी वापस न जा सकी।

क़ैदियों के उदाहरणों में पुलिस के साथ रिश्तेदार या दोस्त के बारे में पूछताछ करने के लिए, या कुछ 'महत्वपूर्ण काम' के संबंध में साथ चलने को कहा गया लेकिन वहाँ उन्हें अपराध के संबंध में गिरफ़्तार कर लिया गया। उदाहरण के लिए एक क़ैदी को भारतीय वायु सेना में नियुक्ति की पुष्टि के उद्देश्य से पुलिस जाँच–पड़ताल के लिए बुलाया गया, एक और क़ैदी जो एक शरणार्थी शिविर चलाता था, उसके संबंध में खातों की जाँच पड़ताल के लिए बुलाया गया। हालाँकि जब ये व्यक्ति पुलिस स्टेशन पहुंचे तो पुलिस अधिकारियों ने उन्हें गिरफ़्तार कर लिया।

अन्य उदाहरणों में क़ैदियों को बताया गया कि उन्हें चोरी, क्रेडिट कार्ड धोखाधड़ी या कोई छोटी सी दुर्घटना जैसे छोटे अपराधों के लिए हिरासत में ले जाया जा रहा है। बाद में पता चलता है कि उन्हें और अधिक गंभीर अपराधों के लिए गिरफ़्तार किया गया है जिनका गिरफ़्तारी के समय दिये कारणों के साथ कोई संबंध नहीं होता। वत्सल सिंह को पुलिस ने बताया कि उसे एक बैंक डकैती के संबंध में पूछताछ के लिए ले

जुजर की गिरफ़्तारी का वर्णन विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करता है। बड़ी संख्या में सादे कपड़े पहने पुलिसकर्मी, एक आतंकी अपराध के संबंध में जुजर को गिरफ़्तार करने के लिए तैनात किए गए थे। यह वो आतंकी मामला था जिसके फलस्वरूप कई पुलिसकर्मियों की मौत हो गई थी और कई व्यक्तियों को चोट आई थी। गिरफ़्तारी करने के लिए हथियारबंद पुलिसकर्मियों ने उसके पूरे पड़ौस को घेर लिया और नजर रखने के लिए उसके घर के आसपास हर छत पर तैनात हो गए। पुलिस ने जुजर के पिता से जो घर पर थे, उनके बेटे के ठिकाने के बारे में पूछताछ की। उन्हें आश्वासन दिया कि जुजर की उपस्थिति केवल उस संदिग्ध आतंकी के बारे में पूछताछ करने के उद्देश्य के लिए आवश्यक है जो पुलिस के साथ मुठभेड़ में मारा गया था और वे जुजर को गिरफ़्तार करने का इरादा नहीं रखते। उन्होंने संकेत दिए कि पुलिस कमिश्नर 15 मिनट के भीतर पूछताछ पूरी कर लेंगे। जुजर के पिता ने फ़ैसला किया कि पुलिस के साथ सहयोग करना ही बेहतर होगा और वह उन्हें जुजर के ससुराल ले गए जहाँ वह अपनी गर्भवती पत्नी के साथ रह रहा था। सादे कपडों में पुलिसकर्मियों ने जुजर को उसकी पत्नी के घर से हिरासत में ले लिया। हालाँकि जुजर के पिता ने संदिग्ध आतंकी के बारे में जानकारी देने की पेशकश की क्योंकि वे संदिग्ध व्यक्ति के मदरसे (स्कूल) में अध्यापक रह चुके थे, पुलिसकर्मियों ने उनको साथ ले जाने से इंकार कर दिया और कहा कि उनका बेटा दो घंटो के अंदर घर वापस आ जाएगा।

जाया जा रहा है परन्तु इसके बाद उसे छः जनों के परिवार की डूबने से मौत के मामले में आरोपी बताया।

जब क़ैदियों ने गिरफ़्तारी के कारण जानने की मांग की तो पुलिस ने उनकी प्रार्थना को नज़रंदाज़ कर दिया। यह एक आम चलन था कि उन्हें उस अपराध के ब्यौरे की जानकारी जिसके लिए उन्हें गिरफ़्तार किया गया था, केवल पूछताछ के समय ही दी जाये और यह जानकारी हिरासत में गम्भीर हिंसा होने के बाद ही दी जाती। श्रीचरण को तब गिरफ़्तार किया गया जब वह मानसिक बीमारी के लिए निर्धारित दवा लेकर सो रहा था। जब वह उठा तो उसने ख़ुद को पुलिस स्टेशन में पाया और तब उसे अपनी गिरफ़्तारी के कारण के बारे में जानकारी दी गई

परिवार को गिरफ़्तारी की सूचना का अधिकार

सीआरपीसी (CRPC) की धारा 50 ए के तहत पुलिस अधिकारी को गिरफ़्तारी के बारे में तुरन्त परिवार, दोस्त या ऐसे अन्य व्यक्ति को सूचित करना होगा जिसे पकड़े गए व्यक्ति ने नामजद किया हो। गिरफ़्तार हुए हर व्यक्ति को जैसे ही वह पुलिस थाने में लाया जाता है, इस अधिकार के बारे में सूचित किया जाना चाहिए।

195 परिवार जिन्होने क़ैदियों की गिरफ़्तारी या आत्मसमर्पण के बारे में बात की उनमें से केवल 20 परिवारों ने कहा कि पुलिस ने उन्हें गिरफ़्तारी के बारे में जानकारी दी थी। इसके अलावा 86 मामलों में परिवारों ने कहा कि गिरफ़्तारी/आत्मसमर्पण उनके सामने हुआ। हालाँकि यह आम था कि पुलिस ने गिरफ़्तारी के आधार परिवारों को सूचित नहीं किए या उन्हें ये कहा कि क़ैदी को पूछताछ के लिए ले जाया जा रहा है और थोड़ी देर में वापस लाया जाएगा। अन्य मामलों में परिवारों को विश्वास दिलाया गया कि क़ैदियों को छोटे अपराधों के लिए हिरासत में लिया जा रहा है और पुलिस द्वारा इन्हें चेतावनी देने के बाद वापस छोड़ दिया जाएगा।

पुलिस स्टेशन में दो मुसलमान अफसरों ने जुजर को बुलाकर एक ही धर्म के होने का आश्वासन दिया और कहा कि वो उनके साथ ईमानदारी से बात कर सकता है। इसके साथ उन्होने यह भी आश्वासन दिया कि वो जुजर की देखभाल करेंगे। लेकिन अगली सुबह एक बजे के आसपास, एक पुलिस अधिकारी ने पूछताछ कक्ष में प्रवेश कर चिल्लाते हुए कहा, "तुम तो अब गए !" जब जुजर ने पुलिसकर्मी से पूछा कि क्या वह घर जा सकता है तो पुलिसकर्मी ने जवाब दिया कि जुजर तो अब एक जाल में फंस गया है और अब उसे हाल ही में हुए आतंकी हमले के मामले में अपनी भागीदारी क़बूल करनी पड़ेगी। तब जुजर को अंततः अपनी गिरफ़्तारी का कारण समझ में आया।

एक अन्य महत्वपूर्ण कारक जिस पर ध्यान देना चाहिए वह है क़ैदी की गिरफ़्तारी के बारे में नहीं बताए जाने के कारण परिवार पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव। ऐसे ही एक मामले में स्वामी के परिवार को दो माह बाद उसकी गिरफ़्तारी के बारे में पता चला। परिवार इस पूरे समय उसके ठिकाने के बारे में पूरी तरह से अनभिज्ञ रहा और उसकी तलाश करता रहा।

आत्मसमर्पण के मामलों में क़ैदी को बयान देने के लिए मजबूर करने के लिए उनके परिवारों को रोक कर रखने की प्रैक्टिस काफी आम है। अन्य मामलों में परिवार के सदस्यों को यातना या नुकसान की धमकी दी गई ताकि वे क़ैदी के ठिकाने के बारे में जानकारी साझा करें या क़ैदी को आत्मसमर्पण करने के लिए मजबूर करें। आरिज ने अस्पताल में आत्मसमर्पण किया जिसकी साक्षी उसकी पत्नी थी जो वहाँ भर्ती थी। आरिज अपनी बीमार गर्भवती पत्नी को देखने आएगा, इसकी संभावना में एक पुलिसकर्मी अस्पताल में तैनात कर दिया गया था। अंततः आरिज ने अस्पताल में आत्मसमर्पण कर दिया। आत्मसमर्पण के 13 साल बाद उसकी पत्नी ने याद करते हुए कहा कि उस समय उसे बताया गया था कि आरिज को तीन महीने के भीतर रिहा कर दिया जाएगा।

परिवारों ने ऐसे भी उदाहरण दिये जब क़ैदियों को उनकी औपचारिक गिरफ़्तारी से पहले कई दिनों के लिए एक अज्ञात स्थान में रखा गया। नजरबंदी के स्थान गेस्ट हाउस, एकांत जगह या पुलिस पदाधिकारियों के घर तक होते थे। इस दौरान ज़्यादातर परिवार क़ैदियों के ठिकानों के बारे में अनजान रहते थे। चम्पक की बहन ने साक्षात्कार में साझा किया कि चम्पक को 23 दिनों तक पुलिस द्वारा स्थापित 'वर्कशोप' में अत्याचार सहना पड़ा जहाँ कई पुरुषों और महिलाओं को हिरासत में रखा गया था। चम्पक के जीजा जिन्हें इसी मामले में गिरफ़्तार किया गया था लेकिन बाद में रिहा कर दिया गया, उन्होने वर्कशॉप में अन्य क़ैदियों के किस्से सुनाए जहाँ क़ैदियों के परिवार के सदस्यों को उनके सामने मार दिया गया।

एक हाई प्रोफाइल आतंकी मामले में जाईद को जाँच एजेंसियों द्वारा एक 'हवेली' में हिरासत में रखा गया और औपचारिक गिरफ़्तारी से पहले लगभग एक महीने तक गंभीर यातनाएँ दी गईं। जेल में लगभग 11 साल बिताने के बाद जिसमें आठ साल मृत्यु पंक्ति पर थे, सुप्रीम कोर्ट ने पाँच सह अभियुक्तों सहित जाईद को बरी कर दिया और जाँच एजेंसियों की इस मामले में जाँच करने की अक्षमता के बारे में अपनी पीड़ा व्यक्त की। अदालत के मुताबिक, ईतनी कीमती जानों को लेने के लिए ज़िम्मेदार असली अपराधियों को सज़ा देने की बजाय पुलिस ने निर्दोष लोगों को पकड़ा और उनके ख़िलाफ़ गंभीर आरोप लगाए जिसके फलस्वरूप उनको मौत की सज़ा सुनाई गई।

24 घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट से सामने लाये जाने का अधिकार

संविधान का अनुच्छेद 22(2) स्पष्ट करता है कि हर व्यक्ति जिसे गिरफ़्तार कर हिरासत में रखा गया है, उसे 24 घंटे की अवधि के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट के सामने प्रस्तुत किया जाए। मजिस्ट्रेट की अनुमति के बिना इस अवधि से परे किसी भी व्यक्ति को हिरासत में नहीं रखा जा सकता है।

इस मौलिक अधिकार को सीआरपीसी (CRPC) की धारा 57 में भी मान्यता दी गई है, जिसके तहत मजिस्ट्रेट के सामने लाने से पहले एक पुलिस अधिकारी 24 घंटे से अधिक अवधि के लिए वारंट के बिना गिरफ़्तार किए गए व्यक्ति को हिरासत में नहीं रख सकता। खत्री और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य मामले में सुप्रीम कोर्ट की राय थी कि इस प्रावधान के पीछे मंशा यह थी कि 'मजिस्ट्रेट पुलिस जाँच के ऊपर नियंत्रण रखें और आवश्यकता के अनुसार इसे लागू करने का प्रयास करें तथा अवज्ञा करने पर दंडित करें'।

258 क़ैदियों में से जिन्होने मजिस्ट्रेट के सामने लाये जाने के बारे में बात की, 166 ने कहा कि उन्हें 24 घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के सामने नहीं लाया गया था। सात दिनों की अवधि से लेकर कभी–कभार कई हफ्तों या महीनों तक पुलिस हिरासत के किस्से सामने आए हैं।

ऐसे ही एक मामले में दर्शन को, जिसे एक नाबालिग के बलात्कार और हत्या के लिए मौत की सज़ा दी गई थी, चार महीने तक मजिस्ट्रेट के समक्ष नहीं लाया गया और यह दिखा दिया कि वह फरार हो गया। इस दौरान उसे पुलिस ने बुरी तरह पीटा। एक बहू–हत्या एवं डकैती के केस में प्रतिभानु, विग्नेश, अमरनाथ और ओमकार को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किए जाने से पहले तीन से चार महीने तक हिरासत में रखा गया। इस दौरान आरोपियों को निर्वस्त्र कर के स्टील की छड़ से पीटा गया और बिजली के करंट दिये गए।

क़ैदियों ने बार–बार इस बात का ब्योरा दिया कि मजिस्ट्रेट ने उनसे हिरासत में अत्याचार या क़ानूनी प्रतिनिधित्व के बारे में नहीं पूछा और यह भी नहीं पूछा कि क्या उनके परिवार को गिरफ़्तारी के बारे में बताया गया है या नहीं। मजिस्ट्रेट ने ऐसे मामलों में भी जहाँ क़ैदियों ने ख़ुद शिकायत की कि उन्हें पुलिस हिरासत में पीटा जा रहा है कोई कार्रवाई नहीं की। हमने ये परेशान करने वाली प्रवृत्ति भी देखी जहाँ क़ैदियों को रात में मजिस्ट्रेट के आवास पर ले जाया जाता ताकि मजिस्ट्रेट पुलिस द्वारा यातना के संकेत देखने में असमर्थ रहें। जैन, जिसे आठ व्यक्तियों की हत्या के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई थी, उसने बयान दिया कि गिरफ़्तारी के बाद पुलिस हिरासत में उसे बुरी तरह पीटा गया। जब उसे मजिस्ट्रेट के सामने प्रस्तुत किया गया तब बेहद अंधेरा था और वह स्पष्ट रूप से देखने में असमर्थ था। इस दौरान पुलिस हिरासत में यातना पहुंचाने या क़ानूनी प्रतिनिधित्व के बारे में कोई प्रश्न नहीं किये गए।

वक़ील से परामर्श का अधिकार

सुनवाई के चरण से पहले जब आरोपी पुलिस हिरासत में हो, एक वक़ील की उपस्थिति को सुप्रीम कोर्ट द्वारा महत्वपूर्ण माना गया है। इसे पुलिस द्वारा पूछ–ताछ के समय 'धमकी देने की रणनीति या दोषारोपण' पर नियंत्रण और 'अंतर्निहित खतरों' को दूर करने के लिए माना गया है।[4] संविधान के अनुच्छेद 22 के अनुसार हर गिरफ़्तार व्यक्ति का अधिकार है कि वह वक़ील से परामर्श कर सके या अपने पसंद के वक़ील द्वारा बचाव करवा सके। फ़िर भी साक्षात्कार से पता चला कि हमारे अध्ययन के क़ैदियों को यह प्रावधान सार्थक सुरक्षा प्रदान करने में विफल रहा। 191 क़ैदियों में से जिन्होने पूछताछ के समय वक़ील तक पहुँच के बारे में जानकारी साझा की, 185 क़ैदियों (97%) ने कहा कि उनके पास वक़ील नहीं थे। इन 185 क़ैदियों में से 82.6% ने हिरासत में अपने अनुभवों के बारे में बात करते हुए कहा कि उन्हें पुलिस द्वारा यातनाएँ दी गईं थीं।[5]

पुलिस हिरासत में वक़ील की अनुपस्थिति को शायद आर्थिक संकट के मानचित्रण से बेहतर

4. नंदिनी सतपथी बनाम पी.एल. दानी और अन्य (1978) 2 एससीसी 424, पैराग्राफ़ 63

5. 185 क़ैदियों में से, 155 ने हिरासत में हिंसा के अपने अनुभवों को बताया, जिसमें से 128 क़ैदियों (82.6%) ने कहा कि उन्हें पुलिस हिरासत में यातना दी गई थी।

समझाया जा सकता है। क़ैदियों के साथ साक्षात्कार से पता चला कि 185 क़ैदियों में से जिनको इस चरण में वक़ील तक पहुँच नहीं थी, 144 आर्थिक रूप से कमज़ोर थे (80%)। यह अफसोस की बात है कि इस चरण में अनुभव की गई भीषण यातनाओं और मूलभूत सिद्धांतों के उल्लंघन के प्रकाश में अभियुक्त को क़ानूनी सहायता प्रदान करने में राज्य के दायित्व को नहीं बढ़ाया गया है।

6. हुसैनारा खातून और अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना (1980) 1 एससीसी 98, पैराग्रैफ़ 7; खत्री और अन्य बनाम बिहार राज्य (1981) 1 एससीसी 627, पैराग्रैफ़ 5; मोहम्मद अजमल मोहम्मद अमीर कसाब बनाम महाराष्ट्र राज्य (2012) 9 एससीसी 1, पैराग्राफ़ 474।

सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि राज्य, गरीब आरोपी को मजिस्ट्रेट के सामने पेश करने के पहले ही निःशुल्क वक़ील उपलब्ध कराने के लिए बाध्य है।[6] फ़िर भी 189 क़ैदियों में से जिन्होंने मजिस्ट्रेट के सामने लाए जाने के समय उनके पास वक़ील था या नहीं के बारे में बात की उसमें से 169 (89.4%) के पास वक़ील नहीं थे। शेष 20 में से मजिस्ट्रेट के समक्ष लाए जाने के समय जिनके पास वक़ील थे उनमें से केवल तीन ऐसे थे जिनका प्रतिनिधित्व सरकारी सहायता वक़ीलों द्वारा हो रहा था।

आरोपी को दस्तावेज़ों की प्रति उपलब्ध करना

सीआरपीसी (CRPC) की धारा 207 के अनुसार मजिस्ट्रेट को बिना विलंब के आरोपी को आरोपपत्र (चार्ज शीट) देना चाहिए। इसके अलावा अन्य दस्तावेज़, जैसे कि प्रथम सूचना रिपोर्ट तथा उन व्यक्तियों द्वारा दिये गए बयानों की प्रति जिन्हे पुलिस संभवतः मजिस्ट्रेट के समक्ष गवाह और न्यायिक स्वीकारोक्ति के रूप में जाँच करना चाहते हैं, देने चाहिए। आरोपपत्र में आरोपी द्वारा किए गए अपराधों की सूची होती है और साथ ही राज्य द्वारा अभियुक्तों के अपराध को साबित करने के लिए सबूत। इसलिए आरोपी के

लिए उसके ख़िलाफ़ आरोपों को समझने और एक पर्याप्त रक्षा तैयार करने के लिए यह आवश्यक दस्तावेज़ है।

255 क़ैदियों में से जिन्होंने आरोपपत्र प्राप्त करने की बात की थी 60 ने कहा कि उन्हें आरोपपत्र की प्रति कभी नहीं मिली। 195 क़ैदी जिन्हें प्रति प्राप्त हुई थी वहां एक व्यापक चिंता का विषय यह था कि उन्हें वह प्रति ट्रायल प्रारंभ होने के बाद प्राप्त हुई या ट्रायल कोर्ट के फ़ैसले के बाद। इसके अलावा आरोपपत्र की जटिल क़ानूनी भाषा को समझने की चुनौती थी तथा कुछ लोग अनपढ़ होने की वजह से इसे बिल्कुल नहीं पढ़ सकते थे।

परिवार के सदस्यों का उत्पीड़न

हमारे साक्षात्कार के दौरान क़ैदियों के परिवार के सदस्यों के साथ पुलिस द्वारा प्रताड़ना के परेशान कर देने वाले उदाहरण सामने आए। क़ैदियों के परिवारों का पुलिस के हाथों शारीरिक, मौखिक और मनोवैज्ञानिक हिंसा के मामलों का कम पता लगता है पर इनका प्रयोग अक्सर एक निष्पक्ष जाँच प्रक्रिया को उसी प्रकार भ्रष्ट कर देता है जैसे कि हिरासत में हिंसा। 204 क़ैदियों में से जिन्होंने पुलिस अधिकारियों के साथ हुए अपने अनुभवों की चर्चा की 120 ने माना कि पुलिस ने उनके साथ दुर्व्यवहार किया, परेशान किया और उन्हें धमकी दी। परिवारों ने पुलिस दुर्व्यवहार के विभिन्न रूपों के विस्तृत खातों को भी साझा किया।

लक्ष्मीकांत के सबसे छोटे भाई को जिसकी उम्र करीब आठ साल की थी, पुलिस कस्टडी में बेरहमी से यातना दी गई, जिसके फलस्वरूप उसकी मौत हो गई। एक अन्य मामले में पुलिस ने उत्पल के चाचा को सताने के लिए उसे मूत्र पीने को बाध्य किया। कुछ मामलों में पीड़ित परिवारों ने बताया कि जब वे क़ैदी से मिलने के लिए पुलिस स्टेशन गए तो उनके साथ पुलिस ने बुरा बर्ताव किया और उन्हें अपमानित किया गया। इसके साथ उन्हें क़ैदी से मिलने का मौका दिए बिना ही वापस भेज दिया गया। मृगंक को उसके परिवार के सदस्यों के सामने घर से गिरफ़्तार किया गया, उन्हें पुलिस स्टेशन पर मृगंक से मिलने की इजाज़त नहीं दी गई और धमकी दी गई कि उन्हें भी गिरफ़्तार कर लिया जाएगा। इसके बाद पुलिस ने उनके घर के बाहर पहरा बरकरार रखा और उन्हें परिसर छोड़ने की अनुमति नहीं दी ।

परिवार की महिला सदस्यों ने बताया कि पुलिस अधिकारियों ने उन्हें अलग प्रकार से डराया–

धमकाया। ऐसा ही एक मामला फाजिल का है, जहाँ पुलिस ने फाजिल की पत्नी सलीमा से उससे मिलने की अनुमति के बदले यौन संबंध के लिए कहा। फाजिल की गिरफ़्तारी के समय सलीमा छह माह की गर्भवती थी और उसकी तीन साल की बेटी भी थी। इस अवधि के दौरान पुलिसकर्मी अक्सर उसके घर आते और उसे परेशान करते।

इसी तरह आत्माराम की गर्भवती पत्नी व बच्चों को पुलिस ने चार दिन हिरासत में रखा। उस दौरान उन्हें किसी के साथ संवाद करने की इजाज़त नहीं थी। पुलिस हिरासत में उस ख़ौफ़ज़दा अनुभव के कारण रिहाई के बाद आत्माराम की पत्नी का गर्भपात हो गया।

एक अन्य मामले में बृजमोहन की माँ उर्मिला ने साझा किया कि जिस दिन उसके बेटे को जेल लाया गया पुलिस ने उसके साथ यौन शोषण किया। उसका मानना था कि क्योंकि उसके बेटे को जो परिवार का अकेला पुरुष सदस्य था, गिरफ़्तार कर लिया गया था इसलिए पुलिस उसे और उसकी बेटियों को परेशान करती रहेगी।

हालाँकि कुछ परिवारों ने कहा कि पुलिस बहुत मददगार थी, यहाँ तक कि घटना के बाद स्थानीय निवासियों से क़ैदी के परिवार के सदस्यों की रक्षा भी की । धरमकेतु के परिवार के अनुसार पुलिस अत्यंत सहयोगी थी और यहाँ तक कि जब पड़ौसी उनके घर के सामान को नष्ट करने की कोशिश कर रहे थे तब उन्होंने ही उनके सामान को ले जाकर सुरक्षित रखा।

उपसंहार

इस अध्याय में हिरासत में यातना और पारिवारिक उत्पीड़न के आख्यान से पता चलता है कि कैसे अविश्वसनीय और ग़ैरक़ानूनी तरीकों के माध्यम से आपराधिक जाँच के दौरान साक्ष्य एकत्रित किए जा सकते हैं। इस जाँच पड़ताल के मनमाने तरीकों से निर्दोष व्यक्तियों को दोषी ठहराया जा सकता है और मौत की सज़ा हो सकती है। इसके अलावा हमें इसकी प्रक्रियात्मक सुरक्षा के अनुपालन पर भी विचार करना चाहिए जो निष्पक्ष परीक्षण के अधिकार की नींव रखते हैं। जिस क्रूर और अमानवीय तरीकों से इन क़ैदियों को पुलिस हिरासत में यातनाएँ दी गई हैं, ये न केवल उन्हें और कमज़ोर बना देती हैं बल्कि क़ानून जिस मानवीय गरिमा को क़ायम रखना चाहता है, उसी मानवीय गरिमा का दर्द और अपमान से खंडन होता है।

मुक़दमा और अपील

इस अध्याय में किस तरह क़ानूनी प्रक्रिया एक व्यक्ति को मृत्युदंड देती है, इसकी जाँच की गई है। इस क़ानूनी प्रक्रिया का मूल्यांकन इस पर निर्भर नहीं कर सकता कि यह अन्य सज़ाओं के लिए इस्तेमाल की गई प्रक्रियाओं के समान है। किसी को मृत्युदंड की सज़ा देना और उसके तहत रहने पर विवश करना, यह आपराधिक न्याय प्रणाली के भीतर किसी भी अन्य सज़ा से गुणात्मक रूप में बहुत अलग है; क्योंकि मृत्युदंड में जिस तरह की यातनाएँ सहन करनी पड़ती हैं, वो सबसे अलग है। मृत्युदंड के मामलों में क़ानूनी प्रक्रिया में ज़रा सी भी चूक होने का मतलब है आरोपी को अपरिवर्तनीय सज़ा होना। इसलिए अगर मृत्युदंड देना ही है तो ट्रायल प्रक्रियाओं, अपील प्रक्रियाओं, सबूत के मानकों, क़ानूनी प्रतिनिधित्व और सज़ा के कारकों की गुणवत्ता के प्रति निष्ठा होना अनिवार्य है।

मुक़दमे की कार्यवाही

आपराधिक मामले में मुक़दमे की कार्यवाही पहला चरण है जहाँ अभियुक्तों के अपराध और सज़ा का निर्धारण किया जाता है। यह जाँच एजेंसियों द्वारा इकट्ठे किए गए सबूतों पर विचार करने का अवसर होता है जो बाद के चरणों के दौरान संभव नहीं हो पाता।[1] यह अभियुक्त को अपने विषय में व्यापक कारक पेश करने का सबसे अच्छा मौक़ा प्रदान करता है जिससे वह अपनी भूमिका और परिस्थितियों को समझा सके। इस चरण के दौरान सभी प्रासंगिक क़ानूनी सामग्री को रिकॉर्ड किया जाता है जो आगे क़ानूनी विकल्पों के लिए नींव का काम करती है। यह अध्याय ट्रायल के दौरान क़ैदियों के अनुभवों, अदालत की विभिंन प्रक्रियाओं और अंततः मौत की सज़ा देने के लिए अपनाई गई प्रथाओं की ओर ध्यान खींचता है।

क़ैदियों ने साझा किया कि ट्रायल चरण के दौरान उनकी क़ानूनी प्रक्रिया से विमुखता एक

1. मौत की सज़ा के मामले में विभिन्न चरणों की पृष्ठभूमि के लिए अध्याय 'क़ानूनी संदर्भ' देखें।

आम अनुभव था। ट्रायल से पूर्व के चरण में क़ैदियों को उनके ख़िलाफ़ मामले के बारे में बहुत कम जानकारी थी। वे गिरफ़्तारी से लेकर मुक़दमे की कार्यवाही प्रारंभ होने तक के समय में अपने ख़िलाफ़ दर्ज आरोपों से अनजान थे क्योंकि या तो उन्हें आरोपपत्र उपलब्ध नहीं कराये गए थे या वो उसे समझने में असमर्थ थे। कई वक़ीलों की तो आरोपी से मुलाक़ात सीधे अदालत में ही होती थी। इसलिए क़ैदियों को अपने वक़ीलों से मामला समझने के या अपने बचाव की चर्चा करने के अवसर कम ही मिलते थे। आरोपी के लिए जब उनके मामले सेशन कोर्ट में आते तो सूचना और जानकारी के इस तरह के अभाव एक आम अनुभव थे।

ट्रायल से पूर्व के चरण में आरोपियों की विमुखता और जाँच के दौरान एकत्र किए गए अविश्वसनीय सबूतों को देखते हुए, निष्पक्ष ट्रायल तभी सुरक्षित किया जा सकता है जब ट्रायल कोर्ट को जाँच मशीनरी (तंत्र) की गलतियों के बारे में पता हो और अभियुक्त को प्रभावी रूप से अपने ख़िलाफ़ होने वाली कार्यवाही में शामिल कर सकें। आरोपियों को सार्थक रूप से शामिल करने के लिए उनके ख़िलाफ़ दर्ज़ मामले के बारे में जानकारी होनी चाहिए, यह दायित्व राज्य पर है ताकि वे अदालत में ख़ुद या वक़ील के माध्यम से जवाब दे सकें। यह दायित्व मृत्युदंड मामलों में और भी ज़्यादा हो जाता है।

ट्रायल कोर्ट में अभियुक्त की उपस्थिति

ट्रायल के दौरान अदालत में अभियुक्त की उपस्थिति आपराधिक न्याय प्रणाली की मौलिक आवश्यकता है और निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करने में पहला कदम है। आरोपी को अपने ख़िलाफ़ मामले को समझने का अवसर देना ही ऐसी आवश्यकता की अपेक्षा है। दंड प्रक्रिया संहिता,1973 की धारा 273, यह अपेक्षा रखती है कि ट्रायल की कार्यवाही में सभी सबूत आरोपी की उपस्थिति में लिए जाने चाहिए और अगर आरोपी की उपस्थिति की ज़रूरत नहीं हो तो उसके वक़ील की उपस्थिति में हों।

225 क़ैदियों में से जिन्होंने ट्रायल कार्यवाही के दौरान अपनी उपस्थिति के बारे में बात की केवल 57 (25.3%) ने कहा कि वे सभी सुनवाई के दौरान मौजूद थे। शेष क़ैदियों की प्रतिक्रियाएं अलग अलग थीं। कुछ ने अधिकांश कार्यवाही में भाग लेने की बात कही तो कुछ ने थोड़े से गवाहों की जाँच के समय उपस्थित होने की बात कही। कई बयानों से एक अन्य चलन का पता चला। क़ैदियों ने बताया कि उन्हें अदालत परिसर में ले जाया जाता था परंतु अदालत में प्रस्तुत करने की बजाय उन्हें अदालत के लॉकअप में रखा जाता था। अदालत में उपस्थिति रिकॉर्ड करने की औपचारिकता को पूरा करने के लिए उनसे दिन की शुरुआत या अन्त में दस्तावेज़ों पर

अयोग ने हमें बताया कि जब अदालत में गवाहों के बयान दर्ज किए जाते थे तब उसे अक्सर कोर्ट के लॉकअप में बंद रखा जाता था। अन्य अवसरों पर केवल कुछ दस्तावेज़ों पर हस्ताक्षर करने के लिए उसे अदालत में ले जाया जाता था। उससे कहा गया था कि मामले की कार्यवाही के बारे में वह अपने वक़ील से जानकारी ले। इसी तरह के अनुभव के बारे में मुहाफ़िज़ ने भी हमें बताया । मुहाफ़िज़ बचाव पक्ष के दो गवाहों के बयान के दौरान मौजूद था परन्तु बाकी की अदालती कार्यवाही में उसे कोर्ट के लॉकअप में रखा गया था। मुहाफ़िज़ का मानना था कि अदालत में उसकी सीमित उपस्थिति अधिक सार्थक होती अगर वह शिक्षित होता। न केवल क़ैदियों को अदालत की कार्यवाही में भाग लेने के अवसरों से वंचित रखा जाता था बल्कि उनको कोर्ट के लॉकअप की अमानवीय स्थितियों को सहना भी पड़ता था। अयोग और मुहाफ़िज़ के ही राज्य में मौत की सज़ा पाने वाले शाहिद ने अदालत के लॉकअप को इतना गंदा बताते हुए कहा कि "वह तो जानवरों के लिए भी अनुपयुक्त था"। इसी तरह के अनुभवों को बताते हुए दिपिंदर ने लॉकअप का वर्णन किया। उसने कहा कि वह एक छोटा सा कमरा है, जिसमें 50 लोगों को एक साथ ठूँस दिया जाता है। लॉकअप की गर्मी और मूत्र की दुर्गंध असहनीय होती है।

हस्ताक्षर करा लिए जाते थे, जबकि वे उस दौरान अदालत के लॉकअप में होते थे।

मुक़दमे की कार्यवाही की समझ

मुक़दमे के लिए अगर आरोपी अदालत में उपस्थित हो भी जाते हैं तो भी उनको कार्यवाही की विषय वस्तु और अर्थ समझने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। मुक़दमे के दौरान अपने अनुभव के बारे में बात करने वाले 286 क़ैदियों में से 156 (54.6%) ने कहा कि उन्हें कार्यवाही बिल्कुल समझ में नहीं आई थी।

देश की कई अदालतों की संरचना ऐसी होती है कि अक्सर आरोपी को स्वयं के ट्रायल में भाग लेने का कोई वास्तविक मौका नहीं मिलता। आरोपी के लिए आमतौर पर नामित जगह अदालत के पीछे के भाग में होती है, जबकि क़ानूनी कार्यवाही सामने, न्यायाधीश और वक़ीलों के बीच होती है। इसलिए वार्तालापों को सुनने में कठिनाई होने के कारण आरोपी कार्यवाही को समझने में अक्षम हो जाता था।

अदालत में प्रयुक्त भाषा क़ैदियों के लिए एक और बाधा बन जाती है क्योंकि वे अंग्रेज़ी बहुत कम समझ पाते हैं। उन्होंने कहा कि भले ही गवाहों के बयान स्थानीय भाषाओं में हों लेकिन तर्क अंग्रेज़ी में होते हैं जो उनकी समझ से परे होते हैं। इस तरह के व्यवहार सीआरपीसी की धारा 279 की अनिवार्यता के ख़िलाफ़ जाते हैं। इस धारा के अनुसार यदि अभियुक्त की उपस्थिति में ऐसी भाषा में सबूत दिया जाता है जो उसे समझ नहीं आती है तो उसे खुली अदालत में उसके द्वारा समझी जाने वाली भाषा में बताया जाएगा। इसके अलावा सीआरपीसी की धारा 318 के अनुसार ट्रायल कोर्ट को हाई कोर्ट में एक रिपोर्ट प्रेषित करनी होगी। उस रिपोर्ट में सज़ा सुनाते समय की परिस्थितियों को नोट करना होगा जहाँ आरोपी स्वस्थ मन और शरीर होने के बावजूद

भाषा की बाधा

बिनेश 21 साल का था जब उसे एक नाबालिग के बलात्कार और हत्या के लिए दोषी ठहराया गया था। उसके माता–पिता नेत्रहीन थे। बिनेश कभी स्कूल नहीं गया था और कम उम्र से किराए के खेत पर खेती कर अपने परिवार की मदद करता था। साक्षात्कार के दौरान बिनेश ने बताया कि यद्यपि मुक़दमा उसकी अपनी मातृभाषा में ही आगे बढ़ाया गया था परन्तु अपने सब प्रयासों के बावजूद वह अदालत की जटिल कार्यवाही को समझने में असमर्थ रहा।

बिनेश के उदाहरण से अलग आबेद को ट्रायल की कार्यवाही समझने की असमर्थता उसकी अंग्रेज़ी के सीमित ज्ञान के कारण पैदा हुई। आबेद वित्तीय कारणों की वजह से अपनी माध्यमिक शिक्षा पूरी नहीं कर सका। उसने टिप्पणी की कि वह अंग्रेज़ी के केवल सरल शब्द जैसे "go" और "wait" ही समझ सकता है । आबेद अपने ट्रायल के दौरान, जो साढ़े बारह साल तक चला और पाँच से अधिक अलग अलग न्यायाधीशों द्वारा सुना गया, वह उन भागों को नहीं समझ सका जिसकी कार्यवाही अंग्रेज़ी में हुई। जब आबेद को अंततः मौत की सज़ा सुनाई गई थी तब एक नए न्यायाधीश को नियुक्त किया गया था और सज़ा की सुनवाई न्यायाधीश महोदय चेम्बर में आयोजित की गई थी। अपनी कार्यवाही को समझने में असमर्थता पर निराशा व्यक्त करते हुए आबेद ने टिप्पणी की कि उसे अन्य क़ैदियों द्वारा समझाए जाने के बाद ही ट्रायल कोर्ट का निर्णय समझ में आया था।)

मुक़दमे की कार्यवाही को समझने में असमर्थ रहा।[2] हालाँकि यह सारे प्रावधान एक रूपरेखा प्रदान करते हैं, यह सुनिश्चित करने के लिए कि आरोपी कार्यवाही में भाग ले सके। किंतु इस निष्पक्ष ट्रायल के अधिकार को सुनिश्चित करने में आपराधिक न्याय प्रणाली विफल रही है।

क़ैदियों ने अदालत में इस्तेमाल की जाने वाली भाषा को ना समझ पाने पर चर्चा करते समय अक्सर उसका सम्बन्ध अपनी शिक्षा के निम्न स्तर से बताया। अध्याय 5, 'सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश' में सविस्तार बताया गया है कि 365 क़ैदियों में से जिनकी शैक्षिक स्थिति की जानकारी उपलब्ध थी, 23% कभी स्कूल नहीं गए थे और 61.6% ने माध्यमिक शिक्षा पूरा नहीं की थी।

आदर्श रूप में जहाँ आरोपी कार्यवाही समझने में असमर्थ होते हैं, वहाँ उनके वक़ील को क़ानूनी प्रक्रिया से अज्ञानता की परेशानी को कम करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए। परन्तु अध्याय 8 'क़ानूनी प्रतिनिधित्व' में देखा जाएगा

2. अपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973, की धारा 318 में लिखा है, "यदि अभियुक्त को, मानसिक रूप से अस्वस्थ नहीं होने के बावजूद, कार्यवाही नहीं समझाई जा सकती है, तो कोर्ट जाँच या ट्रायल के लिए आगे बढ़ सकता है; और हाई कोर्ट के अलावा अन्य न्यायालय में यदि ऐसी कार्यवाही के परिणामस्वरूप सज़ा होती है, तो हाई कोर्ट को कार्यवाही के साथ, मामले की परिस्थितियों की एक रिपोर्ट भेज दी जाएगी, और हाई कोर्ट इस पर औचित्य के अनुसार आदेश देगा। "

कि इस मोर्चे पर वक़ीलों से बहुत कम सहायता मिलती है। समाज में उनकी उपेक्षित स्थिति की वजह से इस परियोजना के विचाराधीन क़ैदियों को शायद ही कभी ऐसा क़ानूनी प्रतिनिधित्व मिलता है जो ज़िम्मेदार, उनके मामले से जुड़ा हुआ और उनसे सहानुभूति रखने वाला हो। देश भर में मौत की सज़ा पाए क़ैदियों के आख्यानों से हमें पता चलता है कि उनके वक़ीलों का अक्सर उपेक्षापूर्ण व्यवहार होता है। शायद ही वक़ील को उनकी बात सुनने में या अदालती कार्यवाही बताने में कोई रुचि होती है।

संक्षेप में यह ऐसी प्रणाली है, जहाँ आरोपी के पास ना तो वो आवश्यक क्षमताएँ हैं और ना ही समर्थन कि वह उस कार्यवाही को समझ सके, जो उसके अपराध का निर्धारण और अंततः उसे मौत की सज़ा देगा। वह काफ़ी हद तक उसके ख़िलाफ़ अदालत में प्रस्तुत किए जा रहे सबूतों और अपने मामले में वक़ीलों द्वारा बताई गई विषय वस्तु और कार्यवाही के बारे में अनभिज्ञ होता है। आपराधिक न्याय प्रणाली से अनभिज्ञता ने क़ैदियों के मन में अपने मामलों में अन्याय की तीव्र भावना को बढ़ावा दिया है।

कार्यवाही की अवधि

पाँच वर्ष से अधिक के लिए अदालतों में लंबित क़ानूनी कार्यवाही को सुप्रीम कोर्ट द्वारा गठित राष्ट्रीय अदालत प्रबंधन प्रणाली, 'एनसीएमएस', कमेटी ने माना है कि ये संविधान के अनुछेद 21 के तहत शीघ्र न्याय देने की गारंटी का गंभीर उल्लंघन है।[3] भारत के मुख्य न्यायाधीश की देखरेख में एनसीएमएस कमेटी ने देश भर की सभी अदालतों से आग्रह किया है कि वे अविलंब उपाय करें और प्राथमिकता से उन मामलों का निपटारा करें जो पाँच साल से अधिक समय से लंबित हैं। लम्बे चले मुक़दमे क़ैदियों के परिवार के संसाधन पर भारी पड़ते हैं क्योंकि निजी वक़ीलों के क़ानूनी शुल्क, अदालत की सुनवाई में भाग लेने के लिए आने जाने और क़ैदी से मिलने का ख़र्च बढ़ता जाता है।

3. 'नेशनल कोर्ट मैनेजमेंट सिस्टम–पॉलिसी एंड एक्शन प्लान', नेशनल कोर्ट मैनेजमेंट सिस्टम कमिटी, यहाँ उपलब्ध है: <https://sci.gov.in/pdf/NCMSP/ncmspap.pdf>

हमारे अध्ययन में क़ैदियों के ट्रायल की राष्ट्रीय औसत अवधि 60 महीने (पाँच साल) थी और ट्रायल की माध्यिका अवधि 38 महीने (तीन साल, दो महीने) थी। **(तालिका 1)**[4]

हमारे अध्ययन के 373 क़ैदियों में से 127 क़ैदियों के ट्रायल पाँच साल से अधिक और 54 के 10 साल **(ग्राफिक 1)** से अधिक चले। सबसे लम्बे समय तक चलने वाला ट्रायल जो हमने डॉक्यूमेंट किया, वह मामला एक नकली मुठभेड़ का था जिसमें विश्राम, नलिन और मिलिंद शामिल थे। यह ट्रायल की कार्यवाही 372 महीने (31 साल) तक चली। इन्होंने इस अवधि के दौरान जेल में मुश्किल से कुछ समय बिताया और पुलिस की नौकरी में उनकी प्रगति तब तक जारी रही जब तक उन्हें 2013 में मौत की सज़ा नहीं दी गई। अपूर्वा भाई का मामला इसके विपरीत था। उसको भारत के बाहर रहने वाले एक परिवार जिसके घर में वह घरेलू मदद के रूप में कार्यरत था, के पाँच सदस्यों की हत्या के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई थी। हालाँकि उसे जनवरी 1992 में गिरफ़्तार किया गया था लेकिन अपूर्वाभाई ने कहा कि उसके ट्रायल की कार्यवाही 1997 तक शुरू नहीं हुई। एक विशेष अदालत में उसका ट्रायल 235 महीने (19 साल, 7 महीने) की अवधि के लिए चला, जिसके दौरान वह केवल एक बार 12 घंटे के लिए पैरोल पर अपनी बेटी की शादी में भाग लेने के लिए रिहा किया गया था। 2014 में जब हमने उसके साथ साक्षात्कार किया तब उसका मामला हाई कोर्ट में लंबित था और वह करीब 22 साल जेल में बिता चुका था।

हमारे अध्ययन में 10 क़ैदियों के ट्रायल छह महीने के भीतर पूरे हुए, जिनमें से आठ को बलात्कार के साथ हत्या के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई। हमारे शोध में सबसे कम समय तक चला मुक़दमा बिहार में एक सेशन कोर्ट में सिर्फ़ नौ दिनों तक चला। इस तरह के छोटे ट्रायल इस बात की चिंता बढ़ाते हैं कि मामला ठीक से सुना गया या नहीं, सभी प्रक्रियाओं का पालन हुआ या नहीं, अभियुक्त को ख़ुद के बचाव के लिए पर्याप्त समय मिला या नहीं और क्या न्यायाधीश के पास मामले पर विचार करने के लिए पर्याप्त समय था कि नहीं।

4. मामले के अभिलेखों तक सीमित पहुंच के कारण, ट्रायल की अवधि की गणना, क़ैदी के गिरफ़्तारी की तारीख से और यदि यह उपलब्ध नहीं है, तो घटना की तिथि जो निर्णय में दर्ज की गयी है, से की गयी है।

तालिका 1:

क़ानूनी कार्यवाही की औसत और माध्यिका अवधि

चरण	औसत अवधि	माध्यिका अवधि
ट्रायल कोर्ट	5 साल	3 साल 2 महीने
हाई कोर्ट	1 साल 4 महीने	11 महीने
सुप्रीम कोर्ट	2 साल 1 महीना	1 साल 10 महीने

ग्राफ़िक 1:

राज्य जिनमें पाँच वर्षों से अधिक समय तक ट्रायल चले

राज्य	मृत्युदंड पाए क़ैदियों की कुल संख्या	पाँच साल से अधिक चलने वाले ट्रायल के क़ैदियों की संख्या
उत्तर प्रदेश	79	35
कर्नाटक	45	26
बिहार	53	25
गुजरात	19	15
दिल्ली	30	6
जम्मू और कश्मीर	6	5
झारखंड	13	5
महाराष्ट्र	36	5
अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह	1	1
असम	3	1
केरल	15	1
मध्य प्रदेश	25	1
पंजाब	4	1

क़ैदियों के परिवारों के ट्रायल के अनुभव

क़ैदियों को जब अदालत में लाया जाता है तो परिवारों को अभियुक्तों के साथ मिलने का अवसर मिलता है। यह एक तरह से जेल की मुलाक़ात से बेहतर होता है क्योंकि अदालत में काम शुरू होने से पहले क़ैदियों को सुबह अदालत परिसर में लाया जाता है और अदालत के बंद होने तक कोर्ट लॉकअप में रखा जाता है। इसके विपरीत, एक जेल मुलाक़ात के दौरान परिवार के सदस्यों को 20–30 मिनिट से अधिक मिलने की अनुमति नहीं दी जाती। कई जेल में क़ैदियों को उनके परिवार से बात करने के लिए जाली के तीन परतों के आर पार लाइन में खड़ा रखा जाता है। इस से माहौल बहुत अस्त व्यस्त हो जाता है। लोग एक दूसरे को धक्का देते हैं और चिल्लाकर बात करते हैं ताकि उनकी आवाज़ सुनाई दे सके।

ट्रायल प्रक्रिया के अनुभवों के बारे में जानकारी प्रदान करने वाले 206 परिवार में से 148 ने ट्रायल के दौरान किसी न किसी तरह से अदालत में अभियुक्त से मिलने का प्रयास किया। जो परिवार अदालत में पहुँच पाए, उनमें से कुछ तो ऐसे थे जिन्होंने नियमित रूप से ट्रायल की कार्यवाही में भाग लिया और उसको समझने में सक्षम थे। कुछ परिवार ऐसे थे जो लंबी दूरी तय करके आते परन्तु उन्हें न तो अदालत के अंदर जाने की अनुमति थी और न ही आरोपी से मिलने की। हमने ऐसे आख्यान सुने जहाँ परिवार ने ट्रायल कोर्ट तक पहुंचने के लिए आरम्भ में कई बार काफ़ी राशि ख़र्च की। परन्तु उन्हें जल्द ही एहसास हो गया कि कार्यवाही उनकी समझ के बाहर थी और जब दिनभर की कार्यवाही समझाने का समय आता वक़ील भी उनके प्रति उदासीन रहते। हमने ऐसे आख्यान भी सुने जहाँ परिवारों को न्यायालय के अधिकारियों द्वारा अंदर जाने की अनुमति नहीं दी गई। ऐसी स्थितियों में परिवार को लम्बी दूरी तय करने के बाद भी या तो आरोपियों के साथ कुछ पल ही मिल पाते या उनको आरोपी की एक झलक मिल पाती। जब ट्रायल लम्बे चलते तो परिवार के संसाधनों पर अधिक भार बढ़ जाता और कुछ परिवारों के लिए न्यायालय पहुँचना मुश्किल हो जाता।

जो परिवार मुक़दमे के दौरान कभी अदालत नहीं जा पाये, उन्होंने कार्यवाही में भाग न लेने का कारण ज़बरदस्त वित्तीय तनाव बताया। ज़्यादातर ऐसे मामलों में परिवार को बहुत लंबी यात्रा करनी पड़ती, यात्रा और भोजन में एक महत्वपूर्ण राशि ख़र्च करनी पड़ती और अपने दैनिक आय से भी हाथ धोना पड़ता। अन्य मामलों में परिवार ने या तो क़ैदी के साथ सभी सम्बन्धों को तोड़ दिया था या कार्यवाही में भाग लेना नहीं चाहते थे। कुछ हाई प्रोफ़ाइल मामलों में जो ख़ास रूप से स्थानीय स्तर पर केंद्र में थे वहाँ हिंसा या बहिष्कार के डर से परिवार अदालत नहीं जाते। ऐसे भी उदाहरण थे जहाँ परिवार के सदस्यों को कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति नहीं थी क्योंकि या तो कार्यवाही जेल के अंदर होती या किसी अन्य परिसर में होती।[5]

5. 367 क़ैदियों में से जिनके बारे में यह जानकारी उपलब्ध कि उनके ट्रायल किस तरह की अदालत में चले, 23 के ट्रायल बंद दरवाज़ों के पीछे थे। इनमें से, चार मामलों में 21 क़ैदियों पर जेल परिसर में स्थापित विशेष अदालत के भीतर आतंकी अपराधों के लिए मुकदमा चलाया गया था। इसके अतिरिक्त, एक क़ैदी का 1950 की आर्मी अधिनियम के तहत गठित कोर्ट– मार्शल में मुकदमा चला, जबकि एक अन्य पर सीमा सुरक्षा बल अधिनियम, 1968 के तहत गठित सुरक्षा बल कोर्ट द्वारा मुक़दमा चलाया गया।

श्रेस्त की पत्नी रुक्मणि की शादी 11 साल की उम्र में हुई थी। वो सिर्फ़ 18 साल की थी जब उसके पति को बलात्कार और एक नाबालिग की हत्या के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई थी। उसके दोनों बच्चों की ज़िम्मेदारी पूरी तरह से उसके कंधों पर आ गई। यह बताते हुए कि उसने पहले कभी काम नहीं किया था, रुक्मिणी ने कहा कि श्रेस्त की गिरफ़्तारी के बाद उसकी परिस्थितियों में कठोर परिवर्तन आ गया। गाँव वालों ने उसका बहिष्कार कर दिया। पति की करतूत के लिए उसे दोषी ठहराया और रिश्तेदारों से उसे कोई मदद नहीं मिली। पड़ोसी के घर अपनी पाँच साल की बेटी और तीन साल के बेटे को छोड़ कर गाँव में अलग–अलग तरह की नौकरियां करने के बावजूद रोज़ के खर्चे उठाने में उसे बहुत मुश्किल होती थी। उसके हालात और बिगड़ गए जब उसे अपने कमाए थोड़े से पैसों को न्यायालय जाने के लिए ख़र्च करना पड़ा। वहाँ भी उसे या तो श्रेस्त से ठीक से बातचीत नहीं करने दिया जाता था या अदालत के बाहर इंतज़ार करने को कहा जाता। नाक की कील बेच कर और बाद में कान की बालियों को बेचकर जिस निजी वक़ील को उसने नियुक्त किया था, उसने उसकी कोई मदद नहीं की। वह रुक्मणि के साथ मामले पर चर्चा नहीं करता, उसके सवालों को ख़ारिज कर देता और अक्सर उसके फोन को नज़र अंदाज कर देता। रुक्मणि ने सात से आठ अवसरों पर अदालत का दौरा किया जहाँ उसे या तो प्रवेश नहीं करने दिया गया या उसे ये पता चला कि सुनवाई को स्थगित कर दिया गया। उसे लगा कि वह इस तरह अदालत जाने के लिए अपने पैसे नहीं ख़र्च सकती थी। उसका न्यायालय जाना बन्द हो गया था और इसलिए रुक्मणि को अपने पति के मृत्युदंड की ख़बर टीवी से मिली।

परिवार के सदस्यों को संरचनात्मक कारण और संस्थागत प्रथाएँ, ट्रायल कार्यवाही में सार्थक प्रतिभागी होने से रोकती हैं। क़ानूनी प्रक्रियाओं की अपारदर्शीता के कारण परिवारों के लिए यह समझना मुश्किल हो जाता है कि उनके मामलों में हो क्या रहा है। परिवारों ने यह भी बताया कि उनके वक़ील मामलों में प्रगति के बारे में कोई भी जानकारी प्रदान करने के लिए इच्छुक नहीं रहते थे। यह और भी आश्चर्यजनक इसलिए था क्योंकि जैसा कि अध्याय 8, 'क़ानूनी प्रतिनिधित्व', में वर्णित है 70% से अधिक क़ैदियों के पास ट्रायल कोर्ट चरण में निजी वक़ील थे।[6] क़ैदियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति को देखते हुए, आपराधिक न्याय व्यवस्था में फँसे लोगों का मानना था कि इसके शिकार गरीब और हाशिए पर रहने वाले लोग थे। संस्थागत अपवर्जन, भ्रष्टाचार, उदासीनता और अक्षमता, आपराधिक न्याय प्रणाली में भीतर तक फँसे लोगों को अन्याय और मनमुटाव की भावना से भर देते हैं।

6. 361 क़ैदियों में से, जिनके क़ानूनी प्रतिनिधित्व की प्रकृति के बारे में जानकारी उपलब्ध थी, 255 (70.6%) के पास निजी वक़ील थे।

आरिज़ की पत्नी अफ़साना, 19 साल की थी जब उसकी शादी हुई थी। शादी के तीन महीने के अन्दर उसके पति को गिरफ़्तार कर लिया गया था। वह उस समय गर्भवती थी और उसका स्वास्थ्य काफ़ी खराब हो गया। हालाँकि उसने पहले कभी काम नहीं किया था परंतु पैसे कमाने के लिए ताकि वह अपनी बीमार माँ और बेटी का ध्यान रख सके, उसने अगरबत्ती बनाने का काम किया। दुर्भाग्य से उसे कई प्रकार की बीमारियाँ हो गईं। उसके बाद उसकी पीठ पर चोट लगने के कारण वह किसी भी शारीरिक श्रम के लिए अक्षम हो गई। अब वह अपनी स्कूल जाने वाली बेटी और बिस्तर पर बीमार माँ की देखभाल रिश्तेदारों द्वारा दी गई छोटी मोटी मदद से करती है। इन जिम्मेदारियों के बोझ के कारण अफ़साना के लिए दूसरे राज्य में जहाँ उसके पति का मामला एक विशेष कोर्ट में चल रहा था, जाना असम्भव था। भले ही अफ़साना यात्रा करने के लिए संसाधनों की व्यवस्था कर लेती परन्तु वह ट्रायल में भाग नहीं ले पाती क्योंकि विशेष अदालत जेल में वहाँ गठित की गई थी जहाँ आरिज़ क़ैद था। नतीजतन, उसे मुक़दमे की कार्यवाही के बारे में पता नहीं चलता था और उसे सह अभियुक्तों के परिवारों से ही केस की जानकारी मिलती। आठ से अधिक वर्षों से ट्रायल अदालत में और फ़िर हाई कोर्ट से पुष्टि के लिए लंबित उसके मामले को लेकर, अफ़साना आशा करती है कि उसकी ये परीक्षा जल्द ही ख़त्म हो जाएगी।[7]

सबूत

साक्षात्कार के दौरान सबूत की गुणवत्ता के बारे में भी क़ैदियों और उनके परिवारों के साथ हमने चर्चा की थी। देश भर में क़ैदियों और उनके परिवारों ने कहा कि उन्हें उन सबूतों के बारे में बहुत कम पता था जिनका इस्तेमाल कर क़ैदी को दोषी ठहराया गया और उन्हें मौत की सज़ा सुनाई गयी थी। परन्तु ऐसे क़ैदी भी थे जिन्हें अपने मामलों में सबूतों की ज़बर्दस्त जानकारी थी और उन्होंने अपने केस के कागजात का काफी विस्तार से अध्ययन किया था।

हालाँकि उनके ख़िलाफ़ पेश किए गए सबूतों की कम या कोई जानकारी न होना एक आम बात थी लेकिन इसके विपरीत आख्यान भी थे। उत्पल जिसे दो अन्य लोगों के साथ तीन लोगों की हत्या के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई थी, उसने अपने ख़िलाफ़ सबूतों पर विस्तार से चर्चा की। नौ वर्षों तक चले ट्रायल की सभी कार्यवाहियों के लिए उपस्थित उत्पल ने दावा

7. अफ़साना के साक्षात्कार के समय, आरिज़ और उसके सह–आरोपी को अदालत द्वारा मौत की सज़ा मिले हुए चार साल और दस महीने हो गए थे।

सबूत को समझना

सृजन के पास उसके ख़िलाफ़ पेश किए सबूत को समझने के लिए बहुत कम मौक़े थे। उसके वक़ील ने पूरे मुक़दमे के दौरान केवल एक बार उसके साथ बातचीत की थी। जबकि वह सभी सुनवाई के लिए उपस्थित था परंतु उसे अदालत के पिछले हिस्से में खड़ा रखा गया, जहाँ उसे न तो गवाहों के बयान सुनाई दे रहे थे और न ही उसके ख़िलाफ़ उनके द्वारा दिए गए सबूत समझ में आ रहे थे। क़ानूनी कार्यवाही से इस अलगाव को सेशन न्यायाधीश ने भी कभी संबोधित नहीं किया। उन्होंने 13 महीने चले लम्बे ट्रायल के दौरान केवल एक बार सृजन से बातचीत की और पूछा कि क्या अपराध उसने ही किया है। क़ानूनी कार्यवाही से अलगाव सिर्फ़ उसका ही नहीं बल्कि उसकी माँ का भी था। अदालत में होते हुए भी वह न तो कार्यवाही सुन सकती थी और न ही अपने बेटे के ख़िलाफ़ प्रस्तुत सबूत के बारे में उसे पता था। उसका अदालत की सुनवाई में भाग लेने का प्रमुख कारण अपने बेटे से मिलना होता था। वह उससे तब ही मिल पाती थी जब उसे अदालत ले जाया जाता था।

किया कि यह तथ्य झूठा था कि चोरी की गई वस्तुओं को उसके बताए जाने पर पुलिस द्वारा बरामद किया गया था। इसके अलावा सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के तहत दायर अनुरोध में मांगे गए अभिलेखों के माध्यम से उत्पल ने मुख्य अभियोजन गवाह का ठिकाना पता करने का प्रयास किया जो सार्वजनिक क्षेत्र में काम करता था। यह अभियोजन पक्ष के दावे को नकारने के लिए किया था कि वह घटना के समय वहाँ था। परन्तु ट्रायल कोर्ट ने ठहराया कि पुलिस द्वारा बरामद ये रिकॉर्ड, अभियोजन के मामले के लिए घातक साबित नहीं होंगे। अपने साथी क़ैदियों से ट्रायल कोर्ट के अंग्रेज़ी में लिखे गए निर्णयों को समझाने के लिए उत्पल ने अनुरोध किया। उसने पाया कि गिरफ़्तारी के समय उसकी उम्र भी अदालत द्वारा ग़लत नोट की गई थी। सामान्य रूप से मृत्यु दंड पाए क़ैदी अपने मामलों से बेख़बर होते हैं। इसलिए अपने ख़िलाफ़ सबूतों की समझ रखने वाले उत्पल को विशिष्ट रूप में देखा जा सकता है।

साक्षात्कार में इकट्ठी की गई जानकारी और ट्रायल कोर्ट के उन निरण्यों जिनकी प्रतिलिपि हमारे पास थी परीक्षण के माध्यम से हमने परियोजना के दौरान साक्षात्कार किए गए क़ैदियों के मामलों में इस्तेमाल सबूत की प्रकृति पता लगाने की कोशिश की। खराब रिकॉर्ड रखने की प्रथाओं और ट्रायल कोर्ट के निर्णयों की प्रतियों तक पहुंचने में कई बाधाओं के कारण हम दावा नहीं कर सकते कि करीब सभी मामलों में सबूतों की बारीकी से जाँच की गई है। परन्तु इन मामलों में सबूत काफ़ी हद तक निम्नलिखित श्रेणियों में रखे जा सकते हैं:

* पुलिस अधिकारी को दिये गए इक़बालिया बयान के आधार पर बरामदगी
* सरकारी गवाह द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य
* परिस्थितिजन्य साक्ष्य
* आख़िरी बार देखा गया सबूत
* न्यायिक मजिस्ट्रेट के सामने इक़बालिया बयान

पुलिस अधिकारी को दिये गए इक़बालिया बयान के आधार पर बरामदगी

एक पुलिस अधिकारी[8] को इक़बालिया बयान और पुलिस हिरासत में इक़बालिया बयान (एक मजिस्ट्रेट को दिए बयान को छोड़कर)[9] भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (आईईए) के तहत अस्वीकार्य है परन्तु पुलिस अधिकारी को दिए गए इक़बालिया बयान पर आधारित बरामदगी, आईईए की धारा 27 के तहत सबूत के रूप में स्वीकार्य है।[10]

क़ानूनी स्थिति को निम्न दृष्टांतों की सहायता से समझा जा सकता हैः 'बी' की हत्या में 'ए' को संदिग्ध के रूप में पुलिस ने गिरफ़्तार किया। पुलिस कस्टडी में जाँच अधिकारी के समक्ष 'ए' इक़बालिया बयान देता है कि उसने 'बी' को बार–बार छुरा भोंक कर मारा और फ़िर घर के पीछे छूरे को गाड़ दिया। 'ए' का बयान कि उसने 'बी' को मार डाला क़ानून की अदालत में आईईए के तहत अमान्य है। परन्तु अभियोजन पक्ष इस बयान का इस्तेमाल कर सकता है कि हथियार 'ए' के बयान के आधार पर उसके घर के पीछे से बरामद किया गया था। यह एक मज़बूत सबूत 'ए' के ख़िलाफ़ हो जाता है कि उसे हत्या करने वाले हथियार के स्थान का पता था।

असहनीय यातना या परिवार के सदस्यों को नुकसान पहुँचने की पुलिस की धमकी ऐसे कारण

8. धारा 25, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872

9. धारा 26, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872

10. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 इस प्रकार हैः परंतु जब किसी तथ्य के बारे में यह अभिसाक्ष्य दिया जाता है की किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से, जो पुलिस अफ़सर की अभिरक्षा में हो, प्राप्त जानकारी के परिमाणस्वरुप उसका पता चला है, तब ऐसी जानकारी में से उतना चाहे वो संस्किवृत की कोटि में आती हो या नहीं, जितनी एततदद्वारा पता चले हुए तथ्य से स्पष्टतया सम्बंधित है, साबित की जा सकेगी।

बृजेश और बृजमोहन को एक महिला के बलात्कार और हत्या के लिए दोषी ठहराया गया था और मौत की सज़ा सुनाई गई थी। नौ दिन की लंबी पुलिस हिरासत की घटनाओं का बयान करते हुए बृजमोहन ने कहा कि उन्हें बेल्ट से बुरी तरह पीटा गया, उनके गुप्तांग पर प्रहार किया गया और तीन दिन तक नग्न रखा गया था। बहरहाल बृजेश को अपने ऊपर की गई "अस्पष्टीकृत यातना" के बारे में बात करने में बहुत मुश्किल हो रही थी। ऐसी यातना के बाद उन्हें कोरे काग़ज़ पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया गया। ये काग़ज़ बाद में मृतक के सामान की प्राप्ति में उनके बयान के रूप में पेश किए गए। जबकि उन्होंने दावा किया कि ये सामान उनके मकान में रख दिया गया था। इसके अलावा पुलिस हिरासत में उन्हें पाँच–छह बार जबरदस्ती वीर्यपात करना पड़ा। उनके वीर्य को पीड़िता के कपड़ों पर लगाया गया। ट्रायल कोर्ट ने आरोपी के बयान पर पीड़िता का सामान और कपड़ो के मिलने पर विश्वास करते हुए और अन्य कारकों को भी मानते हुए बृजेश और बृजमोहन को मौत की सज़ा सुनाई।

हैं। जो क़ैदी को पुलिस हिरासत में कोरे काग़ज़ पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर कर देते हैं। क़ैदियों का दावा है कि इन काग़ज़ो पर अक्सर बयान गढ़े जाते हैं। यह काफ़ी स्पष्ट है कि इस तरह के सबूत अविश्वसनीय है क्योंकि यह बहुत हद तक हिरासत में हिंसा पर आधारित है।

सरकारी गवाह की गवाही

सरकारी गवाह की गवाही ऐसी स्थिति है जहाँ एक सह–आरोपी उसी मामले में एक अन्य आरोपी के ख़िलाफ़ सबूत पेश करता है। इसको कमज़ोर सबूत माना जाता है। इसका स्पष्ट कारण है कि एक सह आरोपी के अन्य अभियुक्तों के ख़िलाफ़ गवाही देने का आधार अपने लिए क्षमा पाने का कहा जा सकता है। आईईए की धाराएँ 114 और 133 सरकारी गवाह की गवाही के साथ सरोकार रखती है। धारा 114 के अनुसार यह माना जा सकता है कि सह आरोपी द्वारा दिए गए बयान के कोई मायने नहीं है जब तक उसकी पुष्टि नहीं हो, और धारा 133 के अनुसार अपराध को अवैध केवल इसलिए नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह एक साथी की संपुष्ट गवाही से है। इन दो प्रावधानों के बीच संघर्ष को सुप्रीम कोर्ट द्वारा हल किया गया था। इन दो प्रावधानो के बीच संघर्ष को सुप्रीम कोर्ट द्वारा हल किया गया था यह ठहराते हुए कि केवल सरकारी गवाह की गवाही पर भरोसा करने के ख़िलाफ़ क़ानून में उपधारना है, लेकिन इस उपधारना को किसी विशेष मामले में खंडित किया जा सकता है।[11]

आईईए में सरकारी गवाह की गवाही के इन प्रावधानों को सीआरपीसी की धारा 306 और 307 के साथ पढ़ना चाहिए। यह प्रावधान सरकारी

11. दगदु और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (1977) 3 एससीसी 68, पैराग्राफ़ 21

तेजुल का मामला दोषी को अपराधी ठहराने के लिए अभियोजन पक्ष के दुराचार की हद पर प्रकाश डालता है। पाँच आरोपियों में से सिर्फ तेजुल को ही सेशन कोर्ट ने मौत की सज़ा सुनाई थी। ट्रायल के दौरान अभियुक्तों में से एक सरकारी गवाह बन गया और उसे सेशन कोर्ट द्वारा क्षमा प्रदान कर दी गई। सेशन न्यायाधीश ने सरकारी गवाह की रिपोर्ट को विश्वसनीय माना और कहा कि भले ही शेष साक्ष्यों को उसकी अनुपस्थिति में माना गया हो पर निःसंदेह आरोपी का अपराध साबित हो गया है। परन्तु हाई कोर्ट द्वारा सबूत के पुनः अवलोकन पर तेजुल को सभी आरोपों से बरी कर दिया गया। हाई कोर्ट ने कहा कि सरकारी गवाह के कथन और अन्य पक्ष के गवाहों के बीच बड़ी विसंगति थी जिस के कारण सरकारी गवाह की गवाही बहुत अविश्वसनीय थी और सरकारी गवाह के सिवाय इसकी पुष्टि नहीं हो सकी थी। अभियोजन पक्ष के पास अपराध के पीछे के मक़सद को साबित करने के लिए कुछ नहीं था। हाई कोर्ट द्वारा बरी किए जाने से पहले अपने साक्षात्कार के दौरान तेजुल ने बताया कि सरकारी अभियोजक ने शुरू में उसके भाई जो मामले में सह आरोपी था, से सरकारी गवाह बन कर तेजुल के ख़िलाफ़ झूठी गवाही देने के लिए कहा था। जब उसने ऐसा करने से इंकार कर दिया तो यह प्रस्ताव एक और आरोपी के पास गया जिसने उसे स्वीकार कर लिया और अभियोजन पक्ष द्वारा काल्पनिक घटनाओं की पुष्टि की।

गवाह को क्षमा की अनुमति इस शर्त पर देते हैं कि वह अपराध से संबंधित किसी भी व्यक्ति या परिस्थिति का पूर्ण और सही प्रकटीकरण करेगा। एक बार क्षमा प्रदान होने के बाद वह अभियुक्त नहीं रहता और अभियोजन पक्ष के लिए गवाह बन जाता है। परन्तु अगर सरकारी अभियोजक प्रमाणित करता है कि सह अपराधी ने इरादतन सबूत को छुपाया है या झूठा सबूत पेश किया है तो आरोपी को दी क्षमा वापस ली जा सकती है। उसे उसी अपराध के लिए जिसके लिए उसे क्षमा मिली थी, झूठा सबूत पेश करने के अपराध पर मुक़दमा किया जा सकता है।[12]

क़ानून में यह स्थिति कई प्रकार से क़ानूनन कदाचारों को सक्षम बनाती है जैसे, अभियोजकों द्वारा सह अभियुक्तों के लिए ग़लत या झूठी गवाही की एवज़ में क्षमा माँगना। महाराष्ट्र में मृत्युदंड मामलों में अभियोजन पक्ष सरकारी गवाह की गवाही पर अनावश्यक रूप से निर्भर रहते हैं। 11 मामलों में जहाँ कई आरोपी थे, पाँच मामलों में नौ क़ैदियों को सरकारी गवाह की गवाही के आधार पर मौत की सज़ा सुनाई गई। इसके अलावा इन मामलों में सरकारी गवाह की गवाही ही मुख्य सबूत था।

परिस्थितिजन्य सबूत

'निर्दोष, जब तक दोषी सिद्ध न किया गया हो' वह आधार है जिस पर हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली आधारित है। एक क़ैदी को मृत्युदंड तभी दिया जा सकता है जब उसका अपराध संदेह से परे साबित कर दिया गया हो। अभियुक्तों के अपराध को साबित करने के लिए प्रयुक्त साक्ष्य

12. धारा 308, अपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973

प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य हो सकते हैं। एक तरफ प्रत्यक्ष सबूत मुद्दे में अन्य तथ्यों की सहायता के बिना तथ्य स्थापित करते हैं तो दूसरी ओर परिस्थितिजन्य साक्ष्य, अन्य तथ्यों पर निर्भर रहते हैं। परिस्थितिजन्य सबूत आमतौर पर तब प्रयोग में लिए जाते हैं जब अभियोजन पक्ष को तथ्य के समर्थन में कोई सीधा सबूत नहीं मिलता।

सुप्रीम कोर्ट ने यह कहा है कि अदालतों को परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर सज़ा देने के दौरान बहुत सावधानी बरतनी होगी। परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर एक अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए सारी परिस्थितियों को निर्णायक रूप से अभियुक्त के अपराध को साबित करना होगा। उसकी बेगुनाही की संभावना के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोडनी होगी और अगर सबूत की दो व्याख्याएं संभव हैं तो संदेह का लाभ आरोपी को दिया जाएगा।[13] हालाँकि न्यायिक कार्य प्रणाली काफी विभाजित है परंतु अदालत का मानना है कि मौत की सज़ा आम तौर पर उन मामलों में नहीं देनी चाहिए, जहाँ सज़ा परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित हो।[14]

आख़िरी बार देखा सबूत

'आख़िरी बार देखा' साक्ष्य परिस्थितिजन्य सबूतों का एक विशेष उदाहरण है। 'आख़िरी बार देखा' सबूत का शाब्दिक अर्थ है कि पीड़ित को अंतिम बार आरोपी के साथ देखा गया था और अभियोजन पक्ष उस आधार पर आरोपी का अपराध साबित करने की कोशिश करता है। 'आख़िरी बार देखा' सबूत उस समय पेश करने का मतलब है जबकि मृतक को आरोपी के साथ ज़िंदा देखे जाने और मृतक को मृत पाए जाने के बीच की समयावधि इतनी छोटी हो कि आरोपी

13. एम जी अग्रवाल बनाम महाराष्ट्र राज्य (1963) 2 एससीआर 405, पैराग्राफ 18

14. बिशनु प्रसाद सिन्हा और अन्य बनाम असम राज्य (2007) 11 एससीसी 467, पैराग्राफ़ 55; आलोक नाथ दत्ता बनाम पश्चिम बंगाल (2007) 12 एससीसी 230, पैराग्राफ़ 174; संतोष कुमार सतीशभूषण बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य (2009) 6 एससीसी 498, पैराग्राफ़ 167

के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के अपराधी होने की संभावना असम्भव हो जाए।[15] 'आख़िरी बार देखा' और मौत के समय के बीच बीता हुआ समय अगर ज़्यादा होता है तो सबूत की विश्वसनीयता कम हो जाती है, क्योंकि तब यह संभावना बढ़ सकती है कि कोई अन्य व्यक्ति भी पीड़ित के संपर्क में आया हो। सुप्रीम कोर्ट ने यह ठहराया है कि अदालतों को उन मामलों में भी, जहाँ 'आख़िरी बार देखा' साक्ष्य और मौत के समय के बीच बीता समय बहुत छोटा है[16], सबूतों की पुष्टि ज़रूर करनी चाहिए। यह भी कहा कि यह संभव नहीं है कि अपीलकर्ता को केवल 'आख़िरी बार देखा' सबूत के आधार पर दोषी ठहरा दिया जाए।[17]

यह देखा गया कि 'आख़िरी बार देखा' साक्ष्य मुख्य रूप से नाबालिगों के बलात्कार के साथ हत्या के मामलों में मृत्युदंड की श्रेणी में लाया गया था। अपराध की प्रकृति को देखते हुए प्रत्यक्षदर्शी गवाही दुर्लभ होती है और 'आख़िरी बार देखा' सबूत पर काफ़ी भरोसा किया जाता है। यह देखा गया है कि 'आख़िरी बार देखा' साक्ष्य और पुलिस अधिकारी को दिये गए अभियुक्त के इक़बालिया बयान के आधार पर बरामदगी को साथ इस्तेमाल किया जाता है क्योंकि 'आख़िरी बार देखा' साक्ष्य अकेला सज़ा का आधार नहीं हो सकता, इसलिए अदालत इस संयोजन को स्वीकार करती नज़र आती है। परन्तु जैसा कि अध्ययन के पिछल हिस्से में चर्चा की गयी है कि पुलिस अधिकारी को दिया गया बयान सबूत के तौर पर संदेहास्पद है क्योंकि यह आमतौर पर यातना का परिणाम होता है।

न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष बयान

हालाँकि एक पुलिस अधिकारी को दिये गए इक़बालिया बयान साक्ष्य के रूप में अस्वीकार्य होते हैं परन्तु एक न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष दिये गए बयान स्वीकार्य है[18] और उनका काफ़ी वज़न होता है। धारणा यह है कि न्यायिक

15. रामरेड्डी राजेश खन्ना रेड्डी और अन्य बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य (2006) 10 एससीसी 172, पैराग्राफ़ 27

16. रामरेड्डी राजेश खन्ना रेड्डी और अन्य बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य (2006) 10 एससीसी 172, पैराग्राफ़ 27

17. जसवंत गौर बनाम पंजाब राज्य (2005) 12 एससीसी 438, पैराग्राफ़ 5

18. जबकि भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 26 ने पुलिस हिरासत में इक़बालिया बयान को साक्ष्य के रूप में अस्वीकार किया है, परंतु यह एक मजिस्ट्रेट की उपस्थिति में दिए गए बयान को मानता है, जिससे यह आरोपी के ख़िलाफ़ सबूत की तरह स्वीकार्य है। धारा 26 में इस प्रकार लिखा गया है: "किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी पुलिस अधिकारी को हिरासत में दिया गया इक़बालिया बयान, जब तक कि वह मजिस्ट्रेट की उपस्थिति में नहीं दिया जाता है, वह आरोपी के ख़िलाफ़ साक्ष्य नहीं साबित होगा।"

विपुल को अपने पड़ौस में रहने वाली एक आठ वर्षीय लड़की के बलात्कार और हत्या के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई थी। पीड़िता के पिता, दादा–दादी और अन्य रिश्तेदारों के बयानों पर भरोसा करते हुए ट्रायल कोर्ट ने विपुल को इस आधार पर दोषी करार दिया कि वह पीड़िता के साथ, शव मिलने के करीब आधे घंटे पहले 'आख़िरी बार देखा' गया था। हालाँकि पीड़ित परिवार के सदस्यों ने मृतक की तलाश करते समय न तो विपुल के बारे में कोई संदेह जताया था और न ही उन्होंने अपने पुलिस बयानों में उसके दोषी होने को इंगित किया था। इन विसंगतियों को देखते हुए हाई कोर्ट ने परियोजना के साथ साक्षात्कार के बाद विपुल की सज़ा को रद्द कर दिया। कोर्ट ने कहा कि अभियोजन की 'आख़िरी बार देखा' कहानी अप्रमाणित है। विपुल ने जो कभी स्कूल नहीं गया था, 10 साल की उम्र से सहायक वेटर का काम करना शुरू कर दिया था। अपनी गिरफ़्तारी के समय वह घरेलू नौकर के तौर पर 1500 रुपए प्रति माह की आमदनी पर कार्यरत था। जेल में बिताए पाँच वर्षों में विपुल का निकटतम साथी उसका पालतू कबूतर था जिसे वह प्यार से 'वीरू' बुलाता था। उसे विश्वास था कि उसकी मासूमियत का सच अंततः बाहर आ ही जाएगा। विपुल ने टिप्पणी की कि जेल से रिहा होने के बाद वह अपनी कुछ पसंदीदा हिंदी फ़िल्में देखेगा।

मजिस्ट्रेट के सामने दिये गए बयानों की स्वैच्छिक होने की संभावना है और वो पुलिस अधिकारी को दबाव में दिये बयान की आशंका से ग्रस्त नहीं है। परन्तु इस तरह के बयान भी अत्यन्त दबाव से लिए जा सकते हैं, इसलिए सुप्रीम कोर्ट ने इस की संभावना को कम करने के लिए विस्तृत दिशा निर्देश दिये हैं।[19]

साक्षात्कार के दौरान हमने क़ैदियों से आख्यान सुने जहाँ उनके पास या तो यातना झेलते रहने का अकल्पनीय दर्द था या मजिस्ट्रेट के सामने इक़बालिया बयान देने के लिए सहमत हो जाने का विकल्प। हिरासत में अभियुक्तों के अनुभवों को देखते हुए मजिस्ट्रेट के आश्वासन के बावजूद कि अगर वह इक़बालिया बयान नहीं देना चाहते हैं तो उन्हें आगे यातना से बचाया जाएगा, निश्चित रूप से पर्याप्त नहीं है। पुलिस अधिकारी आरोपी को धमकी देते हुए दावा करते हैं कि अगर बयान नहीं दिया तो उन्हें पुलिस हिरासत में वापस भेज दिया जाएगा या उनके परिवार को नुकसान पहुँचाया जाएगा। पुलिस हिरासत में आरोपी द्वारा वास्तविकता का सामना करने के बाद मजिस्ट्रेट का बार–बार आश्वासन देना कि उसे पुलिस द्वारा नुकसान नहीं पहुँचाया जाएगा उसे अविश्वसनीय लगता है।

19. रबिंद्र कुमार पाल बनाम भारत गणराज्य (2011) 2 एससीसी 490, पैराग्राफ़ 64

मजिस्ट्रेट के समक्ष इक़बालिया बयान

इंदर की खौफ़नाक यातना 10 दिन लम्बी पुलिस हिरासत में क्रूर मार तक सीमित नहीं था। इंदर की आंखों पर पट्टी बांध कर पुलिस हवा में गोलियां चलाती ताकि उसे हर पल अपने जीवन के लिए डर बना रहता। उसके नितंबों पर पेट्रोल डाला गया और ऐसे–ऐसे अत्याचार किए गए जिनके बारे में चर्चा करने में भी उसे शर्म महसूस हो रही थी। अपने साक्षात्कार के दौरान इंदर ने साझा किया कि उसके पास इस यातना से बचने का एकमात्र तरीका, जाँच अधिकारी की मांगों का अनुपालन करके मजिस्ट्रेट के समक्ष इक़बालिया बयान देना था। इंदर ने मजिस्ट्रेट के सामने क़बूल तो कर लिया परन्तु अपने मुक़दमे के दौरान उसने सेशन न्यायाधीश को सूचित किया कि बयान देने के लिए उस पर पुलिस द्वारा दबाव डाला गया था। लेकिन ट्रायल कोर्ट इस निष्कर्ष पर पहुँची कि बयान स्वैच्छा से दिया गया था और उसकी पुष्टि परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा पर्याप्त थी। अपील में जबकि हाई कोर्ट ने कहा कि इंदर के इक़बालिया बयान में इस बात का उल्लेख नहीं था कि मजिस्ट्रेट ने उसे ऐसे बयान देने की प्रतिक्रियाओं के बारे में जानकारी दी थी या नहीं लेकिन चूंकि उसे बयान के तीन दिन पहले तक न्यायिक हिरासत में रखा गया था, इसलिए दर्ज बयान पूरी तरह से स्वैच्छिक होने की सम्भावना को माना गया। उस पीड़ा को याद करते हुए जिससे वह गुज़रा था, इंदर ने कहा कि अगर किसी पर भी इस तरह अत्याचार हो तो "आप अत्याचार बंद करवाने के लिए कुछ भी करने के लिए सहमत होंगे; तब आपने जुर्म किया है या नहीं, यह कोई मायने नहीं रखेगा"।

न्यायाधीश द्वारा अभियुक्तों की जाँच

सीआरपीसी की धारा 313 के अनुसार अभियोजन पक्ष द्वारा मामला पेश करने के बाद ट्रायल कोर्ट आरोपी की जाँच करेगा, इससे पहले कि आरोपी को अपने बचाव पक्ष को पेश करने के लिए बुलाया जाए। न्यायाधीश और अभियुक्त के बीच बिना किसी वक़ील के सीधी बातचीत को निष्पक्ष ट्रायल का एक अभिन्न अंग माना जाता है। न्यायाधीश का यह दायित्व है कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत प्रत्येक परिस्थितियों को स्पष्ट रूप से समझाएँ ताकि आरोपी को अपने ख़िलाफ़ दिखाई देने वाली उन परिस्थितियों को समझने का एक निष्पक्ष और उचित अवसर मिले। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि प्रत्येक परिस्थितिक विषय वस्तु को आसान तरीक़े से और अलग से समझाया जाना चाहिए ताकि एक अनपढ़ को भी या जो परेशान या उलझन में है, उसे आसानी से समझ आ जाए।[20]

20. तारा सिंह बनाम राज्य (1951) एससीआर 729, पैराग्राफ़ 32

निर्मल और अकुल से धारा 313 के तहत जाँच के दौरान करीब 500 अजीब सवाल पूछे गए थे। उन्हें लगा कि सवालों के हाँ–ना प्रारूप के कारण उन्हें अपनी व्याख्या करने के लिए पर्याप्त अवसर नहीं मिला था। इसी तरह का अनुभव वेदांत द्वारा साझा किया गया था जिसे सेशन न्यायाधीश से स्पष्ट निर्देश मिले थे कि हाँ–ना में ही जवाब देना होगा और जाँच के समय कोई भी स्पष्टीकरण देने से बचना होगा।

दुर्भाग्य से जिस तरह से धारा 313 के तहत जाँच की जाती है, वह एक और उदाहरण है कि किस लापरवाह तरीक़े से मृत्युदंड के मामलों में कार्यवाही होती है। क़ैदियों को सवालों की एक लंबी सूची दी जाती है जिसे समझने के लिए वे संघर्ष करते हैं और उन्हें हाँ या ना में जवाब देने को कहा जाता है। 142 क़ैदियों जिन्होंने हमें सीआरपीसी की धारा 313 की कार्यवाही का ब्यौरा प्रदान किया, उसमें से 86 (60.6%) ने कहा कि केवल हाँ या ना में जवाब देने को कहा गया, जो की क़ानूनी आवश्यकता का मज़ाक है।

सज़ा

आरोपी का ट्रायल में दोष सिद्ध होने के बाद उसकी उचित सज़ा विभिन्न चरणों में निर्धारित की जाती है। क़ानून सज़ा सुनाने को एक अलग कार्यवाही मानता है (सीआरपीसी की धारा 235 (2)) और जब मौत की सज़ा पर विचार किया जा रहा हो तो न्यायाधीश के लिए यह बताना आवश्यक होता है कि किन 'विशेष कारणों' के लिए मृत्युदंड दिया जा रहा है सीआरपीसी की धारा 354(3) ।[21] और इसके अलावा सज़ा देते समय भी उन अप्रासंगिक कारणों पर विचार करना चाहिए जो अपराधी को दोषी साबित कर सकते हैं।

ऐसे मामलों के लिए जहाँ मौत की सज़ा की माँग की जाती है, भारत के सुप्रीम कोर्ट ने 'बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य' में एक व्यक्ति को मौत की सज़ा देने से पहले अपनाई जाने वाली सज़ा की रूपरेखा विस्तृत रूप से सामने रखी है।[22] 'बचन सिंह' में विकसित 'विरल से विरलतम' सिद्धांत में न्यायाधीशों को मृत्युदंड उचित सज़ा है या नहीं निर्धारित करते समय उत्तेजक और क्षमा–योग्य परिस्थितियों के बीच संतुलन बनाए रखना पड़ता है। 'बचन सिंह' में जो उत्तेजक परिस्थितियाँ

21. दंड प्रक्रिया संहिता 1898, में हत्या के लिए मौत की सज़ा देना प्रतिमान था और न्यायाधीशों को 'विशेष कारण' देना होता था, यदि वे क़ैदी को आजीवन कारावास की सज़ा देना चाहते थे। यह स्थिति वर्तमान की दंड प्रक्रिया संहिता 1973 में उलट दी गई है, जिसके तहत आजीवन कारावास प्रतिमान बन गया और मौत की सज़ा को लागू करने के लिए 'विशेष कारण' प्रदान किए जाने लगे

22. (1980) 2 एससीसी 684

ट्रायल के दौरान अपने अनुभवों का ब्यौरा देते हुए हेमराज ने कहा कि न्यायाधीश ने उससे केवल यह पूछा कि क्या उसने अपराध किया है, जिसके लिए उसने नकारात्मक जवाब दिया। लेकिन जब उसने आगे बात करने और अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए सबूतों के जवाब देने का प्रयास किया तो सेशन न्यायाधीश ने उसे ऐसा करने की अनुमति नहीं दी और उसे आश्वस्त किया कि "वक़ील सब संभाल लेंगे।" हेमराज को लगता है कि उसके वक़ील ने उसे मौत की सज़ा के लिए तैयार नहीं किया और ट्रायल कोर्ट के फ़ैसले ने उसे 'धोखा दिया'। वह आशा करता है कि उसे हाई कोर्ट में न्याय मिलेगा।

पहचानी गईं, वो– किस गम्भीर और क्रूर तरीक़े से अपराध किया गया, उसकी क्या पूर्व योजना बनाई गई आदि से समबन्धित थीं।[23] क्षमा–योग्य परिस्थितियों में आवश्यकता है कि आरोपी से सम्बन्धित विस्तृत जाँच की जाए। न्यायाधीश के लिए यह भी महत्वपूर्ण है कि भविष्य में सुधार की संभावना पर फ़ैसला दे या निर्णायक तरीक़े से स्थापित करे कि "वैकल्पिक सज़ा का विकल्प निर्विवादित रुप से ख़त्म हो चुका है"।[24] इसके लिए राज्य को यह प्रमाण देना होगा कि अभियुक्त समाज के लिए लगातार ख़तरा बना हुआ है और उसके सुधार की कोई गुंजाइश नहीं है।[25]

एक व्यापक सज़ा सुनवाई में उन शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक और भावनात्मक कारकों पर प्रकाश पड़ना चाहिए जिनके कारण व्यक्ति के विकास पर असर पड़ा होगा। संयुक्त राज्य अमेरिका में अभियुक्तों के बचपन के अनुभवों से ले कर उनके परिवारों के इतिहास और जेल में आने के समय तक, इकट्ठे किए गए जैविक, मनोवैज्ञानिक, स्नायविक और सामाजिक कारक, क्षमा–योग्य सम्भावित परिस्थिति के दायरे में हो सकते हैं। 2003 में अमेरिकी बार एसोसिएशन द्वारा मृत्युदंड के प्रतिनिधित्व ने ज़ोर देकर सिफ़ारिश की कि क्षमा–योग्य कारकों के विशेषज्ञों का उपयोग मृत्युदंड मामलों में अभियुक्तगण वक़ीलों की सहायता के लिए करना चाहिए। क्षमा–योग्य कारकों के विशेषज्ञों के पास सामाजिक कार्य में व्यापक अनुभव और क़ैदियों और उनके परिवारों के साथ व्यापक बातचीत के माध्यम से अभियुक्तों के संपूर्ण मनोवैज्ञानिक व सामाजिक इतिहास विकसित करने के लिए आवश्यक कौशल होता है।

हमारे शोध के दौरान हमने पाया कि 'बचन सिंह' में विकसित 'विरल से विरलतम' सज़ा का ढाँचा

23. (1980) 2 एससीसी 684, पैराग्राफ़ 202

24. (1980) 2 एससीसी 684, पैराग्राफ़ 209

25. (1980) 2 एससीसी 684, पैराग्राफ़ 206

पूरी तरह से भंग हो चुका है। दोषी सिद्ध होने के बाद सज़ा सुनाना एक मात्र औपचारिकता के रूप में होता है। समस्या वहाँ से शुरू होती है जब सज़ा पर योग्य तर्क नहीं पेश होते और यह फ़ैसले के घटिया विश्लेषण में परिलक्षित होता है। जो मुद्दे हमारे सामने आए उनमें से वक़ीलों का सुनवाई के समय मौजूद नहीं होना, सज़ा की सुनवाई तथा अभियुक्त को एक ही दिन में दोषी ठहराया जाना (अदालत के सामने सज़ा से सम्बंधित सभी प्रासंगिक सामग्री प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त समय नहीं देना),[26] अभियुक्तगण वक़ीलों का बहुत ही सरसरी तरह से सज़ा कारकों को पेश करना, न्यायाधीश का सज़ा के तर्कों में अरुचि प्रदर्शित करना और 'विरल से विरलतम' ढाँचे का ग़लत इस्तेमाल होना। अभियुक्तगण वक़ीलों द्वारा अक्सर जो सज़ा कारक दिए जाते हैं वे उम्र, ग़रीबी और परिवार के अस्तित्व तक ही सीमित होते हैं। जैसा कि 'क़ानूनी सहायता' अध्याय 5 में चर्चा की गई है, वक़ील और आरोपी के बीच सीमित बातचीत को देखते हुए जिस व्यक्ति का वो प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, उसकी शायद ही कोई जानकारी होती है, जिसे वो अदालत में इस्तेमाल कर सकते हैं। इस जानकारी का सार्थक इस्तेमाल सुनवाई में किया जा सकता है, अदालत को यह दिखाने के लिए कि वह व्यक्ति सिर्फ़ आरोपी ही नहीं बल्कि एक इंसान भी है।

हमने यह भी पाया कि मृत्युदंड देने से पहले शायद ही कभी क़ैदियों के सुधार की संभावना के बारे में सोचा जाता है। 50 क़ैदियों में से जिनके मामलों में सुप्रीम कोर्ट ने मौत की सज़ा की पुष्टि की थी, उनमें से 34 (68%)[27] ऐसे थे जहाँ फ़ैसले में सुधार के मुद्दे को संबोधित नहीं किया गया था। शेष 16 क़ैदियों में से आठ के लिए सुप्रीम कोर्ट ने सिर्फ़ उनके अपराध की प्रकृति के आधार पर कोई सुधार के मौक़े से इंकार कर दिया।

26. अलाउद्दीन मियां और अन्य बनाम बिहार राज्य (1989) 3 एससीसी 5, पैराग्राफ़ 10 में, सुप्रीम कोर्ट ने यह माना कि आरोपी को दोषी ठहराए जाने के बाद, एक सामान्य नियम के तौर पर, ट्रायल कोर्ट को सज़ा देने की तारीख को भविष्य में रखना चाहिए ताकि दोनों पक्ष दंड से संबंधित मुद्दों पर प्रासंगिक सामग्री अदालत के सामने रख सकें। इसके अलावा, जिन मामलों में जीवन और मृत्यु के बीच निर्णय है, आरोपी को सज़ा देने के दौरान उसके वैधानिक अधिकार की ओर "उच्च स्तर की चिंता" को दिखाया जाना चाहिए और इसे "मात्र औपचारिकता" के रूप में नहीं माना जाना चाहिए।

27. 51 क़ैदियों में से, जिनकी दया याचिकाओं को अस्वीकार कर दिया गया था या साक्षात्कार के समय वह लंबित थीं , एक ने सुप्रीम कोर्ट में अपील नहीं दर्ज की थी।

नविंदर सिंह ने कहा कि "मुझे जेल के भीतर जहाँ भी जाना होता है, वहां जाने की अनुमति है। यहाँ हर कोई मुझे पसंद करता है।" वह रोज चार बजे उठता है और साढ़े पाँच बजे बैरक खुलने से पहले तैयार हो कर साबुन या दरी बनाने के लिए दिन भर जेल कार्यशाला में काम करता है। वह जेल के अंदर सब्ज़ी के बगीचे को भी संवारने में ख़ुद को व्यस्त रखता है। रात में साढ़े आठ बजे वह अपने कक्ष में आराम करने चला जाता है और बेसब्री से अगली सुबह का इंतज़ार करता है, जब वह काम पर वापस जाएगा। नविंदर को क़ैद के पहले दो साल दूसरे क़ैदियों से अलग रखा गया। फ़िर जेल में उसके अच्छे व्यवहार को देखते हुए उसे एकांत कारावास से बाहर लाया गया और जेल के अंदर विभिन्न गतिविधियों में शामिल होने की अनुमति दी। जबकि नविंदर की बातचीत अपने साथी क़ैदियों और परिवार के सदस्यों के साथ मुलाक़ात तक ही सीमित थी लेकिन उसको उनके अलावा औरों की भी चिंता थी। उसने देखा कि जो जेल में क़ैदियों से मिलने के लिए महिला आगंतुक लंबी दूरी की यात्रा करके आती थीं, उनके लिए कोई शौचालय नहीं था। नविंदर ने जेल में महिला शौचालय बनाने की पहल की। परंतु नविंदर के मामले में लिए गए निर्णयों से यह स्पष्ट होता है कि मृत्युदंड की पुष्टि करने से पहले न्यायपालिका के तीनों स्तरों में से किसी ने भी सुधार की संभावना पर विचार नहीं किया था। हालाँकि नविंदर ने 17 साल से अधिक जेल में काटे थे परंतु मृत्युदंड के निर्णय पर पहुँचने में सुप्रीम कोर्ट द्वारा जेल में उसके बिताए जीवन के किसी भी हिस्से पर विचार नहीं किया गया। मौत की सज़ा के बारे में अपने विचार साझा करते हुए नविंदर ने कहा कि ये सज़ा देने का कोई उद्देश्य नहीं है, "यह केवल लोगों की भावनाओं को शांत करने के लिए मौजूद है।[29]

इसके अलावा इन क़ैदियों में से 62% के सुधार की संभावना पर विचार किए बिना, विभिन्न हाई कोर्ट द्वारा मौत की सज़ा की पुष्टि की गई थी।[28] ट्रायल कोर्ट में तो स्थिति और भी ख़राब है। इन 50 क़ैदियों में से सिर्फ़ 28 क़ैदियों के ट्रायल कोर्ट के निर्णय तक हमारी पहुँच थी। इन 28 में से 21 (75%) मामलों में सुधार की संभावना पर विचार ही नहीं किया गया था।

सुधार की संभावना की जाँच करते हुए अदालतों को इस पर विचार करना चाहिए कि क़ैदी जेल में अपना समय कैसे बिता रहें हैं। अन्यथा अदालत का निर्णय, क़ैदी अपराध के समय कैसा था पर निर्धारित होता है, इस पर नहीं कि क़ैद के वर्षों के दौरान वह क्या हो गया है। परंतु 50 क़ैदियों में से जिनकी मौत की सज़ा की पुष्टि सुप्रीम कोर्ट ने की, किसी एक के भी न्यायपालिका के तीनों स्तरों के निर्णय में कहीं भी इस चर्चा की ज़रूरत नहीं समझी गई कि उन व्यक्तियों ने जेल में अपने साल कैसे बिताए थे।

28. 51 क़ैदियों में जिनकी दया याचिका खारिज कर दी गई थी या साक्षात्कार के समय लंबित थी, 10 को आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1987 के तहत मौत की सज़ा सुनाई गई थी और उनकी अपील पर सीधे सुप्रीम कोर्ट में सुनवाई हुई थी। अन्य पाँच क़ैदियों की हाई कोर्ट ने सज़ा कम कर दी थी, और बाद में सुप्रीम कोर्ट में उनकी सज़ा को मृत्यु दंड में बदल कर बढ़ा दी थी। शेष 36 क़ैदियों में से, 34 के हाई कोर्ट के फ़ैसले तक हम पहुँच नहीं पाए । इन 34 क़ैदियों में से, 21 पर लगाए गए मृत्युदंड की सज़ा को हाई कोर्ट ने बिना सुधार और पुनर्वास की सम्भावना पर विचार किए पुष्टि की थी।

29. साक्षात्कार के बाद, सुप्रीम कोर्ट ने नविंदर की मौत की सज़ा को कम कर के आजीवन कारावास की सज़ा में बदल दिया। यह उसकी दया याचिका पर कार्यकारी के निर्णय लेने में असामान्य विलम्ब के कारण किया गया था।

ट्रायल कोर्ट के फ़ैसले तक की पहुँच

सीआरपीसी की धारा 363 के अनुसार आरोपी को सज़ा की घोषणा के तुरंत बाद निर्णय की एक मुफ़्त प्रति देना आवश्यक होता है। यह धारा अभियुक्त को अपनी भाषा में अनुवादित निर्णय की एक मुफ़्त प्रति लेने की अनुमति देता है।[30] उचित समय के भीतर अभियुक्त को निर्णय की एक प्रति देने का प्रावधान, अपील के अधिकार का वो तत्व है जो संविधान के अनुछेद 21 के तहत प्रक्रियात्मक निष्पक्षता का अभिन्न अंग है।[31]

वक़ीलों के साथ ना के बराबर बातचीत को देखते हुए और सार्थक रूप से मुक़दमे की कार्यवाही में भाग लेने के अवसर की कमी के कारण, आरोपी के पास मामले को समझने के मौक़े अक्सर कम होते हैं। इसलिए निर्णय की एक प्रति प्राप्त करने का अधिकार आरोपी के लिए बहुत महत्व रखता है क्योंकि यह उसे उसके ख़िलाफ़ न्यायालय के सबूतों की जाँच को समझने के लिए और सार्थक रूप से हाई कोर्ट में जाने से पहले केस बनाने में वक़ील की सहायता में मदद करता है।

हालाँकि साक्षात्कार के दौरान हमने देखा कि ज़्यादातर क़ैदियों को ना तो निर्णय की प्रति दी गई थी और ना उसके अनुवाद की। इंदर को कोर्ट से जजमेंट की कॉपी नहीं मिली और उसके वक़ील ने उससे कॉपी उपलब्ध कराने के पैसे माँगे। अपने परिवार से किसी भी आर्थिक समर्थन के अभाव में और जेल में अर्जित किए पैसों तथा

30. फ़ैसले की अनुवादित प्रतिलिपि का प्रावधान ट्रायल कोर्ट की व्यावहारिक सुविधा के अधीन है।

31. माधव हयवदनराओ होसकोट बनाम महाराष्ट्र राज्य (1978) 3 एससीसी 544, पैराग्राफ़ 11 और 12

रुशल शर्मा को अपने माता–पिता की हत्या के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई थी। उसे अदालत के पिछले हिस्से में खड़े होने का निर्देश दिया गया था जिसके कारण वह गवाह के बयान या दलीलों को सुन नहीं पाया था। इसलिए वह मुक़दमे की कार्यवाही को समझ नहीं पाया। अपने साक्षात्कार के दौरान रुशल ने याद करते हुए कहा कि सेशन न्यायाधीश ने उसके साथ बातचीत नहीं की और जिस दिन उसके अपराध की पुष्टि हुई उसी दिन सज़ा भी सुना दी गई। हालाँकि अदालत के निर्णय में यह नोट किया गया है कि सज़ा पर बहस दोनों पक्षों द्वारा की गई थी परंतु किसी क्षमा–योग्य परिस्थिति को नोट नहीं किया गया था। सज़ा देने के समय क्षमा–योग्य और गंभीर परिस्थितियों के संतुलन की आवश्यकता के विपरीत, ट्रायल कोर्ट ने सिर्फ़ अपराध से सम्बंधित गंभीर कारकों पर विचार कर रुशल को मौत की सज़ा सुना दी। रुशल, जिसका सात जनों का परिवार था, उसका पिछला कोई आपराधिक रिकॉर्ड नहीं था और वो अपराध के समय लगभग 48 वर्ष का था। ट्रैक्टर से गिरने के कारण अपना दायाँ पैर खोने से पहले रुशल एक किसान था। अपनी गिरफ़्तारी के समय वह एक दर्ज़ी का काम कर रहा था। परंतु इन क्षमा–योग्य परिस्थितियों में से किसी पर भी ट्रायल कोर्ट ने विचार नहीं किया। साक्षात्कार के बाद रुशल की मृत्युदंड की सज़ा को हाई कोर्ट ने आजीवन कारावास में इस आधार पर बदल दिया कि उसका कोई पूर्व आपराधिक रिकॉर्ड नहीं था और यह नहीं कहा जा सकता है कि उसके सुधार की सम्भावना ख़त्म हो चुकी है।

एक पूर्व क़ैदी से वित्तीय सहायता से क़ानूनी ख़र्च का प्रबंधन करने के लिए संघर्ष करते हुए इंदर के पास निर्णय की प्रति के लिए कोई पैसे नहीं थे। इंद्रजीत सिंह बारह साल से अधिक चली सुनवाई को समझने में असमर्थ था क्योंकि उसके तर्क अंग्रेज़ी में थे। उसने अदालत के फ़ैसले के बाद फ़ैसले की एक प्रति के लिए अनुरोध किया। हालाँकि फ़ैसले की जो प्रति इन्द्रजीत को प्रदान की गई वो भी उसकी समझ से परे थी क्योंकि वो अंग्रेज़ी में थी और उसका अनुवाद उसे नहीं दिया गया। आत्माराम को अनुवाद की प्रति प्राप्त करने के अधिकार के बारे में पता था और उसने अनुवादित प्रति प्राप्त करने की कोशिश भी की परंतु उसे आवेदन का कोई जवाब नहीं मिला। लगभग सात साल से जेल में बंद और काम की अनुमति नहीं होने से, आत्माराम का ज़्यादातर समय क़ानून के अध्ययन और अदालत प्रणाली को समझने की कोशिश में निकल रहा है। आत्माराम का कहना है कि "कई बार, जो चीज़ हिंदी में कही गई है, वो अंग्रेज़ी में बहुत अलग ढंग से लिखी जाती है"।

अपीलीय कार्यवाही

अमूमन एक ट्रायल कोर्ट द्वारा दिए गए मृत्युदंड की पुष्टि के लिए उसे हाई कोर्ट में भेजा जाना चाहिए। यह दो स्तर पर अदालतों द्वारा मृत्युदंड की सज़ा पर सहमति बनाने के उद्देश्य से है ताकि सज़ा को क्रियान्वित करने से पहले त्रुटि की संभावना कम हो। सिवाय कुछ उदाहरणों को छोड़कर सुप्रीम कोर्ट के समक्ष स्वतः अपील

करने का कोई अधिकार नहीं है। ट्रायल कोर्ट के विपरीत हाई कोर्ट या सुप्रीम कोर्ट में कार्यवाही के दौरान अभियुक्तों की उपस्थिति क़ानूनन अनिवार्य नहीं है।[32]

अपीलीय चरणों में क़ैदियों को अपने मामलों की प्रगति के बारे में जानकारी का गंभीर अभाव था और अपीलीय वक़ीलों की लगभग पूर्ण अनुपस्थिति थी या उनके साथ न्यूनतम बातचीत थी।[33] यहाँ तक कि जेल अधिकारी भी शायद ही कभी उन्हें उनके मामले या किसी भी घटनाओं के बारे में बताते थे। क़ैदियों को अन्य स्रोतों, जैसे टीवी और अखबारों की रिपोर्ट से अपने केस के बारे में ख़बर मिलती। उन मामलों में भी जहाँ क़ैदी हाई कोर्ट की कार्यवाही के दौरान उपस्थित थे, उन्हें अदालत की कार्यवाही समझने में बहुत मुश्किल होती क्योंकि यह ज्यादातर अंग्रेज़ी में होती थी।

क़ानूनी कार्यवाही से विमुख होने के बावजूद हमारी मुलाक़ात उन क़ैदियों से हुई जिन्होंने हाई कोर्ट या सुप्रीम कोर्ट से एक सकारात्मक परिणाम के लिए आशा व्यक्त की थी। दूसरी ओर वो क़ैदी थे जिनका आपराधिक न्याय प्रणाली से सारा विश्वास उठ गया था और उन्होंने अपना भाग्य भगवान पर छोड़ दिया था। ऐसे उदाहरण भी दर्ज किए गए जहाँ क़ैदियों ने कहा कि जीवन और मृत्यु के बीच अनिश्चितता में निलंबित रहने या अपने परिवारों के लिए जेल में रहने की वजह से बोझ बनने की बजाय वे मर जाना पसंद करेंगे।

कोई नैतिक या क़ानूनी कठघरे में न होने के बावजूद मौत की सज़ा पाने वाले क़ैदियों के परिवारों को उनके मामलों ने बुरी तरह प्रभावित किया है। मौत की सज़ा झेल रहे क़ैदियों के

32. मृत्युदंड के मामलों में अपीलीय प्रक्रिया के विवरण के लिए, कृपया अध्याय 'क़ानूनी प्रसंग' देखें।

33. वक़ीलों के साथ बातचीत के बारे में अधिक जानकारी के लिए, अध्याय 'क़ानूनी प्रतिनिधित्व' देखें।

लोकेश को ना तो अपने सरकारी वक़ील के बारे में पता था जिसने उसका मुक़दमा हाई कोर्ट में लड़ा था और ना ही उसे कभी कार्यवाही के दौरान न्यायालय ले जाया गया था। साक्षात्कार के समय लोकेश को यह भी नहीं पता था कि किस हाई कोर्ट ने उसकी अपील पर निर्णय लिया था। उसके परिवार की जागरूकता का स्तर तो और भी ख़राब था। उन्हें हाई कोर्ट के फ़ैसले से उम्मीदें थीं जबकि मौत की सज़ा की पुष्टि पहले ही हो चुकी थी और साक्षात्कार के समय मामला सुप्रीम कोर्ट में लंबित था। इसके विपरीत शिरेश हाई कोर्ट की कार्यवाही के दौरान कुछ मौकों पर अदालत में उपस्थित था। हालाँकि, उसने ब्यौरा दिया कि कार्यवाही पूरी तरह से अंग्रेज़ी में थी इसलिए उसे कुछ समझ में नहीं आया था। उसे वहाँ बात करने की इजाज़त भी नहीं थी। शिरेश ने टिप्पणी करते हुए कहा "हमें बस वहाँ जाना होता है और चुप रहना होता है; बस अंदर जाओ, बाहर आओ, और कार्यवाही हो गई।"

परिवारों पर नतीजों का एक विस्तृत विश्लेषण अध्याय 11 'प्रभाव' में किया गया है और उनके द्वारा वर्षों तक मनोवैज्ञानिक और वित्तीय बोझ वहन करने पर विचार करना ज़रूरी है। क़ैदियों के परिवारों पर वित्तीय तनाव बढ़ जाता है, क्योंकि उन्हें अक्सर अपने घरों के प्रबंधन, क़ानूनी ख़र्च और जेल में क़ैदियों से मिलने आने के लिए अपनी सीमित संपत्ति बेचनी पड़ती है या ऋण लेना पड़ता है। जब मामले ट्रायल कोर्ट से हाई कोर्ट (आमतौर पर राज्य की राजधानी में या किसी और बड़े शहर में) चले जाते हैं तो परिवारों के लिए मामले की प्रगति के बारे में सूचित रहना बेहद मुश्किल हो जाता है। यह दबाव और भी बढ़ जाता है जब मामला सुप्रीम कोर्ट में चला जाता है। भौगोलिक दूरी के कारण मामले से भी दूरी बढ़ जाती है। दूरी का मतलब है अधिक ख़र्च, अधिक दिनों के लिए काम से छुट्टी लेना और भयभीत करने वाली स्थिति से पाला पड़ना। इस अत्यधिक लाचारी के कारण उन्हें देश के न्यायिक प्रशासन से घोर निराशा हो गई है।

उपसंहार

इस अध्याय में हमने देखा कि मृत्युदंड के मामलों में, अभियुक्त के लिए निष्पक्ष सुनवाई की कार्यविधियों का विभिन्न चरणों में कैसे नियमित रूप से उल्लंघन किया जाता है। आपराधिक न्याय प्रणाली सारा बोझ अभियोजन पक्ष पर डालती है यह दिखाने के लिए कि उसके द्वारा सब नियमों का पालन किया गया है। यह न्याय प्रणाली इस संस्था के अभिनेताओं, जैसे कि जज और बचाव पक्ष के वक़ील, पर निर्भर करती है ताकि संवैधानिक गारंटी और प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों का अनुपालन सुनिश्चित हो। लेकिन साफ़ तौर पर इन संस्थापक अभिनेताओं की योग्यता पर प्रश्न–चिन्ह लगता है जिसके कारण एक गम्भीर संकट नज़र आता है– क्या ये प्रभावी रूप से अपनी भूमिका निभा सकते हैं? इसके अलावा क़ैदी और उनके परिवार–जन, दोनों ही कार्यवाही से इतने विमुख रहते हैं कि यहाँ तक कि मृत्युदंड जैसी कठोर सज़ा में भी वो निर्णायक महत्वपूर्ण मामलों में अनजान ही रहते हैं।

क़ानूनी प्रतिनिधित्व

मृत्युदंड पाने वाले क़ैदियों के लिए उपलब्ध क़ानूनी प्रतिनिधित्व की गुणवत्ता, भारत में मौत की सज़ा के प्रशासन की निष्पक्षता का मूल्यांकन करने के लिए एक महत्वपूर्ण पैरामीटर है। यह देखते हुए कि मृत्युदंड पाए क़ैदी आर्थिक रूप से कमज़ोर और वंचित वर्ग से हैं, वक़ीलों को एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की आवश्यकता है ताकि क़ैदियों को आपराधिक न्याय प्रणाली से जो अलगाव सा महसूस होता है, उसका वो सामना कर सकें। हालाँकि हमें अपने अध्ययन में वक़ीलों के लिए सकारात्मक राय भी सुनी लेकिन वह बयान दोहरे थे जहाँ क़ैदियों और उनके परिवारों के साथ बातचीत की कमी, पैसों के लिए बार–बार माँग और बचाव पक्ष के वक़ीलों द्वारा कर्तव्यों के प्रति उपेक्षा के मामले थे। क़ैदियों और उनके परिवारों द्वारा वक़ीलों के मूल्यांकन, मामलों के परिणाम पर आधारित ना होकर उनकी वक़ीलों के साथ बातचीत पर केंद्रित थे।

क़ानूनी प्रतिनिधित्व की प्रकृति : निजी वक़ील बनाम सरकारी वक़ील

भारत में मृत्युदंड के बारे में प्रमुख धारणाओं में से एक यह है कि मृत्युदंड पाए क़ैदियों का प्रतिनिधित्व अधिकतर सरकारी वक़ीलों द्वारा किया जाता है। हमारे शोध से एक बिल्कुल अलग परिदृश्य सामने आता है। क़ैदियों से प्राप्त जानकारी के अनुसार ट्रायल कोर्ट और हाई कोर्ट में एक विशाल बहुमत उन क़ैदियों का था, जिनका प्रतिनिधित्व निजी वक़ीलों ने किया था। **(तालिका 1)**

क़ैदियों और परिवारों के साथ साक्षात्कार के दौरान इस चलन के कारणों का पता चला। हालाँकि 70.6% क़ैदी जिनका ट्रायल कोर्ट और उच्च अदालतों में निजी वक़ीलों द्वारा प्रतिनिधित्व हुआ है वो आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्ग के हैं।[1] लेकिन वे सरकारी वक़ीलों के डर से निजी वक़ीलों को लेने के लिए मजबूर हुए। उनका

1. 255 क़ैदी जिनके ट्रायल कोर्ट में निजी वक़ील थे, उनमें से 180 आर्थिक रूप से कमज़ोर थे, बाकी आर्थिक रूप से कमज़ोर नहीं थे। इसी तरह, 219 क़ैदी, जिनका हाई कोर्ट में निजी वक़ील प्रतिनिधित्व कर रहे थे उनमें से 154 आर्थिक रूप से कमज़ोर थे, जबकि 64 आर्थिक रूप से कमज़ोर नहीं थे। हाई कोर्ट में निजी वकीलों वाले 219 क़ैदियों में से एक क़ैदी की आर्थिक स्थिति पर जानकारी उपलब्ध नहीं थी।

आर्जव

फरवरी 2011 में आर्जव को अपने मालिक के बच्चों की हत्या के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई थी। निजी प्रतिनिधित्व के लिए उसकी माँ गीता बाई ने न केवल अपनी ज़मीन व अन्य सम्पत्ति बेची वरन निजी ऋण भी लिया। एक निजी वक़ील नियुक्त करने के प्रयास में उसे 80,000 रुपए से अधिक का कर्ज लेना पड़ा। इन प्रयासों के बावजूद क़ैदी को बहुत घटिया क़ानूनी प्रतिनिधित्व मिला। वक़ील ने हर अदालती हाज़िरी के दौरान उससे कुछ मिनटों से ज़्यादा बात नहीं की और जिरह के समय अभियोजन पक्ष के गवाहों से एक भी सवाल नहीं उठाया। परंतु वक़ील ने बार–बार गीता बाई से पैसों के लिए मांग की और मामले के सकारात्मक नतीजे का आश्वासन दिया।

मानना है कि निजी वक़ील उन्हें बेहतर क़ानूनी प्रतिनिधित्व प्रदान करेंगे परन्तु वास्तविकता में ऐसा हुआ हो, यह ज़रूरी नहीं था। आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार जिन्होंने ट्रायल कोर्ट या हाई कोर्ट में निजी वक़ीलों को नियुक्त किया और ख़र्च के बारे में बात की, उनसे पता चला कि निजी क़ानूनी प्रतिनिधित्व वहन करने के लिए कई ने पैसे उधार लिए या उन्हें घर, भूमि, आभूषण, पशुधन या अन्य सामान को बेच देना पड़ा। जिन परिवारों ने निजी वक़ीलों के भुगतान के लिए पैसे उधार लिए थे, वे हमारे साक्षात्कार के समय भी ऋण में थे ।

यह भी देखा गया है कि क़ैदी अपने सीमित संसाधनों की कमी के कारण ट्रायल कोर्ट के निजी क़ानूनी प्रतिनिधित्व को हटा कर हाई कोर्ट में सरकारी क़ानूनी सहायता लेते हैं। इसके विपरीत वो भी परिवार हैं जिन्होंने ट्रायल कोर्ट के सरकारी वक़ील को हटा कर हाई कोर्ट में निजी प्रतिनिधित्व को चुना। वे सरकारी वक़ीलों के ख़राब प्रदर्शन या उनके द्वारा पैसों की माँग के कारण असंतुष्ट थे। निजी वक़ीलों के बारे में ये प्रवृत्ति सुप्रीम कोर्ट के मंच पर नहीं दोहराई गई थी, जहाँ 70% से अधिक मृत्युदंड पाए क़ैदियों ने सरकारी वक़ीलों पर भरोसा किया। **(तालिका 1)**

तालिका 1:

निजी वक़ील बनाम विभिन चरणों में सरकारी कानूनी सहायता

चरण	क़ैदियों की संख्या जिन्हें सरकारी वक़ील द्वारा सहायता प्राप्त	क़ैदियों की संख्या जिन्हें निजी वक़ील द्वारा सहायता प्राप्त निजी वक़ील
ट्रायल कोर्ट	132 (36.6%)	227 (70.6%)
हाई कोर्ट	104 (32.6%)	219 (68.7%)
सुप्रीम कोर्ट	55 (71.4%)	23 (29.9%)

स्वयं का प्रतिनिधित्व

इस परियोजना के दौरान दो क़ैदियों ने बिना किसी औपचारिक क़ानूनी सहायता के अपने मामलों में ख़ुद का प्रतिनिधित्व करने के अनुभव को साझा किया। अपने साक्षात्कार के समय रूबिराम अपहरण, बलात्कार और हत्या के आरोप से जुड़े कई मामलों में फँसा हुआ था। इनमें से रूबिराम को एक मामले में मौत की सज़ा दी गई थी, जिसकी पुष्टि हाई कोर्ट के साथ सुप्रीम कोर्ट ने भी की थी। जबकि रूबिराम के लिए प्रत्येक मामले में एक सरकारी वक़ील नियुक्त किया गया था लेकिन वह उसकी गुणवत्ता से अत्यंत निराश था और सभी मामलों में ख़ुद ने ही अपना प्रतिनिधित्व करने का फ़ैसला किया था। उसके वक़ीलों ने उससे कभी बात नहीं की और बचाव के सम्बन्ध में रूबिराम की राय को नज़रंदाज़ कर दिया गया। अगर रूबिराम उस मामले में जहाँ उसकी मौत की सज़ा की पुष्टि हो गई है, कोई जानकारी देने की कोशिश करता है तो राज्य नियुक्त वक़ील उसे यह कह कर डांट देते हैं कि "क्या तुम वक़ील हो?"

कई बलात्कार और हत्या के मामलों में दोषी ठहराए गए बरुण कुमार ने भी अपने सभी मामलों में ख़ुद का प्रतिनिधित्व करने का फ़ैसला किया क्योंकि उसे डर था कि कहीं वक़ील और पुलिस साँठ–गाँठ न कर लें। उसने स्वीकार किया कि वह एक निजी वक़ील का ख़र्च शायद वहन नहीं कर सकता था फ़िर भी उसने राज्य के नियुक्त वक़ील को ना करने का फ़ैसला किया। उसका मानना था कि वहाँ भी कोई गारंटी नहीं कि वह पैसे नहीं माँगता। बरुण को प्रत्येक मामले में हर साक्ष्य की गहराई से तो समझ थी ही बल्कि भारतीय दंड संहिता 1860, दंड प्रक्रिया संहिता और भारतीय साक्ष्य संहिता के प्रावधानों के बारे में भी अच्छी तरह से जानकारी थी। उसने खुलकर यह टिप्पणी की कि जाँच तकनीकों का उसका ज्ञान, टेलीविजन पर देखी हुई एक अपराध श्रृंखला से मिला था। अपनी गिरफ़्तारी से पहले एक सरकारी स्कूल में शिक्षक होने के नाते, बरुण जेल में अपने खाली समय के दौरान गरीब और अशिक्षित क़ैदियों की सहायता करता है।

ट्रायल कोर्ट के आँकड़ेः ट्रायल कोर्ट में 117 क़ैदियों को सरकारी वक़ील आवंटित किए गए थे जबकि 15 क़ैदियों का 'प्रो बोनो' के आधार पर प्रतिनिधित्व किया गया था। 28 क़ैदी, जिनको ट्रायल कोर्ट के विभिन्न चरणों में दोनो, निजी और सरकारी वक़ील सहायता का प्रतिनिधित्व था, उनको दोनों श्रेणियों –'क़ानूनी सहायता' और 'निजी' के तहत गिना गया है। इसके अलावा, दो क़ैदियों ने ट्रायल कोर्ट में ख़ुद का प्रतिनिधित्वकिया और 12 क़ैदियों की ट्रायल कोर्ट में क़ानूनी प्रतिनिधित्व की प्रकृति से संबंधित जानकारी उपलब्ध नहीं है।

हाई कोर्ट के आंकड़ेः हाई कोर्ट में 89 क़ैदियों को सरकारी वक़ील आवंटित किए गए थे जबकि 15 क़ैदियों का 'प्रो बोनो' के आधार पर प्रतिनिधित्व किया गया। हाईकोर्ट की कार्यवाही के विभिन्न चरणों में निजी और सरकारी क़ानूनी सहायता प्रतिनिधित्व वाले छह क़ैदियों को दोनों श्रेणियों – 'क़ानूनी सहायता' और 'निजी' के तहत गिना गया है। साक्षात्कार के समय पाँच क़ैदियों के लिए हाईकोर्ट के वक़ीलों की उस समय तक नियुक्ति नहीं की गयी थी, जबकि दो क़ैदी ख़ुद का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। इसके अलावा, आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियों (रोकथाम) अधिनियम, 1987 के तहत नामित अदालतों द्वारा दोषी 13 क़ैदियों की अपील सीधे सुप्रीम कोर्ट के सामने पेश की गई थी । इसके अलावा, 36 क़ैदियों की उच्च न्यायालय में क़ानूनी प्रतिनिधित्व की प्रकृति से संबंधित जानकारी उपलब्ध नहीं है।

सुप्रीम कोर्ट के आंकड़ेः सुप्रीम कोर्ट में 44 क़ैदियों को सरकारी वक़ील आवंटित किए गए थे जबकि 11 क़ैदियों का 'प्रो बोनो' के आधार पर प्रतिनिधित्व किया गया। सुप्रीम कोर्ट की कार्यवाही के विभिन्न चरणों में निजी और साथ ही सरकारी वक़ील प्रतिनिधित्व करने वाले एक क़ैदी को दोनों श्रेणियों – 'सरकारी क़ानूनी सहायता' और 'निजी' के तहत गिना गया है। इसके अलावा, एक क़ैदी ने सुप्रीम कोर्ट के सामने अपील दायर नहीं की। इसके अतिरिक्त, 25 क़ैदियों की सुप्रीम कोर्ट में क़ानूनी प्रतिनिधित्व की प्रकृति से संबंधित जानकारी उपलब्ध नहीं है।

वक़ीलों से बातचीत

अक्सर आर्थिक परेशानियों की वजह से क़ैदी या उसके परिवार वाले अपने निजी वक़ीलों को बहुत कम भुगतान कर पाते थे। बेहद कम फीस के कारण अक्सर वक़ील का क़ैदी के साथ बहुत कम संवाद होता था। 258 क़ैदियों में से जिन्होंने अपने ट्रायल कोर्ट के वक़ीलों के साथ बातचीत के बारे में बात की, 181 (70.2%) ने बताया कि वक़ील उनके साथ मामलों पर विस्तृत चर्चा नहीं करते। इसके अलावा उन क़ैदियों में से जिन्होंने अपने ट्रायल कोर्ट वक़ील के बारे में बात की, 76.7% ने कहा कि वो अपने वक़ील से अदालत के बाहर कभी नहीं मिले और अदालत में भी उनकी मुलाक़ात बिल्कुल अन्यमनस्क सी होती थी।[2] हाई कोर्ट में 68.4% क़ैदियों ने कभी हाई कोर्ट के वक़ीलों से बात नहीं की, यहाँ तक कि उनसे कभी मुलाक़ात भी नहीं की।[3]

वक़ील के साथ अपनी बातचीत की प्रकृति का वर्णन करते हुए क़ैदियों ने अक्सर शिकायत की कि वक़ील उनके साथ मामले पर विस्तृत चर्चा करने से इन्कार कर देते हैं या दावा किया कि वक़ील उनके साथ मुख्य रूप से पैसों के लिए मुलाक़ात करते हैं। यह भी एक आम शिकायत थी कि वक़ील यह कह कर बात नहीं करते कि क़ैदियों की अपने ख़िलाफ़ मामलों में समझ नहीं है। जब जयकृष्ण ने अपने मामले की प्रगति के बारे में पूछताछ की तो उसके ट्रायल कोर्ट

2. अदालत के बाहर अपने ट्रायल कोर्ट के वक़ील से मुलाकात करने के बारे में बात करने वाले 184 क़ैदियों में से 141 कोर्ट के बाहर अपने वक़ील से नहीं मिले थे।

3. अपने हाई कोर्ट के वक़ीलों से मिलने के बारे में बात करने वाले 177 क़ैदियों में से 121 अपने हाई कोर्ट के वक़ील से कभी नहीं मिले थे।

वक़ील ने उसके प्रश्नों का उत्तर देने की बजाय झिड़क कर कहा "अपने काम से मतलब रखो"। ऐसे अनुभवों से जयकृष्ण को विश्वास हो गया कि उसका बेहतर प्रतिनिधित्व हो पाता अगर वह एक निजी वक़ील का ख़र्च उठा पाता। एक अन्य मामले में अबदल की भी अपने वक़ील के साथ इसी तरह की शिकायत थी। अबदल के सवालों का जवाब देने की बजाय वक़ील गुस्से में उससे कहता "तुम क्या वक़ील बन गए हो?" अबदल ने कहा कि उसके ट्रायल कोर्ट वक़ील ने कभी भी न्यायालय की कार्यवाही उसे नहीं समझाई और वह सोचता है कि कहीं लोक अभियोजक के साथ उसकी साँठ–गाँठ तो नहीं थी। वहाँ पर निश्चित रूप से वक़ीलों का एक छोटा सा वर्ग भी था जो क़ैदी और उनके परिवारों के साथ मामले पर विस्तृत चर्चा करता था, क़ैदियों से मामले के बारे में सुनता था और उन्हें अदालत की कार्यवाही के बारे में बराबर बता कर रखता था।

कई ऐसे भी उदाहरण थे जहाँ वक़ील क़ैदियों के परिवारों से मिलने के लिए तैयार थे लेकिन परिवार ज़िले के दूरदराज़ के गाँवों में रहते थे तथा वित्तीय बाधाओं के कारण यात्रा करने में असमर्थ थे। ये हाई कोर्ट के वक़ीलों से मिलने में और भी बड़ी बाधा थी क्योंकि परिवारों के पास शहर जाने के संसाधन नहीं थे। कुछ ट्रायल कोर्ट और हाई कोर्ट के वक़ील फोन पर भी परिवार से संवाद करते थे। सुप्रीम कोर्ट में तय या लंबित मामलों में से 44.1% क़ैदियों को उनका प्रतिनिधित्व करने वाले वक़ीलों के नाम भी नहीं पता थे।[4] ज़्यादातर परिवारों की केस के दौरान सुप्रीम कोर्ट के वक़ील से मुलाकात ही नहीं हुई थी।

वक़ील, क़ैदी और उनके परिवार के साथ बातचीत कर के महत्वपूर्ण जानकारी ले सकते हैं जो उन्हें घटना स्थल पर क़ैदी की अनुपस्थिति की दलील लिखने, किशोरावस्था के दावे या

4. जिन 103 क़ैदियों के मामलों पर निर्णय हो चुका था या वे सुप्रीम कोर्ट के समक्ष लंबित थे, उनमें से 68 ने अपने सुप्रीम कोर्ट के वक़ील के नाम जानने के बारे में बात की। इनमें से 30 क़ैदियों को सुप्रीम कोर्ट में उनका प्रतिनिधित्व करने वाले वक़ीलों के नाम नहीं पता थे।

अभियोजन साक्ष्य में विरोधाभासों को इंगित करके साबित करने में मदद करती। इसके अलावा आरोपी के साथ एक विस्तृत बातचीत से वक़ील उसकी उम्र, सामाजिक तथा आर्थिक पृष्ठभूमि, मानसिक स्वास्थ्य और अन्य प्रासंगिक सज़ा के कारकों के बारे में जानकारी इकट्ठा कर सकते हैं। यह मृत्युदंड की सज़ा कम करवाने के पक्ष में एक सार्थक मामला बनाने में मदद कर सकता है। संपर्क की कमी गंभीर रूप से मृत्युदंड पाए क़ैदियों के प्रतिनिधित्व की गुणवत्ता पर प्रभाव डालती है।

वक़ीलों के साथ इस तरह के ग़ैर संपर्क से न केवल बचाव की गुणवत्ता से समझौता होता है बल्कि इसका तात्पर्य अभियुक्तों का एक बड़े स्तर पर न्यायिक प्रक्रिया से अलगाव का होता है। वक़ील और क़ैदी या उनके परिवार के बीच संचार के अभाव का अर्थ है कि न्यायिक कार्यवाही के सम्बन्ध में उन्हें प्रायः अत्यन्त लंबी अवधि के लिए अँधेरे में रखा जाना। इस तरह के अलगाव से मृत्युदंड के मामलों पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। यह जीवन और मृत्यु के बीच की अनिश्चितता से जुड़े कष्ट को और बढ़ा देता है।[5]

क़ानूनी प्रतिनिधित्व पर राय

वक़ील और क़ैदी या उनके परिवार के बीच संपर्क के अभाव को ध्यान में रखते हुए उनकी क़ानूनी गुणवत्ता पर राय शायद ही कोई आश्चर्य की बात है। प्रमुख शिकायतें थीं– क़ैदियों और उनके परिवारों के साथ बातचीत का अभाव, बचाव पक्ष के वक़ील के रूप में अपने कर्तव्यों का अपर्याप्त प्रदर्शन, अधिक पैसों के लिए

5. अधिक जानकारी के लिए, अध्याय 7– 'मुक़दमा और अपील' देखें।

चेतक

जिस घर में चेतक घरेलू मदद की तरह काम किया करता था, उसी घर के पाँच लोगों की हत्या के लिए उसे मौत की सज़ा सुनाई गई। उसे मात्र 1500 रुपये का मासिक वेतन मिलता था। उसके मालिक अक्सर मौखिक रूप से उसके साथ दुर्व्यवहार करते थे और पूरे मासिक वेतन का भुगतान नहीं करते थे, सिर्फ़ यह सुनिश्चित करने के लिए कि वह काम नहीं छोड़े। उसकी माँ नर्मदा की आर्थिक हालत तो और भी ख़राब थी। साथी गाँव वालों के लिए छोटे–मोटे काम करने के बदले उसे जो खाना मिलता था, वह उस पर जीवित थी। वह बेहद ग़रीबी में रहती थी और उसके लिए जेल मिलने आना बहुत मुश्किल था। हालात इस बात से भी बदतर हो गए कि चेतक को काम करने या जेल में कमाने की इजाज़त नहीं थी। उसका वक़ील हर बार उससे अदालत में पैसों की माँग करता। उसने चेतक से कहा कि वह केस को तभी ठीक से लड़ेगा जब उसे पैसे दिए जाएँगे। जब भी चेतक अपने मामले के बारे में पूछने का प्रयास करता तो वक़ील उसके अनुरोध को यह कहते हुए ख़ारिज कर देता कि अदालती कार्यवाही चेतक की समझ से परे है और उसको समझाने की प्रक्रिया व्यर्थ होगी। अपने वक़ील से बेहद असंतुष्ट, उसे विश्वास था कि उसके मामले का अंजाम पूरी तरह से अलग होता अगर वह एक निजी वक़ील करने में समर्थ होता।[6]

माँग, अदालत में कार्यवाही के दौरान न आना (विशेष रूप से सज़ा की सुनवाई के दौरान) और अभियोजन पक्ष के साथ साँठ–गाँठ। सबसे महत्वपूर्ण शिकायत थी कि मामले की प्रगति के बारे में वक़ील, क़ैदी और उसके परिवार को जानकारी नहीं देते थे।

यह क़ानूनी प्रक्रिया के सभी चरणों में विद्यमान था और जहाँ वक़ील, क़ैदी या उसके परिवार से मिले, वहाँ मुख्य कारण अधिक पैसों के लिए दबाव डालना था या बरी करने के उथले आश्वासनों की पेशकश थी। क़ैदियों ने कहा कि गवाहों से कुछ विशेष सवाल पूछने, सबूत के रूप में कुछ विशेष सामग्री पेश करने या सबूत के तौर पर एक विशेष गवाही लाने के बारे में उनके सुझावों को वक़ीलों ने संलग्न नहीं किया। चम्पक, जिसका ट्राइयल कोर्ट का वक़ील निजी तौर पर नियुक्त करा गया था, को ऐसा लगा की उसके वक़ील ने उसे धोखा दिया है। चम्पक ने बताया कि वक़ील को गवाहों की सूची देने और घटना के समय अपनी अनुपस्थिति साबित करने के लिए काम का प्रमाण पत्र देने के बावजूद उसके वक़ील ने उन्हें सबूत के रूप में पेश नहीं किया। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि भले ही परिवारों ने निजी वक़ील के भुगतान के लिए अपनी हैसियत से परे ख़र्च किया हो, उनकी भावना थी कि उन्हें धोखा दिया जा रहा है। उन्हें लगा कि वक़ीलों ने उनके अल्प वित्तीय संसाधनों को ख़त्म कर दिया और उनके मामलों में वास्तव में कभी निवेश ही नहीं किया।

6. बाद में सुप्रीम कोर्ट ने चेतक की मौत की सज़ा को इस आधार पर कम कर दिया कि उसकी दया याचिका के निर्णय में अत्यधिक देरी हो गयी थी और उसने साढ़े सात साल एकांत कारावास में बिताए थे।

विदुर

विदुर को जून 2010 में एक नाबालिग के बलात्कार और हत्या के लिए मृत्युदंड मिला था। वह प्राप्त क़ानूनी प्रतिनिधित्व से संतुष्ट क़ैदियों में से एक था। उसने बताया कि हाई कोर्ट के वक़ील (निजी तौर पर नियुक्त किए गए) ने उसकी पूरी कहानी सुनी और मामले को उसे दो बार समझाया। वक़ील हर सुनवाई में आया और गवाह की गवाही के बारे में उसे विस्तार से बताया और उससे प्रतिक्रियाएं भी लीं। उसने सज़ा के फ़ैसले पर हाई कोर्ट में मृत्युदंड को आजीवन कारावास में बदलने के पक्ष पर पर्याप्त बहस की। हालाँकि वक़ील की विदुर से हाई कोर्ट द्वारा मौत की सज़ा की पुष्टि होने के बाद मुलाक़ात नहीं हुई परंतु उसने अपने बेटे से बात करने की सलाह देते हुए एक पत्र भेजा। उसका बेटा सुप्रीम कोर्ट में वक़ील है। विदुर की आपराधिक अपील फ़िलहाल सुप्रीम कोर्ट के समक्ष लंबित है ।

क़ैदियों ने सरकारी वक़ीलों के बारे में बताया कि ट्रायल कोर्ट और उच्च न्यायालय, दोनों ही स्तर पर वे अक्सर उनके परिवार से पैसे के भुगतान के लिए ज़ोर देते हैं या भुगतान न होने पर अदालत की कार्यवाही के लिए समय पर नहीं आने की धमकी देते हैं। वक़ीलों की ओर से यह गंभीर भ्रष्टाचार है। नतीजतन, आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार इन वक़ीलों को पैसे देने के लिए मजबूर हो जाते हैं या कई बार भुगतान न करने की अक्षमता के कारण उन्हें प्रतिकूल परिणाम झेलने पड़ते हैं। उरवी के सरकारी वक़ील ने 10,000 रुपए की माँग की जिसे उसकी पत्नी के रिश्तेदारों द्वारा आंशिक रूप में एकत्र किया गया था और शेष राशि उसके साथी क़ैदियों द्वारा दी गई थी। वक़ील की फीस के लिए व्यवस्था करने के इन प्रयासों के बावजूद उरवी के वक़ील का उपेक्षापूर्ण व्यवहार था, यहाँ तक कि उसने गवाहों को समक्ष लाने के सुझाव को ख़ारिज कर दिया यह कह कर कि वो तो बरी हो जाएगा।

यह भी उजागर किया जाना चाहिए कि ऐसे मामले भी थे जहाँ क़ैदियों की अपने वक़ीलों के प्रयासों के बारे में बहुत सकारात्मक राय थी। ऐसे उदाहरण भी सुनाये गए जहाँ दोनों, निजी एवं सरकारी वक़ीलों ने अत्यधिक दबाव के बावजूद अदालत में अच्छा प्रदर्शन किया। परन्तु ऐसे आख्यान अब तक प्राप्त क़ानूनी सहायता पर व्यापक असंतोष की तुलना में बहुत कम थे।

मृत्यु की प्रतीक्षा में जीवन

भारत के जेल उनमें ना क़ैद होने वालों के लिए एक अनजान और दुर्गम दुनिया है। मृत्युदंड पाने वाले क़ैदियों की स्थितियों के बारे में और भी कम जानकारी उपलब्ध है। इस अध्याय में मौत की सज़ा पाए क़ैदियों के अनुभवों और क़ैद के उन पर प्रभाव को डॉक्यूमेंट किया गया है।

साक्षात्कार में क़ैदियों ने अपनी क़ैद की गंभीर स्थितियों के बारे में बताया, जो बुनियादी सुविधाओं के अभाव और भेदभावपूर्ण बर्ताव द्वारा परिभाषित हैं। वे लम्बे समय की अवधि के लिए जेल में कठोर और अक्सर हिंसक स्थितियों का अनुभव करते हैं जो उन्हें किसी भी तरीक़े से सुधार और पुनर्वास की दिशा की ओर नहीं ले जाते। इस अध्याय में मौत की सज़ा पाने वाले क़ैदियों के प्रेरणादायी आख्यान, व्यवस्था के बावजूद न कि उसकी वजह से, जीवन को बेहतर करने की दिशा में उपलब्धियों के रूप में देखे जा सकते हैं।

ट्रायल कोर्ट द्वारा मौत की सज़ा मिलते ही भारत में मृत्युदंड पाने वाले क़ैदियों के साथ अलग बर्ताव होने लगता है, जबकि क़ानून में यह स्पष्ट है कि सभी ट्रायल कोर्ट द्वारा दिये गए मृत्युदंड के फ़ैसलों की हाई कोर्ट द्वारा पुष्टि होना आवश्यक है।[1] भारत के सुप्रीम कोर्ट ने यह कहा है कि मृत्युदंड पाए क़ैदी भी अन्य क़ैदियों के समान बर्ताव के हक़दार हैं। सुप्रीम कोर्ट का कहना है 'एक साथ खाना खाना, साथ सोना, साथ में काम करना, साथ रहना, अमूमन उनको इन्कार नहीं किया जा सकता, सिर्फ़ विशिष्ट परिस्थितियों को छोड़कर जहाँ ऐसा करना ज़रूरी हो...'[2] परंतु क़ैदियों के अनुभवों से पता चलता है कि क़ानून का नियमित रूप से उल्लंघन होता है।

मृत्युदंड की सज़ा के तहत बिताए हुए समय की अवधि

हालाँकि भारत ने पिछले 15 सालों में चार क़ैदियों को फाँसी दी है परंतु भारत में मृत्युदंड के मुद्दे पर बहस में मौत की सज़ा के तहत कारागार

1. परियोजना के दौरान साक्षात्कार किए गए सभी क़ैदियों में, आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1987 के तहत मौत की सज़ा पाए जाने वाले क़ैदी, अधिनियम की धारा 19 के तहत सीधे सुप्रीम कोर्ट में ही अपील दायर कर सकते थे ।

2. सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन और अन्य (1978) 4 एससीसी 494, पैराग्राफ़ 120

तालिका 1:

साक्षात्कार के समय, कैदियों द्वारा चरण– बद्ध कैद और मृत्यु की प्रतीक्षा में बिताए गए समय के बारे में दी गई जानकारी

कैदियों की श्रेणी	कैद की माध्यिका अवधि	मृत्यु प्रतीक्षा की माध्यिका अवधि	कैद में बिताई सबसे लम्बी अवधि
दया–याचिका ख़ारिज	16 साल 9 महीने	10 साल 5 महीने	25 साल
दया–याचिका लम्बित	12 साल	8 साल 7 महीने	21 साल 5 महीने
सुप्रीम कोर्ट में अपील लम्बित	6 साल 7 महीने	3 साल 8 महीने	21 साल 6 महीने

के अनुभवों पर ध्यान केंद्रित करना ज़रूरी है। 2000 से 2015 तक सुप्रीम कोर्ट द्वारा अत्यंत कम संख्या (73 कैदी, ट्रायल कोर्ट द्वारा मौत की सज़ा सुनाए गए कैदियों की कुल संख्या का 4.9%)[3] में मृत्युदंड फैसलों की पुष्टि होने से यह ज़रूरी हो जाता है कि भारत में मौत की सज़ा की समस्या के संदर्भ में यह देखा जाए कि कैदी अनुचित रूप से मृत्युदंड के तहत कितने साल आघात और दुःख सहते हुए रहते हैं।

यह अनुभाग, ट्रायल कोर्ट द्वारा मृत्युदंड दिये जाने के बाद कैदियों द्वारा बिताए गए कुल समय का विवरण प्रदान करता है। मौत की सज़ा पाए कैदियों की विभिन्न श्रेणियों के अनुसार इस खंड में जानकारी उपलब्ध कराई गई है। **(तालिका 1)** से स्पष्ट होता है कि हमारे अध्ययन में कैदियों ने गिरफ़्तारी से ले कर अपने साक्षात्कार के समय तक जेल में बहुत लंबी अवधि बिताई है, जिसका बड़ा भाग मृत्युदंड के तहत रहा है। एक व्यक्ति को इतने साल ऐसे अनुभवों से गुज़रना अपने आप में सज़ा का एक चरम रूप है।

कारावास की जगह

जेल अधिनियम में कहा गया है कि मृत्युदंड पाए कैदी को अन्य कैदियों से अलग रखा जाना चाहिए।[4] कई राज्य जेल नियमावली में भी इसी तरह के प्रावधानों को शामिल किया गया है।[5] हालाँकि सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया है कि मृत्युदंड पाए कैदी को अन्य कैदियों से अलग कोठरी में तब ही रखा जा सकता है जब मृत्युदंड अंततः निष्पादक बन गया हो और जब कैदी के पास उपलब्ध सभी क़ानूनी उपचार समाप्त हो गए हों।[6] इस मुकाम पर भी कैदी को 24 घंटे निगरानी में रखा जाना ज़रूरी है उसको एकांत कारावास में नहीं भेजा जा सकता। कैदी को अन्य कैदियों की दृष्टि और ध्वनि के भीतर रखा जाना चाहिए और उसे दूसरे कैदियों के साथ खाना खाने की अनुमति होनी चाहिए।

3. अधिक जानकारी के लिए, 'भारत में मृत्यु दंड : एक अवलोकन (2000–2015)' (अध्याय 12) को देखें

4. धारा 30 (2), कारागार अधिनियम, 1894

5. उदाहरण के लिए, नियम 5, अध्याय ग्स्प्, महाराष्ट्र जेल मैनुअल, 1979 में कहा गया है कि एक कैदी को मृत्युदंड की सज़ा मिलने के बाद, उसकी सज़ा की तारीख से, और हाई कोर्ट द्वारा पुष्टि की प्रतीक्षा किए बिना, उसे विशेष यार्ड में एकांत कारावास में सभी अन्य कैदियों से दूर रखा जाएगा। यह नियम सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन और अन्य (1978) 4 एससीसी 494 में सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले का सीधा उल्लंघन है।

6. सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन और अन्य (1978) 4 एससीसी 494, पैराग्राफ़ 223

तालिका 2:

तालिका 2: मृत्युदंड पाए क़ैदियों का, जिनकी दया–याचिका अस्वीकार हो गई हो, मृत्यु प्रतीक्षा और क़ैद में बिताया गया समय

क़ैदी का नाम	क़ैद में बिताया समय	मृत्यु प्रतीक्षा में बिताया समय
नविंदर सिंह	25 साल	21 साल, 1 महीने
चंपक	20 साल, 5 महीने	12 साल
चितरंजन	20 साल, 5 महीने	12 साल
मूर्थी	20 साल, 5 महीने	12 साल
लुसीअस	20 साल, 5 महीने	12 साल
दलविंदर	20 साल, 4 महीने	16 साल, 5 महीने
अलीयसगर	19 साल, 10 महीने	6 साल, 11 महीने
गिरीश कुमार	19 साल, 6 महीने	11 साल, 7 महीने
ऐनीश सिंह	19 साल	12 साल, 5 महीने
सुदिश	19 साल	10 साल, 5 महीने
नटराज	16 साल, 9 महीने	15 साल, 8 महीने
गिरिराज	16 साल, 8 महीने	15 साल, 7 महीने
गोपेश	15 साल, 7 महीने	6 साल, 11 महीने
अमरप्रीत	12 साल, 2 महीने	9 साल, 5 महीने
हानुत	12 साल, 1 महीने	9 साल, 5 महीने
पांडुराम	11 साल, 11 महीने	8 साल, 2 महीने
हरिकिशन	11 साल, 11 महीने	8 साल, 2 महीने
प्रणय सिंह	11 साल, 3 महीने	9 साल, 4 महीने
तालिब	11 साल	10 साल
चेतक	10 साल, 8 महीने	6 साल, 7 महीने
गोरख	3 साल, 4 महीने	2 साल, 8 महीने

मृत्युदंड पाए क़ैदियों के कारावास के सम्बन्ध में भारत के राज्यों और जेलों में विविध प्रथाओं को अपनाया गया है। परियोजना के दौरान हमने देखा कि कम से कम छह राज्यों में मोटे तौर पर सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले पर अमल किया गया है और मृत्युदंड पाए क़ैदियों को अन्य क़ैदियों के साथ ही आम सेल, बैरक, ब्लॉक या वार्ड में रखा गया है। इन प्रथाओं को अपनाने वाले जेलों में मृत्युदंड पाए क़ैदियों को अन्य क़ैदियों के साथ रहने और बातचीत करने की अनुमति तो है लेकिन दूसरों की तरह काम करने की अनुमति नहीं है चाहे वे ऐसा करने की इच्छा ही क्यों न रखते हों। मृत्युदंड पाए क़ैदियों ने कहा कि हालाँकि वे दूसरों के साथ रहते हैं पर फ़िर भी वे अपने जीवन की अनिश्चितता से कि वे ज़िंदा रहेंगे या नहीं, बहुत परेशान रहते हैं। इन राज्यों में भी कई असाधारण मामले हैं, जहाँ क़ैदियों को एकांत कारावास में रखा गया।

तालिका 3:

तालिका 3: मृत्युदंड पाए क़ैदियों का, जिनकी दया–याचिका लम्बित हो, मृत्यु प्रतीक्षा और क़ैद में बिताया गया समय

क़ैदी का नाम	क़ैद में बिताया समय	मृत्यु प्रतीक्षा में बिताया समय
युधिष्ठिर	21 साल, 5 महीने	12 साल, 1 महीना
गोपीचंद रविदास	21 साल, 5 महीने	12 साल, 1 महीना
गोवर्धन रविदास	21 साल, 5 महीने	12 साल, 1 महीना
महंत	21 साल, 5 महीने	12 साल, 1 महीना
चित्रभानु	19 साल, 9 महीने	16 साल, 4 महीने
निमिष	19 साल, 7 महीने	16 साल, 4 महीने
जोगिंदर सिंह	18 साल	6 साल, 6 महीने
माही	17 साल, 7 महीने	13 साल
अदिता	17 साल, 7 महीने	13 साल
कालीचरण	17 साल, 4 महीने	11 साल, 7 महीने
देवनाथ	14 साल, 6 महीने	13 साल
सजल	13 साल, 4 महीने	9 साल, 6 महीने
असद	13 साल, 1 महीने	8 साल, 3 महीने
हिल्बर्ट	12 साल, 10 महीने	8 साल, 10 महीने
अरनव	12 साल, 5 महीने	11 साल
भूपेन्दर	11 साल, 6 महीने	10 साल, 3 महीने
बाबूराव मोरे	11 साल	8 साल
नागेश मोरे	11 साल	8 साल
भैरव मोरे	11 साल	8 साल
वचन मोरे	11 साल	8 साल
मुदित मोरे	9 साल, 8 महीने	8 साल
लक्ष्मीकांत	9 साल, 6 महीने	6 साल, 3 महीने
पुरोहित	9 साल, 6 महीने	9 साल, 1 महीना
अब्रेज	9 साल, 5 महीने	6 साल, 2 महीने
अभिजीत सिंह	8 साल, 11 महीने	7 साल, 1 महीने
पहल	8 साल, 11 महीने	7 साल, 1 महीने
रिवन	8 साल, 4 महीने	7 साल, 8 महीने
रुबिराम	7 साल, 3 महीने	5 साल, 1 महीने
तपन	7 साल, 2 महीने	5 साल, 9 महीने
माहिर	6 साल, 9 महीने	5 साल, 5 महीने

एक अलग अस्तित्व

बिरसा को चार अन्य क़ैदियों के साथ एक केंद्रीय कारागार में उस बैरक में रखा गया जहाँ मृत्युदंड क़ैदियों को रखा जाता है क्योंकि उसका मामला हाई कोर्ट में लंबित है। उसे कई हत्याओं से जुड़े एक मामले में दोषी पाया गया है। बिरसा ने बताया कि उस बैरक में रहने वाले क़ैदियों को अन्य क़ैदियों से मिलने या जेल के जीवन में भाग लेने की इजाज़त नहीं है। बिरसा ने कहा कि उसे भगवान शिव में दृढ़ विश्वास है और परिवार द्वारा दिए गए भगवान शिव के एक चित्र को उसने अपने कक्ष में रखा है। उसने अपने गले में भगवान शिव के लॉकेट को दिखाया, जो वो हर समय पहने रहता है। उसने उदासी और निराशा से उस वक्त की बात की जब शिवरात्रि के दिन जेल में एक जुलूस का आयोजन किया गया लेकिन उसमें मृत्युदंड पाए क़ैदियों को भाग लेने की इजाज़त नहीं दी। उसने वर्णन किया कि किस तरह बैरक की दीवार में छोटे से छेद से मृत्युदंड पाए क़ैदियों ने एक–एक कर जुलूस की झलक देखी। बिरसा का कहना है कि शिवरात्रि का त्यौहार मनाने की यादों में उसे सिर्फ़ अपनी कोठरी को साफ़ करना और भगवान शिव की आराधना करना ही याद है।

ग्राफ़िक 1:

मृत्युदंड पाए क़ैदियों का, जिनकी अपील सुप्रीम कोर्ट में लम्बित हो, मृत्यु प्रतीक्षा और क़ैद में बिताया गया माध्यिका समय

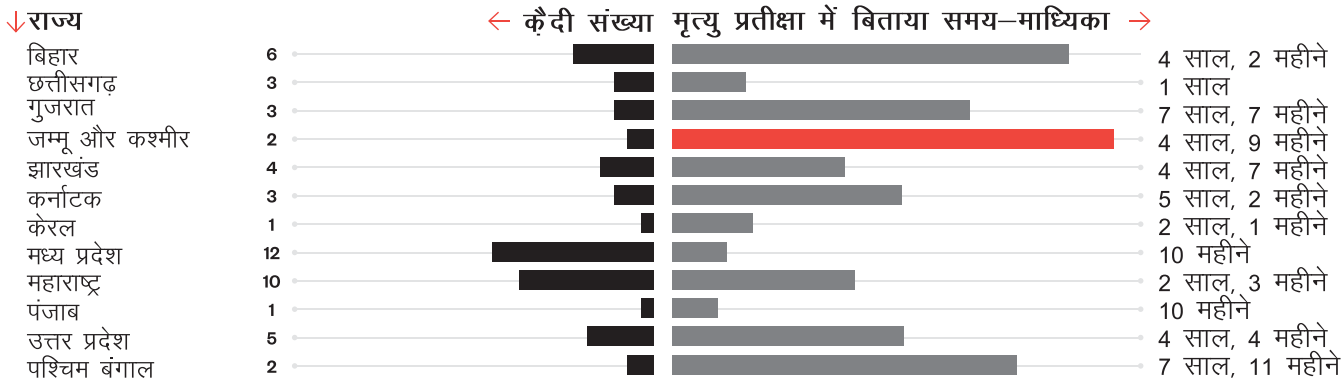

दूसरी ओर, महाराष्ट्र, केरल, कर्नाटक, झारखंड और बिहार जैसे राज्यों की जेलों में मृत्युदंड पाए क़ैदियों को अलग रखा जाता है और आम क़ैदियों के साथ बातचीत की अनुमति नहीं होती है। मृत्युदंड पाए क़ैदियों को अलग रखने के कारण उनकी बातचीत अपने जैसे क़ैदियों के साथ ही हो पाती है जो उनकी ही तरह फाँसी पर चढ़ने के तनाव से गुज़र रहे हैं। एक तरफ़ क़ैदियों ने इस गंभीर स्थिति में दूसरों के साथ समर्थन और एकजुटता बनाने के उदाहरणों का ब्यौरा दिया है तो दूसरी तरफ़ निराशा की भावना की व्याख्या की है, जो और बढ़ जाती है क्योंकि वे केवल एक दूसरे से ही मिल पाते हैं।

एकांत कारावास

मृत्युदंड पाए क़ैदियों को एकांत कारावास में रखने की प्रथा उनके मौलिक अधिकारों का पूरी तरह से उल्लंघन करती है। सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि 'एकांत कारावास से क़ैदियों पर एक अपमानजनक और अमानवीय प्रभाव पड़ता है,'

एक दिन के चार घंटे

दलित समुदाय से संबंधित 10 क़ैदियों को अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के व्यक्तियों की हत्या के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई। ट्रायल कोर्ट द्वारा मौत की सज़ा की घोषणा के बाद इन क़ैदियों को केंद्रीय कारागार के मृत्युदंड पाए क़ैदियों के बैरक में अकेले कक्ष तक सीमित कर दिया गया। क़ैदियों को एक दिन में कुल चार घंटे के लिए अपने कक्ष से बाहर जाने की अनुमति दी गई थी। सुबह छः से आठ बजे के बीच स्नान और नाश्ते के लिए, दोपहर ग्यारह और बारह के बीच भोजन के लिए और फ़िर शाम को तीन से चार बजे के बीच रात का खाना खाने के लिए। दर्शक ने बताया कि जब वह अपने कक्ष में अकेला होता है तो वह लगातार अपने मामले और उसके परिणाम के बारे में चिंतित रहता है। वह हाई कोर्ट के फ़ैसले के बारे में सोचता है कि क्या वह बरी हो जाएगा या फ़िर उसकी सज़ा बदल दी जाएगी या उसे फाँसी दी जाएगी। मौत की सज़ा की अनिश्चितता विराज के मन को भी जकड़े हुए है। वह अपनी स्थिति की भयावहता के बारे में चिंतित है और उसे आशा की कोई किरण नहीं दिख रही है। वह दिन में तीन घंटे से अधिक सो नहीं पाता है। जब वह अपने कक्ष के बाहर ले जाया जाता है तो उस दौरान भी वह किसी के साथ ना तो बैठता और न ही दूसरे क़ैदियों से बात करता है। उसके कक्ष से उस जगह का दरवाज़ा दिखता है जहाँ फाँसी दी जाएगी। यह उसे ख़ौफ़ से भर देता है। वह हर बार दरवाज़े को देखकर भय और अनिश्चितता से भर जाता है।

और क़ैदियों को केवल मृत्युदंड की सज़ा सुनाये जाने के आधार पर एकांत कारावास में रखना संविधान का उल्लंघन करना है। अदालत ने यह भी कहा है कि एकांत कारावास में क़ैदियों को अन्य क़ैदियों के साथ संपर्क से वंचित रखा जाना उनके जीवन के अधिकार का उल्लंघन है।[8]

हमारे अनुसंधान से पता चला कि जेलों में मृत्युदंड पाए क़ैदियों को एकान्त कारावास में काफी लम्बी अवधि के लिए रखा जाता है। इस तरह की सज़ा के कारण क़ैदियों को गंभीर शारीरिक और मनोवैज्ञानिक पीड़ा और यातना सहते हुए देखा गया है। मृत्युदंड के साथ एकान्त कारावास विशेष रूप से अमानवीय है। क़ैदियों के विवरण से उनके भाग्य की अनिश्चितता के कारण पीड़ा की गहराई का पता चलता है।

क़ैद की परिस्थितियाँ

मृत्युदंड की सज़ा ही क़ैदियों की सज़ा है। कारावास की कठोर परिस्थितियाँ उनकी सज़ा का हिस्सा नहीं हैं। हालाँकि क़ैदियों के अनुभवों से पता चलता है कि क़ैद की कठोर परिस्थितियाँ, मौत की सज़ा के तहत रहने वाली स्थितियों को और भी अधिक कठिन बना देती हैं क्योंकि वह लगभग एक अलग सज़ा के रूप में कार्य करती हैं। क़ैदियों ने अपनी चिंताओं का एक विस्तृत वर्णन दिया जिससे संविधान के द्वारा सभी व्यक्तियों को दी गई गरिमा के उल्लंघन के संकेत मिलते हैं। चेतावनी के संकेत हैं– बहुत कम प्रकाश और कम हवा वाले अत्यंत छोटे कक्ष, स्वच्छता के अस्वीकार्य मानक, जेल नियमावली का घोर उल्लंघन करते भोजन की गुणवत्ता में कमी, चिकित्सा सेवाओं के घटिया मानक और लगभग ग़ैर–विद्यमान मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ।

8. सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन और अन्य (1978) 4 एससीसी 494, पैराग्राफ़ 217

चकाचौंध प्रकाश के नीचे

बेतुके परिणाम देने के लिए लागू की जा रही पुराने विधायी प्रावधानों में से एक उदाहरण है– क़ैदियों के कक्षों में तेज़ बिजली के बल्ब रात भर जलाए रखना, जिसके बारे में कई क़ैदियों ने शिकायत की। कुछ राज्यों [9] की जेल नियमावली के तहत सूर्यास्त और सूर्योदय के बीच मौत की सज़ा पाने वाले क़ैदी के कक्ष के बाहर लालटेन का होना अनिवार्य था ताकि क़ैदी की गतिविधियों पर नज़र रखी जा सके। सजल और हनीश वर्णित करते हैं कि इस नियम का अनुवाद अब उनके कक्ष में रात भर बिजली के बल्ब जलाए रखना कर दिया है। इसी तरह बिरसा मुंडा ने बताया कि बल्ब का स्विच कक्ष के बाहर स्थित होता है इसलिए क़ैदी उसे बंद नहीं कर पाते और उसकी चकाचौंध रोशनी के नीचे सोने के लिए संघर्ष करते हैं। इतना ही नहीं, पूरी रात बल्ब चालू रहने के साथ–साथ गार्ड उनके कक्षों पर लगे तालों को रात भर खड़खड़ाते हैं– यह पता करने के लिए कि कहीं कोई छेड़छाड़ तो नहीं हुई।

असहनीय दुर्गंध

हनूत की दया याचिका राष्ट्रपति ने ख़ारिज कर दी थी और वह साक्षात्कार के समय 12 साल से जेल में क़ैद था। उस से पता चला कि 2010 से पहले जेल में शौचालय नहीं थे। क़ैदियों को उनके दैनिक शौचालय की ज़रूरतों के लिए कक्षों में एक स्टील टब दे दिया गया था। हनूत ने उन ख़ौफ़नाक दिनों को याद करते हुए बताया कि जब टब साफ नहीं किया जाता था तो पूरा कक्ष असहनीय दुर्गंध से भर जाता था। उस कक्ष के भीतर चाय पीने का विचार भी घिनौना था। कक्ष में दुर्गंध इतनी समा जाती थी कि टब खाली करने के बाद भी बदबू के कारण कक्ष में भोजन का सेवन करना असम्भव सा होता था। हनूत ने आगे बताया कि क़ैदी शौच के समय गोपनीयता से वंचित थे। क़ैदी सेल की सलाखों पर कुर्ता लटका दिया करते थे ताकि दूसरों को एक संकेत मिल जाए कि वो शौच कर रहे हैं। हनूत अपने को अपमानित महसूस करता है और अफसोस जताते हुए बोला, "हमें सज़ा दो लेकिन कम से कम हमारे साथ इन्सानों का सा बर्ताव तो करो"।

कारागार अधिनियम, 1894, में जेल के क़ैदियों के लिए अस्पताल की सुविधाओं से संबन्धित प्रावधान हैं। परंतु क़ैदियों के साथ बातचीत में क़ानूनी प्रावधान और उनके ख़ुद जिये गए अनुभवों के बीच के अंतर का पता चलता है। अध्ययन के दौरान क़ैदियों के उदाहरण सामने आए जिसमें उन्हें बुनियादी चिकित्सा से वंचित रखा गया। यहाँ तक कि घोर लापरवाही के उदाहरण भी सामने आए जहाँ टर्मिनल बीमारियों के निदान समय पर नहीं होने के कारण बहुत देर हो चुकी थी।

9. नियम 325, पंजाब जेल मैनुअल, 1996; नियम 13, दिल्ली जेल नियम (क़ैदियों का संरक्षण), 1988; और नियम 69, अध्याय 5, तमिलनाडु जेल नियम, 1983

औपनिवेशिक प्रथाएँ

जेल नियमावली औपनिवेशिक या बड़े पैमाने पर औपनिवेशिक प्रथाओं पर आधारित होने के कारण जेल में भोजन के समय वही पुराने ज़माने के चले आ रहे हैं। हालाँकि अलग–अलग राज्यों में यह समय थोड़ा अलग हो सकता है, परंतु आमूमन भारत में जेलों में पुरानी प्रथाओं का पालन जारी है। वे उस युग से सम्बन्ध रखती हैं जब ये नियम प्राकृतिक प्रकाश के अनुसार निर्धारित किए गए थे। उत्तर प्रदेश जेल मैनुअल इस का सबसे बड़ा उदाहरण है। उसके अनुसार, सारे साल सुबह की घंटी सूर्योदय के 45 मिनट से एक घंटे के पहले बजती है। इसके बाद क़ैदियों की गिनती की जाती है और स्नान के बाद उनको सुबह का भोजन दिया जाता है। मैनुअल में आगे लिखा है कि दोपहर का भोजन 11 बजे दिया जाये और शाम के भोजन को सर्दियों में 4:30 बजे और गर्मियों में 5:30 बजे दिया जाना चाहिए। दक्षेश वर्णित करता है कि इस तरह के अजीब भोजन के समय के कारण क़ैदियों को खाना रखने के अलावा कोई और विकल्प नहीं था। इस तरह क़ैदी वह खाना बाद में खा सकते थे, चाहे वो बेहद ठंडा ही क्यों न हो गया हो।

चिकित्सा उपचार प्राप्त करने में कठिनाई

हमें ऐसे कई उदाहरण मिले जहाँ क़ैदियों को उचित चिकित्सा उपचार के अधिकार से इन्कार किया गया। इसके कारण वे राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग में याचिका भेजने के लिए मजबूर हुए। उत्पल, जो 2004 से जेल में था, उसके कैंसर का निदान 2009 में किया गया। तथ्य यह है कि कैंसर के कारण असहनीय दर्द भी जेल अधिकारियों के लिए उसका इलाज करवाने के लिए पर्याप्त नहीं था। उसका इलाज तभी सम्भव हो पाया जब मानवाधिकार आयोग ने इस मामले में उसकी याचिका के आधार पर हस्तक्षेप किया। अब उसके कैंसर का इलाज शहर के तीन प्रमुख सरकारी अस्पतालों में किया जा रहा है ।

एड्सः गुप्त और अनुपचारित

अर्णव, एक नाबालिग के बलात्कार और हत्या के लिए दोषी ठहराए जाने पर 2002 के बाद से न्यायिक हिरासत में था और साक्षात्कार के समय उसकी दया याचिका लंबित थी। 12 साल हिरासत में बिताने के बाद सितम्बर 2014 में अर्णव के एड्स का निदान किया गया था।[10] जब उसकी बीमारी का पता चला, तब तक उसका स्वास्थ्य तेज़ी से बिगड़ चुका था और उसकी मदद के लिए कुछ ख़ास नहीं किया जा सकता था। उसकी सीडी 4 गिनती (सीडी 4 सफेद रक्त कोशिकाओं को दर्शाता है जो शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है) 55–65 कोशिकाएँ प्रति मिलीमीटर रक्त में कम हो गईं थीं और यह स्पष्ट था कि उसके पास जीने का बहुत कम समय बचा था।[11] यह प्राप्त चिकित्सा देखभाल के संबंध में घोर लापरवाही दिखाता है। सीडी 4 गिनती कम होने से बहुत पहले, ऐसे लक्षण दिखने लगते हैं जिसके कारण चिकित्सा स्टाफ के नेतृत्व में क़ैदी का 'एचईवी' के लिए परीक्षण कराना चाहिए। सच्चाई यह थी कि बीमारी का इतनी देर से पता चला था कि अर्णव के पास एड्स के उपचार से लाभान्वित होने का वास्तव में कोई मौका नहीं था। अर्णव का देहान्त सितंबर 2015 में हो गया।

प्रगति और सुधार

दत्ता महज़ 20 साल का था जब उसे एक नाबालिग लड़की के बलात्कार और हत्या के लिए गिरफ़्तार किया गया था। दत्ता बचपन में कभी स्कूल नहीं गया था। यहाँ तक की उसके परिवार में से भी कोई कभी स्कूल नहीं गया था। वो और उसका परिवार अनुसूचित जनजाति के हैं। दत्ता अपने परिवार की अल्प आय में योगदान के लिए गाँव के बाहर किसी और की भूमि पर दैनिक मजदूर के रूप में काम करने चला गया। वर्तमान में दत्ता बैरक में सबसे कम उम्र का क़ैदी है। युवा वयस्कों के लिए कोई अलग बैरक की व्यवस्था नहीं हैं। दत्ता जेल में काम करते हुए और पढ़ाई करते हुए समय बिताता है। वह रोज़ सुबह आठ बजे स्कूल जाता है और शाम को अपने बैरक में वापस आता है। दत्ता को इस बात पर बहुत गर्व है कि उसने जेल में इतना कुछ सीखा है की उसने हिन्दी में पढ़ना और लिखना सीखा है, उसने असीम संतोष के साथ बताया कि अब वह अपना नाम लिखने में सक्षम है और उसने पाँचवे मानक में दाखिले के लिए फ़ॉर्म भरा है ।

सुधार और पुनर्वास के अवसर नहीं मिलना

शिक्षा के अवसरों से इन्कार के मुद्दे पर अध्याय 4,'ट्रायल और अपील' में चर्चा की है, जिसमें सुप्रीम कोर्ट ने मौत की सज़ा के संदर्भ में सुधार पर महत्वपूर्ण ज़ोर दिया है। सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि क़ैदियों को मौत की सज़ा तभी सुनाई जा सकती है जब यह साबित हो जाए कि वे सुधार से परे हैं और वैकल्पिक सज़ा के रास्ते "बिना किसी प्रश्न के बन्द"[12] हो गए हों। इस संदर्भ में क़ैदियों की शिक्षा का बड़ा महत्व है, क्योंकि किसी भी प्रकार कि सज़ा जिसमें सुधार पर ज़ोर हो, उसमें शिक्षा का कारक होना अनिवार्य है। इसको मानते हुए 2003 के मॉडल जेल मैनुअल में, एक अध्याय जेलों में शिक्षा के लिए समर्पित है। उसमें दोनों तरह के क़ैदियों के लिए, वो जो बुनयादी रूप से साक्षर नहीं है और अन्य क़ैदियों के लिए भी शिक्षा के अवसर की आवश्यकता बताई गई है ताकि उनकी योग्यता में विकास हो सके।[13]

हमारे शोध के दौरान क़ैदियों के कई उल्लेखनीय आख्यान सामने आए, जहाँ उन्होनें मौके मिलने पर अपनी अशिक्षा या निम्न शैक्षिक स्तर को अनेक बाधाओं का सामना करते हुए पार किया। हालाँकि हमने यह भी पाया कि कुछ जेलों में मृत्युदंड की सज़ा पाए क़ैदियों को शिक्षा के अवसरों से वंचित रखा गया था। क़ैदियों द्वारा बताए गए विवरणों से ऐसा लगता है कि जेल अधिकारियों का सोचना है कि चूँकि क़ैदी को फाँसी दी जानी है, इसलिए शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने की क्या ज़रूरत है। यह दृष्टिकोण अमानवीय ही नहीं बल्कि क़ानूनी रूप से भी असमर्थनीय है। सुनील बत्रा[14] केस में

10. इस संदर्भ में, अगस्त 2010 में जारी गृह मंत्रालय द्वारा तैयार किए गए 'टेरमीनेलि' (मरणांतक) बीमार क़ैदियों के इलाज के लिए नीति पर परामर्श' प्रासंगिक है। यह राज्य सरकार और केंद्र शासित प्रदेशों को सलाह देता है कि गंभीर रूप से बीमार रोगियों ("पूर्ण एड्स" से पीड़ित रोगियों सहित) का प्रभावी प्रबंधन, जैसे कि उचित चिकित्सा सुविधाओं के प्रावधान जेल में या विशेष / सुपर–स्पेशियलिटी सरकारी अस्पताल के माध्यम से कैसे हो और आम तौर पर माफी के तौर पर इन क़ैदियों को रिहा करने पर विचार करें। पूर्ण सलाह यहाँ उपलब्ध है: <http://www.mha.nic.in/sites/upload_files/mha/files/pdf/Advpol-261110.pdf>

11. सीडी 4 की संख्या एक स्वस्थ वयस्क में 500–1,200 कोशिका प्रति मिलीमीटर रक्त के बीच होती है। चरण 3 एचआईवी संक्रमण (एड्स) के निदान में । सीडी 4 की गिनती रक्त में 200 कोशिका प्रति मिलीमीटर से कम होती है।

12. बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य (1980) 2 एससीसी 684, पैराग्राफ़ 209

13. पैराग्राफ़ 13.24, मॉडल जेल मैन्यूअल, 2003

14. सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन और अन्य (1978) 4 एससीसी 494, पैराग्राफ़ 120

अपनी गिरफ़्तारी के समय निमिश ने केवल सातवें मानक तक की पढ़ाई की थी। हालाँकि उसे स्कूल जाने में आनंद आता था परन्तु वित्तीय कठिनाइयों के कारण उसे स्कूल छोड़ना पड़ा था। उसकी बहन की शादी होने वाली थी जिसके लिए उसके पिता ने क़र्ज़ लिया था। उसका पिता अपनी मामूली कमाई के साथ ऋण नहीं चुका सकता था, इसलिए निमिष ने परिवार की आय बढ़ाने के लिए स्कूल छोड़ दिया। वह काम की तलाश में अपने पैतृक गाँव से दूसरे राज्य में चला गया। गिरफ़्तारी के समय वह केवल 20–21 साल का था। दो दशक जो उसने जेल में बिताए हैं, उसमें निमिश ने वाणिज्य में स्नातक, राजनीति विज्ञान में स्नातक और साथ ही में टूरिज्म में सर्टिफिकेट कोर्स पूरा किया है। वर्तमान में वह जेल में समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर की तैयारी कर रहा है।

सुप्रीम कोर्ट की उक्ति को ध्यान में रखते हुए मृत्युदंड पाए क़ैदियों को, जब तक उनकी सज़ा अंततः निष्पादन योग्य नहीं हो जाती, तब तक शैक्षिक सुविधाओं का लाभ उठाने के प्रयोजनों में उनके और अन्य क़ैदियों के बीच अंतर नहीं किया जा सकता। शैक्षिक अवसरों के खंडन से कई क़ैदियों की जेल में सुधार की संभावना कम हो जाती है और इस से उनके अदालत के फ़ैसले को चुनौती देने की भी क्षमता कम हो जाती है।

काम

मृत्युदंड पाए क़ैदियों ने बताया कि भारत के राज्यों के जेलों में, ट्रायल कोर्ट द्वारा मृत्युदंड मिलते ही उन्हें काम करने से मना कर दिया जाता है। जेलों में यह तर्क अपनाया जाता है कि चूँकि मौत की सज़ा पाने वाले क़ैदी 'हाई रिस्क क़ैदी' हैं, इसलिए उन्हें काम करने के अवसरों से वंचित रखने की ज़रूरत है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे स्वयं को किसी भी तरीक़े से आहत न करें। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि इस पड़ाव पर अपील के कई चरण क़ैदियों के लिए उपलब्ध हैं[15]। सुनील बत्रा[16] मामले में सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले के अनुसार उनके साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जाना चाहिए जैसा कि अन्य क़ैदियों के साथ किया जाता है। शायद स्वतंत्र भारत में सरकार द्वारा क़ैद किए जाने के बाद सुप्रीम कोर्ट के न्यायधीश बनने वाले इकलौते व्यक्ति, जस्टिस वी॰आर॰कृष्णा अय्यर, ने कहा था, 'एक मायने में मृत्युदंड पाए क़ैदियों के पास साधारण क़ैदियों की तुलना में बेहतर मौक़े होते हैं क्योंकि वे कठोर कारावास की शर्तों को पूरा नहीं कर रहे होते (जैसे काम करने की ज़रूरत)। लेकिन अगर वे अपनी इच्छा से अन्य क़ैदियों की तरह काम करना चाहें तो उन्हें ऐसा करने की अनुमति दी जानी चाहिए'।[17] उनके ऐसा करने की इच्छा के अवसरों का इन्कार, मृत्युदंड पाए क़ैदियों के अधिकारों का उल्लंघन है।

15. अधिक जानकारी के लिए अध्याय 'क़ानूनी प्रसंग' देखें।

16. सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन और अन्य (1978) 4 एससीसी 494

17. मई 1948 में जस्टिस वी आर कृष्णा आइयर को गिरफ़्तार किया गया था। उन पर आरोप था कि उन्होंने कोम्मनिस्टों को छिपने की जगह दिला कर उनकी मदद करी। उन्होंने एक महीना कन्नोर केंद्रिय कारावास (जो अब केंद्रिय कारावास, कन्नोर के नाम से जाना जाता है) में बिताया। केरल में प्रजातांत्रिक तरह से कमूनिस्ट सरकार अप्रैल 1957 में सत्ता में आई।

सीखने की तड़प

एक आतंकी अपराध के लिए मृत्युदंड पाए मोइनुद्दीन, राजनीति विज्ञान में स्नातक डिग्री पाने के लिए बहुत उत्सुक है। हालाँकि उसने 2007 में, जब उसका मामला ट्रायल कोर्ट में लंबित था, स्नातक की पढ़ाई शुरू की थी। परन्तु मौत की सज़ा सुनाए जाने के बाद उसे केंद्रीय कारागार में स्थानांतरित कर दिया गया और उसकी पढ़ाई को जेल अधिकारियों द्वारा रोक दिया गया। उसने जेलर से अनुरोध किया कि उसे अपनी पढ़ाई जारी रखने की अनुमति दी जाए, यहाँ तक कि उसने इंस्पेक्टर जनरल को भी पत्र लिखे लेकिन कोई फ़ायदा नहीं हुआ।

अनुसूचित जनजाति के बाबूराव मोरे को स्कूल जाने का कभी अवसर नहीं मिला था। उसके परिवार के पास कोई घर नहीं था। आजीविका की तलाश में वे एक जगह से दूसरी जगह, खानाबदोश जीवन जीते थे। जब उसका मामला ट्रायल कोर्ट में लंबित था तो बाबूराव मोरे ने अपनी ज़िंदगी में पहली बार पढ़ाई शुरू की। हालाँकि ट्रायल कोर्ट द्वारा मौत की सज़ा सुनाए जाने और केंद्रीय कारागार में जाने के बाद, वह अपनी पढ़ाई जारी नहीं रख पाया। उसने जेलर से कई बार अनुरोध किया कि उसे जेल में अध्ययन करने के लिए और काम करने के लिए अनुमति दी जाए। परन्तु मृत्युदंड पाए क़ैदी की हैसियत होने के कारण उसके अनुरोध को हर बार नकार दिया गया

काम पर रोक का मतलब है कि क़ैदियों को मौत की सज़ा से ध्यान हटाने के कोई अवसर ना देना। मृत्युदंड पाए क़ैदियों को अपने भाग्य की अनिश्चितता के कारण तनाव से गुज़रना पड़ता है। जेल में काम करने से उन्हें रचनात्मक ढंग से अपना समय गुज़ारने का एक अवसर मिलता है। साथ ही अपने अनिश्चित भाग्य के बारे में चिंता करने से कुछ राहत मिलती है। इस तरह के अवसर के खंडन से उनकी मृत्युदंड की व्यथा बढ़ जाती है।

परिवार से मुलाक़ातें

क़ैदियों की अत्यंत कमज़ोर आर्थिक स्थिति और उनके परिवारों की 'सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश' (जिसे अध्याय 2 में प्रलेखित किया गया है) को देखते हुए क़ैदियों के परिवारों के लिए जेल में मिलने आना एक बड़ी चुनौती है। दूर से आने के ख़र्चों के अलावा परिवार को मुलाक़ात की शर्तों का पालन करना पड़ता जिसके कारण ठीक से सम्प्रेषण ही नहीं हो पाता। मृत्युदंड पाए क़ैदियों के लिए परिवार से मुलाक़ात एक पूरी तरह से ख़ुशी का अनुभव नहीं था क्योंकि यह उन्हें पीछे छूटे हुए जीवन की याद दिलाता और अक्सर उन्हें यह महसूस होता कि वे परिवार पर एक अतिरिक्त बोझ की तरह है।

परिवार से मुलाक़ात में बाधाएँ

आर्थिक वंचितता के बावजूद कई परिवार क़ैदियों से बीच–बीच में मिलने ज़रूर आते। इस बात पर ज़बरदस्त महत्व दिया जाता की क़ैदी से मिलने खाली हाथ नहीं जाएँ और इसलिए क़ैदी के लिए खाना ले कर आने का अतिरिक्त ख़र्च होता।

काम पर प्रतिबंध

क़ैदियों ने हमें बताया कि जब तक उनके मामले ट्रायल कोर्ट में लंबित रहते, तब तक उन्हें जेल में काम करने की अनुमति दी जाती परन्तु मृत्युदंड का फ़ैसला सुनाए जाने के बाद उन्हें काम करने से रोक दिया जाता। महमूद ने अपने साक्षात्कार के समय 11 वर्ष क़ैद में बिता दिये थे जिसमें से आठ वर्ष मृत्यु की सज़ा पर थे। उसने याद करते हुए कहा कि एक विचारधीन क़ैदी के रूप में उसने जेल की कैंटीन में खानसामे के रूप में काम किया था। लेकिन मौत की सज़ा सुनाए जाने के बाद उसे काम करने की इजाज़त नहीं दी गई।[18] समर, जीव विज्ञान में स्नातक की डिग्री के लिए पढ़ाई कर रहा था जब उसे कई हत्याओं के जुर्म में गिरफ़्तार कर मौत की सज़ा सुनाई गई। एक विचारधीन क़ैदी के रूप में उसे जेल अधिकारियों द्वारा कंप्यूटर का उपयोग सिखाया गया और वह जेल में डेटा प्रविष्टि के लिए मदद भी करता था। परन्तु ट्रायल कोर्ट द्वारा मौत की सज़ा सुनाए जाने के बाद उसे इन गतिविधियों को जारी रखने की इजाज़त नहीं दी गई थी।

आवश्यक वस्तुओं के लिए काम

क़ैदी जेल में इसलिए काम करना चाहते थे ताकि टूथपेस्ट और साबुन जैसी आवश्यक वस्तुएँ ख़रीदने के लिए पैसे कमा सकें क्योंकि ये वस्तुएँ उन्हें जेल अधिकारियों द्वारा नहीं दी जा रही थी। कई क़ैदियों को परिवार से पैसा नहीं मिलता था और जेल में काम करने से भी वंचित कर दिया जाता था। उनके पास जेल में, मृत्युदंड पाए क़ैदियों के बैरेक में भी, अन्य क़ैदियों के लिए, निजी तौर पर काम करने के लिए अलावा कोई और विकल्प नहीं बचता था। वे अन्य क़ैदियों के कपड़े धोने, उनके कक्ष साफ़ करने से लेकर और अन्य छोटे काम करते। हत्या के लिए मौत की सज़ा काट रहे मधुकर, अन्य क़ैदियों के कपड़े धोकर जेल में पैसे कमाता है। वह एक बेहद ग़रीब अनुसूचित जाति वाले परिवार से है और उसे कभी स्कूल जाने का मौका नहीं मिला था। कम उम्र से ही उसने अनियमित श्रमिक के रूप में काम किया था। गिरफ़्तारी के समय उसकी उम्र केवल 18–19 साल थी। जब वह जेल में था तब उसके माता–पिता, दोनों का देहांत हो गया था। जेल में अपनी आवश्यक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए उसका एकमात्र स्रोत कपड़े धोकर कमाए पैसे ही हैं।

उन स्थितियों में जहाँ जेल बहुत दूर होता, वहाँ विशेष रूप से महिलाओं के लिए रहने और खाने का अक्सर एक मुद्दा होता था। लॉज में कमरा किराए पर लेने में असमर्थ, परिवारों के लिए रेल्वे प्लेटफार्म, बस स्टेशन और अन्य सार्वजनिक स्थलों पर खुले में रात बिताना आम था। ऐसी कठिनाइयों के कारण मुलाक़ातों की बारंबारता पर सीधा प्रभाव पड़ता। चेतक की माँ उसके क़ैद के 11 सालों में, बस एक बार ही मुलाक़ात करने आ सकी। उसकी माँ पड़ोसी राज्य में अत्यंत ग़रीबी का जीवन व्यतीत कर रही है और जिस राज्य में

18. महमूद को सुप्रीम कोर्ट द्वारा सभी आरोपों से बरी कर दिया गया है। न्यायालय ने जाँच एजेंसियों की अक्षमता पर 'पीड़ा' व्यक्त की है जिसके कारण निर्दोष व्यक्तियों को सज़ा हो जाती हैं।

राहत के लिए काम

अमोघ, कई व्यक्तियों की हत्या के लिए मृत्युदंड की सज़ा काट रहा है। उसने जेल अधिकारियों से बार–बार अनुरोध किया था कि उसे काम करने की अनुमति दी जाए, क्योंकि उसे डर था कि अपने कक्ष में दिन भर बैठ कर कहीं वह अपना मानसिक संतुलन न खो दे। अंततः उसे जेल के रसोई घर में काम करने की अनुमति दी गई और वह अपनी दिनचर्या के इस हिस्से के लिए उत्सुकता से इंतज़ार करता है। बकुलभाई ने जिसे अपहरण और हत्या के लिए मौत की सज़ा मिली थी, हमें सूचित किया कि हालाँकि जेल अधिकारियों ने मृत्युदंड पाए क़ैदियों को काम करने की अनुमति नहीं दी है, परंतु उसने बिना मुआवज़े के जेल की रसोई में काम करने की विशेष अनुमति ले ली है। उसने कहा कि उसने ऐसा सिर्फ इसलिए किया ताकि वह लगातार अपनी मौत की सज़ा के बारे में ना सोचे।

जुबिन को साक्षात्कार के समय मृत्युदंड पाए छह साल हो गए थे। उसने भी जेल में काम करने की इच्छा ज़ाहिर की थी। उसने महसूस किया कि काम करने से वह अपने परिवेश में अधिक शांति से रह सकता है। रात में चार घंटे से अधिक सोने में असमर्थ, वह अपने परिवार और अपनी सज़ा के लिए चिंता से त्रस्त रहता है। वह एक साइकिल–रिक्शा चालक था, इसलिए उसे लगता था कि शारीरिक श्रम करने के बाद उसे बेहतर नींद आएगी। इफ़राज़ का मामला हाई कोर्ट में लंबित है। उसको मृत्युदंड की सज़ा के तहत फाँसी होने का तो लगातार डर है ही, साथ में यह भी डर है कि बिना सिलाई–कढ़ाई करे, जिसमें उसका कौशल था, उसे जेल में समय काटना पड़ेगा।

चेतक सज़ा काट रहा है, वह उस राज्य की भाषा नहीं बोल पाती है। एक बार जेल में अपने बेटे से मिलने के लिए उसे पड़ोसी पर निर्भर होना पड़ा था जो उसी शहर में अपने रिश्तेदारों से मिलने के लिए जा रहे थे।[19]

आर्थिक और भौगोलिक बाधाओं के अलावा ऐसे उदाहरण भी थे जहाँ प्रतिकूल मीडिया के कारण या सामाजिक कलंक और पुलिस के प्रतिशोध के डर ने परिवार को क़ैदियों से मिलने से रोका। धनवंत के परिवार वाले धनवंत से, जिसे एक नाबालिग के बलात्कार और हत्या के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई थी, मिलने से घबराते हैं। उसके पिता ने हमें बताया कि पीड़िता के परिवार वाले शक्तिशाली और प्रभावशाली हैं। धनवंत के पिता को डर था कि अगर किसी को पता चला कि वे क़ैदी के साथ संपर्क में हैं तो उन्हें गाँव में रहने की अनुमति नहीं होगी। दूसरी तरफ़, धनवंत को इस प्रतिक्रिया का कोई इल्म नहीं था और वह परिवार से कोई मुलाक़ात ना होने के कारण जेल अधिकारियों से पूछता रहता है।

मुलाक़ात की शर्तें / तरीक़े

इस परियोजना के दौरान हमने देखा कि कम से कम तीन राज्यों द्वारा मृत्युदंड पाए क़ैदियों के लिए अलग से मुलाक़ात की व्यवस्था नहीं की गई है। उनके लिए आम जेल के क़ैदियों की ही व्यवस्था का उपयोग किया जाता है। इन व्यवस्थाओं में ज़्यादातर क़ैदियों को एक घेरे में कर के परिवारों से बात करना शामिल है। उनको

19. बाद में सुप्रीम कोर्ट ने चेतक की मौत की सज़ा को इस आधार पर कम कर दिया कि उसकी दया याचिका के निर्णय में अत्यधिक देरी हो गयी थी और उसने साढ़े सात साल एकांत कारावास में बिताए थे।

तार के जाल की दो परतों के दोनों ओर खड़ा किया जाता है और फ़िर उनको बातचीत के लिए कहा जाता है। जो स्थिति उभर कर आती है वहाँ कई क़ैदी अपने परिवार से एक साथ बात करने की कोशिश कर रहे होते हैं। वे ज़ोर–ज़ोर से बोलते हैं क्योंकि सभी को इस बात की चिंता रहती है कि कहीं ऐसा ना हो कि उनकी बात सुनी ना जाए। बहुत कम जेलों में मुलाक़ात की व्यवस्था ऐसी है, जहाँ क़ैदी और उनके परिवार वाले काँच के इधर–उधर खड़े हो कर फोन पर बात करते हैं। जेल कर्मचारियों की उपस्थिति के कारण किसी भी निजी बातचीत की गुंजाइश और भी कम हो जाती है। उन्हें इस तरीक़े से औसतन 20–30 मिनट के लिए बात करने की अनुमति दी जाती है। अक्सर ऐसी बैठक के लिए मृत्युदंड पाए क़ैदियों के परिवारों को दूर से बहुत पैसे ख़र्च करके आना पड़ता है, जिसके कारण उनकी आर्थिक वंचितता और बढ़ जाती है।

चार राज्यों में हमने नोट किया कि मौत की सज़ा पाने वाले क़ैदियों के लिए एक अलग मुलाक़ात की प्रणाली का पालन हुआ था। मृत्युदंड पाए क़ैदियों की स्थिति देखते हुए इन जेलों में क़ैदियों और परिवारों की साथ बैठने की अवधि, आम जेलों की अवधि की तुलना में बढ़ा दी गई है। इन जेलों में से एक जेल में परिवार के सदस्यों को मृत्युदंड पाए क़ैदियों के बैरक में जाने की अनुमति दी जाती है क्योंकि मुलाक़ात बैरक के द्वार पर आम क्षेत्र में आयोजित की जाती है।

हालाँकि यह काफ़ी हद तक क़ैदियों को ख़ुशी देता है कि वे ऐसे क़रीब से परिवार के सदस्यों से मिल सकते हैं परंतु दूसरी तरफ़ इसका यह मतलब भी है कि क़ैदी के लिए बैरक छोड़ कर बाहर निकलने का एक अवसर कम हो जाता है।

पारिवारिक दौरों के प्रति मिली जुली भावनाएं

हालाँकि क़ैदियों को परिवार के दौरों से सांत्वना मिलती है परंतु इस मुलाक़ात से पूरी तरह से ख़ुशी का अनुभव नहीं होता। क़ैदियों को अक्सर उदासी और अपराध बोध अनुभव होता है। उन्हें लगता है कि वे किसी भी तरह से परिवार के लिए सकारात्मक योगदान करने में सक्षम नहीं हैं बल्कि उनकी परेशानी और दुःख का कारण हैं। उन्हें लगता है कि अगर वे परिवार के सदस्यों को आने से मना कर दें तो शायद उनके परिवार के सदस्यों के दुःख कम होंगे।

इंदर के पिताजी को उससे एक बार जेल में मिलने आने के लिए लगभग 200 रुपये ख़र्च करने पड़ते हैं। इंदर परेशान हो जाता है जब उसके पिताजी उससे जेल में मिलने आते हैं। वह जानता है कि उसके पिताजी कितनी मुश्किल से यात्रा के लिए पैसा इकट्ठा कर पाते हैं। इंदर को यह भी लगता है कि पिताजी के जेल आने का कोई ख़ास तथ्य नहीं है, क्योंकि वह उन्हें मामले की स्थिति के बारे में फोन पर भी बता सकता

है। वह अपने दोस्तों को भी मिलने आने से मना करता है क्योंकि उसे लगता है कि वास्तव में कोई भी उसकी किसी तरह से मदद नहीं कर सकता। उनका मानना है कि उसकी जैसी स्थिति में सभी लोग सांत्वना के रूप में सिर्फ़ बात ही कर सकते हैं, इसके अलावा और कुछ भी नहीं किया जा सकता।

जब बालगोविंद सिंह के परिवार वाले उससे जेल में मिलने आते हैं तो उसे गहरे दुःख का एहसास होता है। वह असहाय महसूस करता है कि वह उनके विकास में कोई योगदान नहीं दे पा रहा है और उसकी पत्नी को अपने दो बच्चों को पालने के लिए कृषि मज़दूर के रूप में काम करना पड़ रहा है। लेकिन उन्हें देखकर उसे यह उम्मीद भी है कि अभी सब ख़त्म नहीं हुआ है और अंततः सब ठीक हो जाएगा।

जेल में हिंसा

जेल की अति कठोर परिस्थितियों के अलावा जिस गम्भीर मुद्दे को सम्बोधित करने की ज़रूरत है, वो है क़ैदियों पर की जा रही हिंसा। साक्षात्कार के दौरान कई मुद्दों पर चर्चा की गई। परंतु क़ैदी इस मुद्दे पर बात करने में सबसे अधिक अनिच्छुक थे क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं यह उन्हें मुसीबत में न डाल दे। उस अनिच्छा और प्रतिशोध के डर के बावजूद कई आख्यान सामने आए जिसमें साथी क़ैदियों द्वारा की जा रही हिंसा, जेल कर्मचारियों की मिलीभगत या सबसे बदतर, जेल के अधिकारियों द्वारा हिंसा के अनुभव बताए गए। यौन अपराधों और आतंकी अपराधों के लिए मौत की सज़ा पाने वाले क़ैदियों को विशेष तौर पर ऐसी हिंसा का सामना करना पड़ता है। शारीरिक हिंसा के अलावा क़ैदियों को अपने साथी क़ैदियों के हाथों अपमान और बहिष्कार के विभिन्न रूपों का अनुभव करना पड़ता है। जेल आख्यानों से ऐसा प्रतीत होता है जैसे, इन प्रथाओं को एक अस्वीकृति का संदेश भेजने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

केन्द्रीय जेल में हत्या के आरोप में मृत्युदंड की सज़ा काट रहे रचित ने हिरासत में हिंसा और अपमान का विस्तार से वर्णन किया। उसकी गिरफ़्तारी के बाद जेल में पहले ही दिन उसे और उसके सह आरोपियों को निर्वस्त्र कर सिर्फ़ अंडर वेयर में अधिकारियों ने जेल के अहाते में चलने के लिए निर्देश दिया। अगले दिन उन्हें फ़िर निर्वस्त्र कर जेल की सीमाओं के चारों ओर परेड करने के लिए कहा। उनको फ़िर उकडू बैठाया और पीटा। इस क्रूर हमले के कारण जब रचित और उसके सह आरोपी ने चेतना खो दी तो उन्हें पानी की टंकी में फेंक दिया गया और चेतना लौट आने के बाद हमला फ़िर से शुरू कर दिया। रचित ने कहा कि उन्हें जेल के बीचों–बीच यह यातना दी गई ताकि अन्य सभी क़ैदी और जेल स्टाफ हिंसा का यह तमाशा देख सकें।

मौत की सज़ा पाए क़ैदियों का मानसिक स्वास्थ्य

भारत में मानसिक स्वास्थ्य मुख्यतः उपेक्षित और ग़लत समझा जाता है। विभिन्न मानसिक स्वास्थ्य की प्रकृति और स्थितियों के परिणामों के बारे में समाज में जागरूकता का तीव्र अभाव है। इसके अलावा जिस तरीक़े से आपराधिक न्याय प्रणाली मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों पर प्रतिक्रिया करती है, वो चिंता का विषय है। विशेष रूप से सज़ा देने के दौरान, अभियुक्त के मानसिक स्वास्थ्य की जानकारी अदालतों को ना के बराबर उपलब्ध कराई जाती है। क़ैदियों के साथ सीमित या बातचीत ना होने के कारण वक़ीलों के लिए क़ैदी के मानसिक स्वास्थ्य के मूल्यांकन के लिए विशेषज्ञ की आवश्यकता को समझना मुश्किल हो जाता है।

सहज रूप से हम यह सोच सकते हैं कि जेलों के कठोर और अमानवीय वातावरण के कारण क़ैदियों के मानसिक स्वास्थ्य पर क़ैद की लंबी अवधि का गहरा असर पड़ता है। मौत की सज़ा के मामले में क़ैदियों के जीवन और मौत के बीच कई वर्षों की अनिश्चितता इस स्थिति को और भी बदतर बना देती है। हालाँकि मौत की सज़ा पाए क़ैदियों के मानसिक स्वास्थ्य पर ऐसे कारकों के प्रभाव की ठोस और सटीक समझ विकसित करने के लिए और अनुसंधान की आवश्यकता है लेकिन क़ैदियों के साथ हमारी बातचीत से यह तो पता चलता है कि ये चिंता का विषय है।

अध्ययन के दौरान हमारा पाला उन क़ैदियों से पड़ा जो संभवतः मानसिक बीमारी से पीड़ित थे। उनकी सटीक संख्या करना कई कारणवश कठिन है– जैसे कुछ क़ैदी ऐसे थे जिनके मानसिक स्वास्थ्य को औपचारिक रूप से मान्यता प्राप्त थी और उनको जेल अधिकारियों द्वारा निदान और उपचार प्रदान किया जा रहा था लेकिन फ़िर भी वे मौत की सज़ा के तहत थे। एक और वर्ग था जिनके मानसिक स्वास्थ्य का इलाज किया तो जा रहा था लेकिन यह पता नहीं था कि औपचारिक निदान किया गया था या नहीं। अंतिम वर्ग उन क़ैदियों का था जिनके परिवारों का मानना था कि वे मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं थे या जो हमारी बातचीत के दौरान तीव्र मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं से पीड़ित दिखाई दिये थे। ऐसे भी क़ैदियों के कुछ उदाहरण थे जो स्पष्ट रूप से आत्महत्या करने के विचार से ख़ुद को नुकसान पहुँचा रहे थे।

क़ैदियों के साथ हमारी बातचीत एक ही सत्र के लिए सीमित थी इसलिए इन क़ैदियों का पता लगाना मुश्किल था। अन्य क़ैदी भी मानसिक बीमारियों से पीड़ित हो सकते थे लेकिन उनके प्रकरण हमें स्पष्ट नहीं थे या उनके कोई आलेख हमारे साक्षात्कार सत्र के दौरान नहीं दिखे। इस सम्बन्ध में साधारण व्यक्ति के रूप में, साक्षात्कार के समय हमारे पास उनकी मानसिक स्थिति निर्धारित करने के लिए आवश्यक कौशल या विशेषज्ञता नहीं थी। मृत्युदंड पाए क़ैदियों के

सत्यनारायनन बलात्कार और हत्या के उस मामले में मौत की सज़ा काट रहा है जिस पर राज्य में ज़बरदस्त ध्यान आकर्षित हुआ था। उसे गिरफ़्तारी के बाद जब जेल भेजा गया तो उसे बहुत बार पीटा गया। अन्य क़ैदियों को उस पर बेरहमी से हमला करने में शायद ही किसी बहाने की ज़रूरत होती थी। हालाँकि उसने जेल के अधीक्षक से शिकायत की लेकिन उसके संरक्षण के लिए कोई कार्रवाई नहीं की गई। दो साल और दस महीने की क़ैद के बाद भी दूसरे क़ैदियों द्वारा उसे वैसे ही पीटा जाता है। जब सत्यनारायनन बाथरूम जाता है तो यह काफी आम है कि दो क़ैदी उसे पकड़ कर उस पर शारीरिक हमला करते हैं और बाद में विवाद के लिए दोषी ठहराते हैं। क़ैदियों के उसके चावल में मिट्टी फेंकने के उदाहरण सामने आए हैं, जिससे कई अवसरों पर उसका खाना खाने लायक नहीं रहा। इस तरह के बर्ताव से कोई राहत नहीं है, एक अन्यथा निडर सत्यनारायनन ने साक्षात्कार के दौरान रोते हुए अपने जेल के अनुभवों का वर्णन किया।

मानसिक स्वास्थ्य का गहरा अध्ययन करना ज़रूरी है। तभी आपराधिक न्याय प्रणाली सज़ा के सवालों पर विचार करने के लिए अधिक समग्र तरीक़े से सक्षम होगी।

मौत की सज़ा के तहत रहने का अनुभव

जेल में मृत्युदंड पाए क़ैदियों के लिए क़ैद की कठोर शर्तें और सीमित सार्थक मानव संपर्क, उनका जीवन बेहद मुश्किल बना देती हैं। इसके अलावा अपने दंडादेश के प्रति जागरूकता होने के कारण क़ैदी अपने अस्तित्व और लगातार जीवन और मौत के बीच की अनिश्चितता के बारे में चिंता करते हैं। यह चिंता समय के साथ और अधिक तीव्र हो जाती है। लम्बे इंतज़ार तथा भविष्य की अनिश्चितता के कारण, चिंता और भय, मृत्युदंड की सज़ा के अनुभव को असहनीय बना देते हैं। कई क़ैदियों ने हमें बताया कि उन्हें तुरंत फाँसी चढ़ जाना स्वीकार है बजाय मौत की सज़ा के तहत रहते हुए अपनी व्यथा बढ़ाने के।

बंसी को 2010 में मौत की सज़ा सुनाई गई। उसे इस मौत की सज़ा के तहत जीने का अनुभव बहुत कष्टदाई लगता है। वह तुरन्त फाँसी दिए जाने के लिए तैयार था और उसे आश्चर्य है कि राज्य ने सेशन कोर्ट द्वारा मृत्युदंड के फ़ैसले को निष्पादित क्यों नहीं किया गया। रंजय, जिसे एक बच्चे की हत्या के लिए मौत की सज़ा मिली थी, उसने बताया कि मृत्युदंड के तहत रहना ऐसा लगता है जैसे किसी बंदूक का निशाना लगातार सिर पर है और वह उसके चलने का इंतज़ार कर रहा है। बाबूराव मोरे, जिसे क़ैद में 11 साल हो चुके थे और जो अपनी दया याचिका पर फ़ैसले का इंतज़ार कर रहा है, चाहता है कि उसे तुरन्त फाँसी हो जाए क्योंकि उसे लगता है कि वह "अधमरा" तो पहले से ही है। एक और क़ैदी इम्तियाज़, ने मुर्गे को मारने की उपमा दी। उसने कहा कि तिल–तिल कर लंबे समय तक दर्दनाक मौत हो, इसकी बजाय तो यह बेहतर है कि एक ही बार में मार डाला जाए, "झटका तरीक़े से" (तुरंत एक वार से मार डालना)।

क़ैदियों को अपने परिवारों के बारे में गहरी चिंता थी और वह चाहते थे कि उनकी सज़ा तुरंत क्रियान्वित की जाए ताकि वह अपने परिवार पर बोझ न हों। उन्होंने आशा जताई कि उनके मर जाने पर परिवारों को अंततः एक बार फ़िर ज़िंदगी जीने का मौक़ा मिलेगा। आरिज़, जिसे हमारे साक्षात्कार के समय क़ैद में 13 से अधिक वर्ष हो गए थे, को लगता था कि मृत्युदंड के तहत वह हर दिन मर रहा है। हर रात उसे अपनी आख़िरी रात लगती है और प्रत्येक सुबह जीवन की अनिश्चितता लाती है। आरिज़ को अपने परिवार के बारे में गहरी चिंता है और जब

प्रणय सिंह को अपने चचेरे भाई के घर में आग लगाकर, परिवार के पाँच सदस्यों की हत्या के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई थी। उसके भाई के अनुसार घटना से कुछ वर्ष पूर्व प्रणय सिंह मानसिक बीमारी का शिकार हो गया था। वह अपने परिवार से अलग थलग रहने लगा था। उसने खेती करनी बंद कर दी थी और उपज नष्ट होने पर उदासीन हो गया था। घटना के बाद प्रणय सिंह ने गाँव छोड़ दिया और बारह साल के अंतराल के बाद लौट कर आया। उसकी वापसी पर प्रणय सिंह बिखरा हुआ था और उसका स्वास्थ्य बुरी तरह बिगड़ गया था। वह ज़्यादा खाना नहीं खाता और किसी से मिलता जुलता नहीं था। उसे घटना की याद नहीं थी और उसको समझ में नहीं आ रहा था कि उसका घर कैसे नष्ट हो गया था। उसे आग लगने की और उसके परिणामस्वरूप चचेरे भाई के परिवार के नष्ट होने की याद नहीं थी।

अपने साक्षात्कार के दौरान प्रणय सिंह इस बात से अनजान था कि उसे हत्या के आरोप में फंसाया गया था। वह सोचता था कि उसे हिरासत में इसलिए लिया गया है क्योंकि उसके घर की छत गिर गई थी। प्रणय सिंह को सुनवाई के लिए अदालत जाने की याद थी लेकिन मामले की विस्तृत जानकारी की नहीं। वह सोचता है कि अदालत ने उसे बरी कर दिया है। उसे विश्वास है कि वह अपनी ही इच्छा से जेल में रह रहा है, क्योंकि उसे वहाँ घर में रहने से ज़्यादा अच्छा लगता था। हालाँकि उसकी उम्र लगभग पचास वर्ष की है, उसे लगता है कि उसकी उम्र केवल 32 साल की है। इसके अलावा उसका कहना है कि जिन पाँच व्यक्तियों की मौतों के लिए उसे दोषी ठहराया गया था, वे ज़िंदा हैं। उसके परिवार से कोई भी जेल में उससे मिलने नहीं आया था और उसका संवाद सिर्फ़ जेल अधिकारियों के साथ ही है। 2010 में उसे एक प्रकार के पागलपन के साथ निदान होने के बावजूद उसकी दया याचिका भारत के राष्ट्रपति ने अस्वीकार कर दी।[20]

माहिर, जिसे अपने प्रेमी और उसके चार बच्चों की हत्या के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई थी, ने साक्षात्कार के दौरान कहा कि उसने 2010 में जेल में आत्महत्या का प्रयास किया था। 26 साल की उम्र में आत्महत्या का प्रयास करने वाले माहिर ने बताया कि उसे लगा कि उसकी सज़ा 'एक भूत की तरह' थी, क्योंकि वह उसे लगातार परेशान कर रही थी। उसका मानना था कि मृत्युदंड पाने के बाद व्यक्ति के सुधार की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती और एक बार मौत की सज़ा पाने के बाद बुरे लोग बद से बदतर हो जाते हैं। यदि आजीवन कारावास की सज़ा सुनाई जाती है तो वहाँ कुछ उम्मीद होती है कि शायद यह कुछ दिनों में पूरी हो जाएगी लेकिन जब मौत की सज़ा सुनाई जाती है तो सभी आशाएँ मर जाती हैं। कई वर्षों तक मौत की सज़ा के तहत रहने के बाद लोग भीतर से मरना शुरू हो जाते हैं। यदि किसी को फाँसी देनी है तो उसे एक ही बार में दे देनी चाहिए।

> भी वह उनके बारे में सोचता है तो खाने या सोने में असमर्थ हो जाता है। उसे लगता है कि वह अपने परिवार की मदद करने में असमर्थ है क्योंकि न तो वह आर्थिक रूप से योगदान कर पा रहा है और न किसी और तरह से। वह एक बोझ की तरह जीना नहीं चाहता है और तुरंत फाँसी चाहता है।

20. बाद में सुप्रीम कोर्ट ने प्रणय की मानसिक बीमारी के आधार पर उसकी मौत की सज़ा को कम कर दिया था। अपने फ़ैसले में, सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि गृह मंत्रालय ने प्रणय की मानसिक स्थिति के बारे में राष्ट्रपति को उसकी दया याचिका को अस्वीकार करने की सलाह देते समय अवगत नहीं कराया था।

2009 के बाद से जेल में क़ैद रहते हुए सुखी सिंह की मानसिक बीमारी का पता चला। उसके परिवार ने बताया कि कैसे उसका मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ा, कैसे वह अपने आप पर नियंत्रण खो देता, हिंसक हो जाता और अपने कपड़े फाड़ देता। अंततः उसे इलाज के लिए एक अस्पताल भेजा गया। सुखी का मानना था कि अपने मामले के बारे में चिंता ही उसकी मानसिक बीमारी का कारण है। उसका मामला लगभग पाँच साल तक हाईकोर्ट के समक्ष लंबित रहा।

जेल में आत्महत्या

चिरंजीव को 2013 में एक नाबालिग के बलात्कार और हत्या के लिए मृत्युदंड मिला था। उसने दावा किया कि वारदात के वक्त वह जुवेनाइल(नाबालिग) था। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि इस पहलू पर ट्रायल कोर्ट ने फ़ैसला देते वक़्त विचार नहीं किया था। यह भी पता नहीं है कि इस मुद्दे को चिरंजीव के वक़ील द्वारा उठाया गया था या नहीं। चिरंजीव ने दसवीं कक्षा तक पढ़ाई की थी और उसके बाद एक ईंट के भट्ठे में काम करता था। घटना के बाद उसके परिवार के सदस्यों ने चिरंजीव के साथ सभी संपर्क तोड़ दिये थे और मौत की सज़ा सुनाए जाने के बाद ही उसके परिवार वाले उससे मिलने आए और सहयोग प्रदान किया। अपने साक्षात्कार के दौरान उसने कहा कि उसे इस बारे में उम्मीद थी कि उसकी सज़ा को हाई कोर्ट द्वारा कम कर दिया जाएगा, अन्यथा वह सुप्रीम कोर्ट सहित हर उपलब्ध मंच पर, राज्यपाल से लेकर राष्ट्रपति तक जाने के लिए तैयार था। उसकी तीव्र इच्छा थी कि वह अपने परिवार के साथ रहे। हमारे साथ साक्षात्कार के कुछ ही महीने बाद चिरंजीव ने आत्महत्या कर ली। वह सिर्फ़ 20 साल का था।

हालाँकि कुछ क़ैदियों को लगता है कि परिस्थितियों की व्यथा के बावजूद वे ज़िंदा रहना पसंद करेंगे ताकि वे कम से कम अपने परिवार से कभी–कभार मिल सकें। कईयों को लगता है कि उनके जीवन कितने ही कष्टमय क्यों न हों पर बहुत अनमोल हैं। वे जेल की कठोर स्थितियों के बावजूद जीवन को पकड़ कर रखना चाहते थे। मुदित मोरे, जिसकी दया याचिका लंबित थी, उसे लगता है कि छूटने की संभावना ना होने पर भी आजीवन कारावास की सज़ा, मृत्युदंड से कहीं बेहतर है। जीवन उसके लिए अनमोल है और उसने कहा कि ज़िंदा रहने के लिए वह किसी तिनके का भी सहारा लेगा। कालीचरण, जिसे मौत की सज़ा सुनाई गई थी और जिसकी दया याचिका राष्ट्रपति के पास लंबित थी, उसने हमें बताया गया कि वह ज़िंदा रहने की गहरी इच्छा रखता है और आशा से परे उम्मीद करता था कि राष्ट्रपति द्वारा उसे माफ़ कर दिया जाएगा। वह अपने परिवार के लिए विशेष रूप से अपने बच्चों के लिए बेहद चिंतित है। यद्यपि वह क़ैद में रहकर उनके लिए बहुत कुछ कर नहीं सकता था फ़िर भी वह उनके लिए ज़िंदा रहना चाहता है।[21]

फाँसी का फंदा / तख्ता

कुछ जेलों में फाँसी के तख़्त की उपस्थिति मृत्युदंड के एक निरंतर अनुस्मारक (स्मरण) के रूप में कार्य करती है। यह क़ैदियों की अनिश्चितता की व्यथा को और बढ़ाती है। 67 जेलों में जहाँ हमने साक्षात्कार आयोजित किये थे, उनमें से 30 में फाँसी के तख़्त मौजूद थे।[22]

21. साक्षात्कार के बाद, राष्ट्रपति द्वारा कालीचरण की दया याचिका को ख़ारिज कर दिया गया। इसके बाद, हाई कोर्ट ने दया याचिका पर निर्णय लेने में अत्यधिक देरी के आधार पर उसकी मौत की सज़ा को कम कर दिया था।

22. भारत में फाँसी के साथ जेलों की सूची के लिए अध्याय 4 'कार्यक्षेत्र प्रतिवेदन' देखें।

फाँसी के तख़्त को देखना

विशेष रूप से वे उदाहरण चिंताजनक थे जहाँ जेल के अधिकारी, क़ैदियों का डर और अधिक बढ़ाने के लिए उन्हें फाँसी का तख़्त दिखाते हैं। आमेर ने बताया कि मृत्युदंड पाने वाले प्रत्येक क़ैदी को, पहली बार जेल पहुँचने पर, चीफ वार्डन फाँसी की जगह दिखाता है। यह पूछने पर कि "क्या कारण हो सकता है इस तरह के अभ्यास का", उसने बताया कि यह "मानसिक व्यथा और क़ैदियों में खौफ़ (भय) को बढ़ाने के लिए" किया जाता है। नित्यानंद, जो हत्या के लिए मौत की सज़ा काट रहा है, ने बताया कि उसे वह जगह जबरन दिखाई गई जब एक जेल अधिकारी उसे वहाँ एक "अच्छी जगह देखने" के बहाने ले गया। बलात्कार और हत्या के लिए मौत की सज़ा पाने वाले क़ैदी, सत्यनारायनन ने खुलासा किया कि जेल अधिकारी ने उसे मोबाइल फोन पर फाँसी के तख़्त की तस्वीर दिखाई। कुछ पदाधिकारियों ने उस से अपनी 'आख़िरी इच्छा' के बतौर फाँसी देने वाले व्यक्ति के रूप में उनके नाम देने के लिए कहा, क्योंकि राज्य सरकार की ओर से फाँसी का फंदा लगाने वाले अधिकारी, 20,000/– (बीस हज़ार रुपए) के इनाम के हक़दार थे।

जैसे–जैसे मामले जटिल आपराधिक न्याय प्रणाली से गुज़रते हैं, वैसे–वैसे फाँसी के तख़्त की उपस्थिति क़ैदियों की व्यथा को और बढ़ाती है। जबकि कुछ क़ैदियों ने उस इमारत को देखा था जिसमें फाँसी का तख़्त स्थित था तो दूसरों ने उसकी उपस्थिति के बारे में सिर्फ़ सुना ही था। हर्षल, जो अन्य मौत की सज़ा वाले क़ैदियों के साथ 'गुनाह खाने' में क़ैद था, उसने फाँसी के तख़्त को पास से देखा था। उसने उसे एक 'बड़े गोल' के अंदर 'छोटे गोल' के रूप में वर्णित किया है। फाँसी को देखने या यहाँ तक कि जिस इमारत में वो फाँसी का तख़्त स्थित है उसे देखने का अनुभव, क़ैदियों को मानसिक आघात पहुँचता है। यह उनके अंधकारमय भविष्य का प्रतीक है। आब्रेज़ ने कहा कि हालाँकि उसने केवल फाँसी के तख़्त तक जाने का बंद गेट देखा था परंतु अगर उसने कभी फाँसी के तख़्त को देख लिया तो वह सदमे से मर ही जाएगा। 'फाँसी घर' को देखने पर अपनी प्रतिक्रियाओं का वर्णन करते हुए क्षितिज ने कहा कि वह उसे ऐसे भय से भर देता है कि उसे अत्महत्या करने का मन करता है।

निष्कर्ष

यह स्पष्ट है कि सिर्फ मृत्युदंड ही सज़ा नहीं है। कठोर जेल की स्थितियाँ और अमानवीय व्यवहार, क़ैदियों को मौत की सज़ा का अभिन्न अंग लगती है। मौत की सज़ा पाए क़ैदियों के सम्बन्ध में भारत के जेलों को सुधार और पुनर्वास के संस्थानों के रूप में देखने का मामला बेहद कमज़ोर है। मौत की सज़ा पाने वाले क़ैदियों के प्रति, जेलों की समझ सिर्फ ये है कि ये फाँसी का इंतज़ार कर रहे व्यक्ति हैं। उनके संभावित भविष्य के लिए कोई सार्थक निवेश नहीं होता है। मृत्युदंड के बहुत से मामलों को अपीलीय अदालतों द्वारा रद्द किए जाने को देखते हुए जेल में इन क़ैदियों को बुनियादी अवसरों से दूर रखना अनुचित है। ट्रायल से पूर्व की हिंसा, निर्णायक तंत्र की विमुखता और क़ैद की अमानवीय परिस्थितियों से यह स्पष्ट है कि आपराधिक न्याय प्रणाली के विभिन्न बिन्दुओं का किसी व्यक्ति को मृत्युदंड देने के दंडात्मक पहलुओं में अधिक योगदान है। जावेद ने इस यात्रा के हिंसक स्वरूप पर टिप्पणी करते हुए कहा, "बस, मुझे मार डालो। मुझे बार–बार यातना मत दो"।

दया की माँग

दया की याचिका, मृत्युदंड पाए क़ैदी के लिए आख़िरी सहारा होता है क्योंकि इस याचिका की अस्वीकृति, फाँसी से पहले का आख़िरी कदम है। कार्यपालिका द्वारा क्षमा देने की यह प्रक्रिया, न्यायालय की अपराध और सज़ा निर्धारण करने की प्रक्रिया से अलग है। क्षमा दान प्रदान करते समय 'कार्यपालिका', अदालत के फ़ैसले से बंधे नहीं है और मामले की व्यापक जाँच संचालित कर सकते हैं। परन्तु दया याचिकाएं तय करते समय कार्यपालिका द्वारा अपनाई गई प्रक्रियाओं के संबंध में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। दया याचिकाओं पर निर्णय लेने की विधि में अस्पष्टता होने के कारण मृत्युदंड पाए क़ैदियों की चिंता और डर का एहसास बढ़ जाता है। दया याचिकाओं पर फ़ैसला कब किया जाएगा या कौन से तर्क निर्णय लेने के लिए प्रासंगिक होंगे, इसके बारे में कोई ज्ञान न होने के कारण, क़ैदियों को इस चरण में मौत की संभावना का सामना पहले के चरणों से कहीं अधिक गहनता के साथ करना पड़ता है।

यह अध्याय ऐसे क़ैदियों के अनुभवों पर प्रकाश डालना चाहता है जिनकी दया याचिकाएं लंबित हैं या जिन्हें ख़ारिज कर दिया गया है। इस परियोजना के दौरान 51 क़ैदी ऐसे थे जिनकी दया याचिकाओं को या तो अंततः राष्ट्रपति ने ख़ारिज कर दिया था या फ़िर वो इसके नतीजे का इंतज़ार कर रहे थे। क्षमादान की माँग के अधिकार के बावजूद अधिकांश क़ैदियों को क्षमादान के लिए अपनी याचिका का मसौदा तैयार करते समय कोई क़ानूनी सहायता नहीं मिलती। हर जेल में दया याचिका का एक मानक प्रपत्र है जो क़ैदियों की ओर से भेजा जाता है। अदालत की कार्यवाही के विपरीत जहाँ क़ैदियों को मौखिक प्रस्तुतियाँ देने का अवसर प्राप्त होता है, राष्ट्रपति या राज्यपाल के समक्ष सुनवाई एक पूर्ण विवेक की बात है। इन हालातों में भी ज़्यादातर क़ैदी अपनी सज़ा कम करवाने के अंतिम प्रयास में भी अपनी दया याचिका की विषय वस्तु से अनजान रहते हैं।

इन क़ैदियों के वर्णन मृत्युदंड के प्रशासन के आख़िरी चरण में, अत्यधिक अनिश्चितता की एक झलक प्रदान करते हैं। क़ैदियों द्वारा साझा की गई एक आम चिंता यह थी कि उनकी दया याचिका पर निर्णय बाहरी कारकों से प्रभावित हो सकता था जैसे, जन भावना या सरकार का झुकाव। इस संदर्भ में यह नज़रंदाज़ करना असंभव हो जाता है कि न्यायिक और कार्यकारी प्रक्रियाओं में मनमानी होना आम है।

भारतीय संविधान के तहत दया का अधिकार

इतिहास में क्षमा करने की ताक़त शाही विशेषाधिकार के तहत सम्राट में निहित देखी गई थी। तब क्षमा करने की शक्तियों का अंतर्निहित आधार उनका विश्वास था कि राजा के पास दैवीय शक्तियाँ थीं और वह अपनी प्रजा पर 'रहम'

का उपयोग कर सकता था। यह दर्शन समय के साथ बदल गया है। एक संवैधानिक लोकतंत्र में क्षमादान देने के पीछे के तर्क अब जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित मामलों में न्यायिक त्रुटि से सुरक्षित करने के लिए बदल दिये गए हैं।[1] भारत में संविधान के अनुछेद 161 और 72 में क्रमशः क्षमा प्रदान करने की शक्ति राज्य के राज्यपाल और राष्ट्रपति में निहित है। इन शक्तियों की विषय वस्तु को समझाते हुए सुप्रीम कोर्ट ने यह कहा है कि संविधान के तहत क्षमा याचना करने की शक्ति "न तो दया की बात है और न ही विशेषाधिकार की बात, बल्कि यह एक महत्वपूर्ण संवैधानिक जिम्मेदारी है जो देश के लोगों ने सर्वोच्च अधिकारी को दी है'[2]। इसके अलावा इन शक्तियों की प्रकृति शासनात्मक है और उनके उपयोग से न्यायिक रिकॉर्ड में परिवर्तन या संशोधन नहीं हो सकता।[3] इसका मतलब यह है कि जब भी दया याचिका को स्वीकार किया जाता है और एक क़ैदी की मृत्युदंड की सज़ा कम कर दी जाती है या क़ैदी को पूरी तरह से माफ़ कर दिया जाता है फ़िर भी अदालतों के निर्णय के अनुसार वह अपराध का दोषी ही माना जाता है।

क़हर सिंह और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि राष्ट्रपति को सबूतों पर पुनर्विचार करने और आरोपी की मासूमियत या अपराध के संबंध में अदालतों से अलग निष्कर्ष पर पहुँचने का अधिकार है।[4] कोर्ट ने यह भी स्पष्ट किया कि किसी याचिकाकर्ता को राष्ट्रपति के समक्ष सुनवाई का अधिकार नहीं है। हालाँकि अगर राष्ट्रपति का मानना है कि एक सुनवाई "दया याचिका के उचित और प्रभावी निपटान" के लिए आवश्यक है तो यह पार्टियों को दी जा सकती है।[5] सुप्रीम कोर्ट ने क्षमा प्रदान करने के लिए दिशानिर्देश फ्रेम करने से इन्कार कर दिया है, क्योंकि यह राष्ट्रपति या राज्यपाल

1. क़हर सिंह और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (1989) 1 एससीसी 204, पैराग्राफ़ 7

2. शत्रुघ्न चौहान और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (2014) 3 एससीसी 1, पैराग्राफ़ 19

3. शत्रुघ्न चौहान और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (2014) 3 एससीसी 1, पैराग्राफ़ 10

4. (1989) 1 एससीसी 204, पैराग्राफ़ 10

5. (1989) 1 एससीसी 204, पैराग्राफ़ 15

में एक निहित संवैधानिक शक्ति है। लेकिन सुप्रीम कोर्ट ने यह लगातार कहा है के अनुछेद 72 और 161 के तहत, कार्यकारी निर्णय, सीमित न्यायिक समीक्षा के आधीन हैं। हालाँकि अदालत आमतौर पर इन फ़ैसलों की योग्यता पर हस्तक्षेप नहीं करतीं लेकिन वे यह समीक्षा करने का अधिकार रखतीं हैं कि सभी प्रासंगिक सामग्री को देखा गया है या नहीं और कहीं बदनियति से शक्ति का प्रयोग तो नहीं हुआ।[6]

यह देखते हुए कि संविधान के अनुछेद 21 में 'अपनी अंतिम सांस तक हर क़ैदी को जीवन का अधिकार है", शत्रुघ्न चौहान और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय ने यह कहा कि दया याचिकाओं की जाँच करते समय राष्ट्रपति और राज्यपाल को "बीच में आने वाली परिस्थितियों" जो मृत्युदंड की अंतिम पुष्टि के बाद आती हैं, उन पर ज़रूर विचार करना चाहिए। जिन परिस्थितियों पर अदालतों द्वारा विचार–विमर्श किया गया है, उनमें दया याचिका के निपटाने में देरी, पागलपन, एकांत कारावास, असावधानी के कारण निर्णय का ग़लत घोषित होना और कुछ क़ानूनी ख़ामियाँ हैं।[7]

दया याचिकाओं के निराकरण में विलम्ब

मृत्युदंड के निष्पादन में देरी को सज़ा कम करने के आधार का मुद्दा, भारत में 1980 के दशक के बाद से लगातार मुक़दमे बाज़ी का मामला रहा है। त्रिवेणीबेन बनाम गुजरात राज्य मामले में सुप्रीम कोर्ट की पाँच न्यायाधीश पीठ ने स्पष्ट किया कि न्यायिक प्रक्रिया समाप्त होने के बाद ही विलंब पर विचार होना चाहिए।[8] इसलिए केवल कार्यपालिका द्वारा दया याचिकाओं को निपटाने में देरी पर विचार किया जाएगा और

6. एपुरु सुधाकर बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य (2006) 8 एससीसी 161, पैराग्राफ़ 34; शत्रुघ्न चौहान और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (2014) 3 एससीसी 1, पैराग्राफ़ 25

7. शत्रुघ्न चौहान और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (2014) 3 एससीसी 1, पैराग्राफ़ 61, 78 और 87; नवनीत कौर बनाम राज्य (2014) 7 एससीसी 264, पैराग्राफ़ 12; अजय कुमार पाल बनाम भारत संघ और (2015) 2 एससीसी 478, पैराग्राफ़ 11

8. (1989) 1 एससीसी 678, पैराग्राफ़ 16 और 17

अगर देरी अदालतों में हो तो उस देरी को नहीं माना जाएगा।

एक आकस्मिक परिस्थिति के रूप में देरी पर व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने शत्रुघ्न चौहान के मामले में उल्लेख किया कि मृत्युदंड मामलों के निष्पादन में 'अनावश्यक, अत्यधिक और अनुचित विलंब' समविधान के अनुछेद 21 के तहत जीवन के अधिकार का हनन है।[9] वी श्रीहरण@ मुरुगन बनाम भारत संघ और अन्य मामले में सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया है कि देरी के मामलों में पीड़ित करने के अलावा इसका अमानवीय प्रभाव भी माना गया है और इसलिए मृत्युदंड पाए क़ैदियों को वास्तविक नुकसान को साबित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।[10]

क्षमादान की माँग करने वाले क़ैदियों की चिंताओं में से एक है– उनकी दया याचिकाओं के परिणाम के बारे में अनिश्चितता। क़ैदियों ने अक्सर टिप्पणी की कि जैसे–जैसे उनके मामले अपील प्रक्रिया में आगे बढ़ते हैं वैसे–वैसे एक सकारात्मक परिणाम के लिए उनकी अपेक्षाएँ कम होती जाती हैं। दया याचिका प्रस्तुत करने के बाद वह हर बीतते दिन के साथ, ख़ुद को आशा और भय के बीच झूलता पाते हैं। एक अन्य पहलू जो क्षमादान की याचिका पर निर्णय के इंतज़ार को सबसे अलग करता है वह है, दया की कार्यवाही में अस्पष्टता और क़ैदियों का अपनी ही याचिकाओं पर लगभग कोई नियंत्रण नहीं। यह अदालत की कार्यवाही से विपरीत है जो इसके अपेक्षाकृत पारदर्शी होती है।

गिरीश कुमार ने अदालतों द्वारा फ़ैसले के इंतज़ार के अनुभव को राष्ट्रपति के फ़ैसले के इंतज़ार से बहुत अलग बताया। उसने कहा कि जिस व्यक्ति ने इसको अनुभव किया है केवल वही इसको समझ सकता है। गिरीश को एक परिवार के चार सदस्यों की हत्या के लिए दोषी ठहराया गया

9. (2014) 3 एससीसी 1, पैराग्राफ़ 61

10. (2014) 2 एससीसी 242, पैराग्राफ़ 19 और 21

और मौत की सज़ा सुनाई गई। इसके बाद हाई कोर्ट ने उसकी मौत की सज़ा की पुष्टि की और सुप्रीम कोर्ट ने एक साल बाद उस फ़ैसले को बरक़रार रखा। हालाँकि गिरीश ने सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले के दो सप्ताह के भीतर ही राष्ट्रपति के समक्ष अपनी दया याचिका दायर कर दी थी लेकिन उसे साढ़े नौ साल के बाद ख़ारिज कर दिया गया। ज़िला कारागार में जहाँ गिरीश को मुक़दमे के दौरान रखा गया था, उसकी पत्नी शुरू–शुरू में उससे मुलाक़ात करने आती थी परंतु केंद्रीय कारागार में ले जाने के बाद उससे मिलने कोई नहीं आया। अपनी दया याचिका में गिरीश ने उल्लेख किया कि उसे अपने ट्रायल कोर्ट के फ़ैसले के बाद से एकांत कारावास में रखा गया। परिवार से भेंट के बारे में पूछे जाने पर गिरीश ने बुद्बुदाकर कहा कि जब अन्य क़ैदियों के पास मिलने वाले आते हैं तो उसे समझ में नहीं आता कि वह अपना समय कैसे बिताए। वह कामना करता है कि वह फ़िर से अपने परिवार से मिल पाए। लगभग एक दशक तक उसकी दया याचिका पर कोई फ़ैसला नहीं होने पर गिरीश ने अफसोस जताया कि 'कल' का इंतज़ार अपने आप में एक सज़ा है और वह ईश्वर में अपने विश्वास के कारण ही जीवित है। जिस समय तक हमने गिरीश के साथ साक्षात्कार किया था वह पंद्रह साल और छह महीने जेल में बिता चुका था।[11]

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के तहत अनुरोध दाखिल करने के अलावा अपनी दया याचिका की स्थिति जानने का और कोई तरीका नहीं है। सुप्रीम कोर्ट की तीन न्यायाधीश पीठ द्वारा मृत्युदंड की सज़ा के फ़ैसले की पुष्टि के बाद गोपीचंद रविदास, गोवर्धन रविदास, महंत और युधिष्ठिर अभी तक मार्च 2003 में दी अपनी दया याचिका के परिणाम का इंतज़ार कर रहे हैं। उच्च जाति समुदाय से संबंधित 35 लोगों के

11. उसकी दया याचिका के निपटारे में साढ़े नौ साल की अस्पष्टीकृत देरी को देखते हुए, सुप्रीम कोर्ट ने उसकी मौत की सज़ा को आजीवन कारावास की सज़ा में बदल दिया।

नरसंहार के लिए दोषी ठहराए गए क़ैदियों ने कहा कि उन्होंने जेल अधिकारियों द्वारा तैयार दया याचिका पर बिना यह जाने कि उसमें क्या लिखा है, हस्ताक्षर कर दिये। आज तक क़ैदियों को राज्य या केंद्र सरकार से उनकी दया याचिकाओं पर किसी निर्णय के संबंध में कोई भी सूचना नहीं मिली है। बिना पैरोल के 21 साल और पाँच महीने जेल में बिता कर क़ैदियों का मानना है कि 'मृत्युदंड की सज़ा की व्यथा और कष्ट सहते रहने से तो अब मर जाना बेहतर होगा'।

दया याचिकाओं पर निर्णय लेने में लंबे समय तक देरी, सज़ा को कम करवाने का आधार हो सकता है। अदालतों का मानना है कि ऐसी व्यथा और 'फाँसी के डरावने विचार' जो मृत्युदंड पाए क़ैदी झेलते हैं, का प्रभाव उनके मानसिक, भावनात्मक और शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़ता है।[12] कार्यपालिका द्वारा दिया गया यह कष्ट, पीड़ित क़ैदी को अनुछेद 21 के तहत जीवन का अधिकार आह्वान करने का अधिकार देता है।

कई क़ैदियों ने वेदना व्यक्त की और कहा कि उनकी दया याचिकाओं पर अगर पिछले राष्ट्रपतियों द्वारा विचार किया गया होता तो एक सकारात्मक परिणाम की संभावना हो सकती थी। ऐसा ही एक क़ैदी पण्डुराम था जिसे बलात्कार और हत्या के लिए, अपने सह–अभियुक्त के साथ मृत्युदंड की सज़ा सुनाई गई थी। यह देखते हुए कि पिछले राष्ट्रपति ने मृत्युदंड पाए कई क़ैदियों को क्षमा प्रदान की थी, पण्डुराम को आशा थी कि उसकी दया याचिका भी स्वीकार कर ली जाएगी। लेकिन जब अगले राष्ट्रपति ने कार्य ग्रहण किया तो उसको परिणाम के बारे में चिंता फ़िर से सताने लगी। जेल में बीते अपने समय का वर्णन करते हुए उसने कहा कि विचाराधीन क़ैदी के रूप में वह एक ईंट के भट्टे में काम किया करता था और उसकी प्रति दिन 10 रुपए की कमाई थी। परन्तु ट्रायल कोर्ट के फ़ैसले के बाद उसे केन्द्रीय जेल में कर दिया गया, जहाँ मृत्युदंड पाए क़ैदियों को काम नहीं

12. एडिगा अनम्मा बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य (1974) 4 एससीसी 443, पैराग्राफ़ 15

करने दिया जाता था। उसने कहा कि वह अपना समय प्रार्थना, टेलीविजन देखना और मौत की सज़ा पाए अन्य क़ैदियों से बात कर के बिताता है। जेल में लगभग 12 साल बिताकर, जिसमें से आठ साल और दो महीने मृत्यु पंक्ति पर थे, पण्डुराम अपने हर दिन को "मौत ही की तरह" वर्णित करता है।[13]

पागलपन

दया याचिका तय करते समय पागलपन, मानसिक बीमारी या स्किज़ोफ़्रेनिया जैसे आकस्मिक कारकों पर विचार करना चाहिए।[14] राज्य जेल नियमावली के अनुसार एक जेल अधीक्षक को अगर क़ैदी में पागलपन के लक्षण दिखते हैं तो उसे फाँसी रुकवा देनी चाहिए।[15] सुप्रीम कोर्ट ने शत्रुघ्न चौहान मामले के निर्णय में अनुमति दी कि ऐसे क़ैदियों की मृत्युदंड की सज़ा को आजीवन कारावास में बदला जा सकता है।

ऐनेश सिंह को आतंकवादी एवं विघटनकारी गतिविधियों निवारण अधिनियम (टाडा), 1987 के तहत दोषी ठहराया गया और मौत की सज़ा सुनाई गई। वह अपनी युवावस्था में एक अच्छा छात्र था जिसे अपने उच्च अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति प्राप्त हुई थी। अपनी गिरफ़्तारी से पहले वह विश्वविद्यालय में व्याख्याता के रूप में काम कर रहा था। उसकी पत्नी सिमरन ने खुलासा किया कि 10 साल के कारावास के बाद यह स्पष्ट हो गया है कि उसका मानसिक स्वास्थ्य तेज़ी से बिगड़ रहा है। उसे क़ैद की इस लंबी अवधि के दौरान एकांत कारावास में सार्थक मानव संपर्क से वंचित रखा गया था। सिमरन किसी दूसरे देश चली गई थी और साल में उससे कुछ ही बार मिल सकती थी। हर बार जब वह उससे मिलती तो उसे महसूस होता कि वह और शांत तथा अन्यमनस्क होता जा रहा है।

13. सुप्रीम कोर्ट ने राष्ट्रपति द्वारा उसकी दया याचिका के निपटारे के छह साल की अत्यधिक देरी के आधार पर उसकी सज़ा को कम कर दिया।

14. शत्रुघ्न चौहान और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (2014) 3 एससीसी 1, पैराग्राफ़ 86 और 87

15. नियम 642, बिहार जेल मैन्यूअल, 2012; नियम 16, अध्याय 42, महाराष्ट्र जेल मैन्यूअल, 1979; नियम 488, मध्य प्रदेश जेल मैन्यूअल, 1968।

मानसिक बीमारी के लक्षण दिखने के पाँच साल बाद ऐनेश को स्थाई रूप से इलाज के लिए एक मानसिक स्वास्थ्य सुविधा में स्थानांतरित किया गया। मानसिक स्वास्थ्य सुविधा में उसे मनोरोग देखभाल के लिए रखे जाने के बावजूद राष्ट्रपति ने उसकी दया याचिका ख़ारिज कर दी।

दया याचिका के दौरान के अनुभव

सामान्यतया क्षमादान के लिए याचिका क़ैदी के अपराध बोध के अंतिम न्यायिक निर्णय के बाद दायर की जाती है। इसलिए एक क़ैदी का दया याचिका प्रस्तुत करने की प्रक्रिया में शामिल होना बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह उसके लिए अपनी सज़ा कम करवाने का अंतिम अवसर हो सकता है। ज़्यादातर जेलों की नियमावली के अनुसार एक बार जब सुप्रीम कोर्ट द्वारा क़ैदी के मामले की बर्ख़ास्तगी के संबंध में नोटिस प्राप्त हो जाता है तब अधीक्षक को तुरंत मृत्युदंड पाए क़ैदी को सूचित करना चाहिए। फ़िर अगर वह इच्छा रखता है तो दया याचिका सात दिनों के भीतर प्रस्तुत कर देनी चाहिए।[16]

इन नियमावलियों में सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसलों के ख़िलाफ़ समीक्षा याचिका या उपचारात्मक याचिका दाखिल करने के लिए प्रावधान नहीं है, और इसलिए इनमें संशोधन किया जाना चाहिए।[17] ऐसे प्रावधानों के अभाव में जेल अधिकारी क़ैदियों को सलाह देते हैं कि वे सुप्रीम कोर्ट द्वारा मौत की सज़ा की पुष्टि के बाद अपनी दया याचिकाएं खुद ही फाइल करें। परन्तु अधिकांश क़ैदी ऐसा नहीं करते और समीक्षा के विकल्प नहीं अपनाते। सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया है कि एक क़ैदी को फाँसी देने से पहले यह जानना ज़रूरी है कि उसने सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले की समीक्षा करने के अधिकार को समाप्त कर दिया है या राज्यपाल और राष्ट्रपति के समक्ष दया याचिकाएँ फाइल करने के लिए उसे उचित समय दिया गया है, नहीं तो यह अनुछेद 21 के तहत जीवन के अधिकार का उल्लंघन होगा।[18]

संविधान के तहत दया पाने के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए शत्रुघ्न चौहान मामले में सुप्रीम कोर्ट ने मृत्युदंड मामलों में पालन किए

16. नियम 15, अध्याय 11, दिल्ली जेल मैन्यूअल, 200; नियम 640, बिहार जेल मैन्यूअल, 2012; नियम 13, अध्याय 42, महाराष्ट्र जेल मैन्यूअल, 1979, नियम 548, हरियाणा जेल मैन्यूअल; नियम 384, उत्तर प्रदेश जेल मैन्यूअल; नियम 913, तमिल नाड जेल मैन्यूअल 1983।

17. अपील की प्रक्रिया पर अधिक जानकारी के लिए अध्याय 'कानूनी प्रसंग' को देखें।

18. शबनम बनाम भारत संघ और अन्य (2015) 6 एससीसी, 702, पैराग्राफ़ 12.3.

जाने वाले दिशानिर्देश पारित किये। अदालत ने कहा कि हर क़ैदी को उसकी अन्तिम साँस तक क़ानूनी सहायता का अधिकार है। जेल के अधीक्षक को क़ैदी की दया याचिका की अस्वीकृति के बारे में निकटतम क़ानूनी सहायता केंद्र में सूचित करने का निर्देश दिया। अदालत ने यह भी निर्देश दिया कि सभी प्रासंगिक सामग्री जैसे ट्रायल कोर्ट के काग़ज़ात और सभी अदालतों के फ़ैसले की प्रतियां एक सप्ताह के भीतर क़ैदी को दी जानी चाहिए ताकि उसे दया याचिका का मसौदा तैयार करने में सहायता मिले।[19]

क़ानूनन इन सुरक्षा उपायों की पृष्ठभूमि में इस अनुभाग में क़ैदियों की दया याचिकाएं प्रस्तुत करते हुए समय के अनुभवों का आकलन किया गया है। यह भी आँकने की कोशिश की गई है कि अन्तिम क्षमा याचिका देने में उनकी कितनी भागीदारी रही है। 38 क़ैदियों में से जिन्होने अपनी दया याचिका की स्थिति के बारे में बात की, 33 को पता था कि उनकी याचिका राष्ट्रपति या राज्यपाल के पास लंबित थी या उसे ख़ारिज कर दिया गया था। सुप्रीम कोर्ट की पुष्टि के बाद से कितना समय बीत चुका है, इसके बारे में थोड़ी बहुत जागरूकता थी लेकिन उनकी दया याचिका में क्या लिखा था, उसके बारे में क़ैदी काफ़ी हद तक अंजान थे। अंग्रेज़ी में तैयार की गईं दया याचिकाओं के मसौदे क़ैदियों की समझ से बाहर थे। दया याचिका तैयार करते समय क़ानूनी सहायता की बात करने वाले 27 क़ैदियों में से 19 ने इस प्रक्रिया के दौरान कोई वक़ील न होने की बात कही। ऐसे क़ैदियों के लिए दया याचिकाओं का मसौदा जेल अधिकारियों, साथी क़ैदियों या ख़ुद क़ैदियों द्वारा तैयार किया गया था।

इस संदर्भ में, चेतक की कहानी उस आपराधिक न्याय प्रणाली का प्रतिनिधित्व करती है, जिसका सामना अंतिम चरण में इन क़ैदियों को करना पड़ता है। चेतक को अपने मालिक के परिवार के चार सदस्यों और उनकी घरेलू सेविका की हत्या के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई थी। ट्रायल और अपील प्रक्रिया में उसका प्रतिनिधित्व राज्य से नियुक्त वक़ीलों ने किया। चेतक को अपने

19. (2014) 3 एससीसी 1, पैराग्राफ़ 241.2 और 241.11

आख़िरी पड़ाव

निमिश को अपने सह–अभियुक्तों के साथ एक परिवार के छह सदस्यों और उनकी घरेलू सेविका की हत्या के लिए मृत्युदंड की सज़ा सुनाई गई। एक साल और पाँच महीने बाद हाई कोर्ट ने उनकी मौत की सज़ा की पुष्टि की, जिसे बाद में सुप्रीम कोर्ट द्वारा भी सही ठहराया गया। अपनी समीक्षा याचिका की बर्ख़ास्तगी के बाद निमिश ने कुछ अपराधिक वक़ीलों (क्रिमिनल लॉयर) से अपनी दया याचिका तैयार करने में क़ानूनी सहायता लेने की कोशिश की लेकिन उसके प्रयासों का कोई परिणाम नहीं निकला। अपने अधिकारों को समझने के लिए उसने जेल के अधिकारियों से जेल मैनुअल की कॉपी भी देने के लिए कहा। परन्तु उसकी माँगों से अधिकारी खफ़ा हो गए और अंतत उसकी माँगों को खारिज कर दिया गया। इन सब कारणों ने उसे अपनी दया याचिका ख़ुद ही तैयार करने के लिए मजबूर कर दिया। 10 वर्षों तक अपनी दया याचिका के परिणाम के बारे में कोई ख़बर प्राप्त न होने पर निमिश ने सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005, के तहत एक आवेदन पत्र अपनी याचिका की स्थिति के सम्बन्ध में जानकारी की माँग करते हुए राष्ट्रपति सचिवालय में भेजा। जवाब मिलने पर उसे यह पता चला कि उसकी याचिका राज्यपाल के समक्ष अब भी लम्बित है। राज्य सरकार के साथ पूछताछ करने पर निमिश को मालूम पड़ा कि उसकी दया याचिका राज्यपाल द्वारा पहले ही ख़ारिज कर दी गई थी, लेकिन उसके बारे में कोई दस्तावेज़ उपलब्ध नहीं थे क्योंकि वे संबन्धित विभाग में आग में नष्ट हो गए थे। दया याचिका प्रस्तुत करने के 14 साल बाद भी, निमिश उसके परिणाम प्राप्त करने का इंतज़ार कर रहा है।

क़ैद में लगभग बीस वर्षों में निमिश ने अपनी माध्यमिक शिक्षा पूरी की, कला और वाणिज्य में स्नातक की डिग्री प्राप्त की और अपने साक्षात्कार के समय कला में स्नातकोत्तर की डिग्री के लिए पढ़ाई कर रहा था। वह कभी–कभी सोचता है कि क्या राष्ट्रपति उसकी दया याचिका तय करते समय उसके कारागार में अपने आप को शिक्षित करने के प्रयासों पर विचार करेंगे? वह उम्मीद करता है कि क्या किसी दिन वह 'वापस समाज में जा पाएगा और गरिमा से जीवन व्यतीत करेगा'।

वक़ीलों से मामले पर चर्चा करने का अवसर नहीं मिला। सुप्रीम कोर्ट द्वारा उसकी मौत की सज़ा की पुष्टि के बाद चेतक को अपने शेष क़ानूनी उपचारों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। इसके बाद उसे अपने साथी क़ैदियों द्वारा सूचित किया गया कि वह क्षमादान की माँग कर सकता है। सुप्रीम कोर्ट द्वारा पुष्टि के एक माह बाद उसकी दया याचिकाओं को राष्ट्रपति और राज्यपाल के पास जेल के माध्यम से भेजा गया। परन्तु चेतक को उसकी दया याचिकाओं की तैयारी के लिए कोई क़ानूनी सहायता प्राप्त नहीं हुई और न ही उसके पास उसकी कोई प्रतियाँ थी। राष्ट्रपति ने तीन साल बाद चेतक की क्षमा के अनुरोध को इंकार कर दिया परन्तु जेल के पास अस्वीकृति के बारे में संचार उसके भी तीन महीने बाद आया। इस दौरान चेतक को एक स्थानीय हिन्दी अख़बार के माध्यम से अपनी दया याचिका की अस्वीकृति के बारे में पता चल गया था। उसकी दया याचिका की अस्वीकृति के बारे में जेल को सूचित करते पत्र की प्रति उसे प्रदान नहीं की गई।

आपराधिक न्याय प्रणाली के साथ अपने अनुभव के बारे में पूछे जाने पर चेतक ने निराशा व्यक्त

इसके विपरीत जोगिंदर सिंह ने ट्रायल कोर्ट द्वारा लगाए गए मृत्युदंड को चुनौती देने का प्रयास नहीं किया क्योंकि उसने 'मृत्यु की अवधारणा' से समझौता कर लिया था। जोगिंदर सिंह को एक राजनैतिक हस्ती की हत्या के साथ 17 अन्य लोगों की मौत के लिए दोषी ठहराया गया था। इस घटना की पुनर्गणना करते हुए जोगिंदर ने कहा कि उसका जनता को नुकसान पहुंचाने का इरादा नहीं था। उसे विश्वास था कि सत्तारूढ़ दल द्वारा अनगिनत निर्दोष व्यक्तियों का नरसंहार उकसा कर करवाया गया था, जिस के लिए वह बदला लेना चाहता था। ट्रायल कोर्ट द्वारा मौत की सज़ा सुनाए जाने के बाद उसने हाई कोर्ट में अपील दायर करने से इन्कार कर दिया। परन्तु हाई कोर्ट द्वारा मौत की सज़ा की अनिवार्य पुष्टि की प्रक्रिया के तहत जोगिंदर के मृत्युदंड की पुष्टि की गई। इसके बाद जोगिंदर ने सुप्रीम कोर्ट में भी अपील दायर करने से इन्कार कर दिया। उसका मानना था कि 'उसने वही किया जो वह करना चाहता था और राज्य जो करना चाहता है वो करे'। जबकि जोगिंदर ने क्षमादान के लिए याचिका दायर करने से इन्कार कर दिया लेकिन उसकी ओर से एक धार्मिक संगठन द्वारा दया याचिका दाख़िल कर दी गई है।

मोहम्मद अफ़जल गुरु की फाँसी का ज़िक्र करते हुए जोगिंदर सोचता है कि उसकी फाँसी पर भी जनता हँगामा कर सकती है, इसलिए उसके मामले में गुप्त रूप से फाँसी दिया जाना एक वास्तविक संभावना है। एक पल की सूचना पर फाँसी दिए जाने की तैयारी के बारे में जोगिंदर का कहना है कि उसने फाँसी के तख़्त और उसके सेल के बीच की दूरी नाप ली है। फाँसी का तख़्त सोलह कदम की दूरी पर है।

करते हुए कहा कि इस जटिल प्रक्रिया में वह अकेला था, "उसकी आवाज़ सुनने वाला कोई नहीं था ओर न कोई उसका साथ देने वाला था"। जब उसे अपनी दया याचिका की अस्वीकृति के बारे में पता चला तो अपने अनिश्चित भाग्य के लिए डर से त्रसित, उसकी रातों की नींद उड़ गई। इसके बाद उसकी दया याचिका के निपटान में तीन साल और 10 महीने की देरी को देखते हुए सुप्रीम कोर्ट ने उसकी सज़ा कम कर दी। अदालत ने यह भी ध्यान में रखा कि चेतक को मृत्युदंड की सज़ा सुनाए जाने के बाद उसे छह साल और सात महीने तक एकांत कारावास में रखा गया था।

मृत्यु–अधिपत्र /फाँसी का आदेश

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 धारा 413 और 414 प्रदान करते हैं कि जब हाई कोर्ट द्वारा मौत की सज़ा की पुष्टि पारित हो जाती है, तो उसके आदेश प्राप्त करने पर सत्र न्यायालय सज़ा के लिए वारंट (अधिपत्र) जारी करेगा। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 414 प्रदान करती है कि अगर दोषी सुप्रीम कोर्ट के समक्ष चुनौती रखना चाहता है तो हाई कोर्ट सज़ा के निष्पादन को स्थगित कर देगा। पीपल्ज़ यून्यन फ़ोर डेमक्रैटिक राइट्स बनाम भारत संघ में इलाहाबाद हाई कोर्ट ने मौत की सज़ा के निष्पादन के लिए आदेश जारी[20]

20. जनहित याचिका संख्या 57810 (2014) (हाई कोर्ट, इलाहाबाद न्यायपालिका)

करते हुए सुरक्षा व्यवस्था को रेखांकित किया, जिसकी बाद में सुप्रीम कोर्ट ने शबनम बनाम भारत संघ और अन्य[21] में पुष्टि की। सुप्रीम कोर्ट ने यह वारंट ज़ारी करने से पहले क़ैदी को पर्याप्त सूचना दी जाने की बात रखी ताकि वह अपने वक़ीलों से परामर्श कर सके और कार्यवाही में उसका प्रतिनिधित्व हो सके। अनिश्चितता से बचने के लिए वारंट में सही तारीख, समय और निष्पादन का स्थान निर्दिष्ट होना चाहिए। अदालत ने यह भी कहा कि वारंट जारी करने और निष्पादन की तारीख़ के बीच क़ैदी को क़ानूनी उपचार को आगे बढ़ाने और उसके परिवार के सदस्यों के साथ एक अंतिम बैठक के लिए पर्याप्त समय उपलब्ध होना चाहिए। क़ैदियों को मृत्युदंड वारंट की एक प्रति और उन मामलों में जहाँ क़ैदी वक़ील वहन करने में असमर्थ है, क़ानूनी सहायता प्रदान की जानी चाहिए।[22]

साक्षात्कार के दौरान क़ैदियों ने मृत्युदंड वॉरंट जारी होने के बाद के अपने अनुभवों को साझा किया। एक तीव्र विवरण में गोरख ने याद करते हुए बताया की उसके हिसाब से जो उसका आख़री भोजन होना था वो था दाल, रोटी, सब्जी। फाँसी दिए जाने के निर्धारित समय से बस कुछ घ्ंटे पूर्व उसे बताया गया कि उसकी फाँसी स्थगित कर दी गयी है। गोरख को उसकी पाँच बेटियों के कत्ल के जुर्म में अपराधी ठहराया गया था, और सर्वोच्च न्यायलय द्वारा विशेष अनुमति याचिका (स्पेशल लीव पटिशन) बिना सुनवायी (*inlimine*) के ही ख़ारीज कर दी गयी थी। ततपश्चात, जेल अधिकारियों द्वारा उसकी तरफ़ से दायर करी गयी दया याचिका में कहा गया कि वह एक मानसिक बीमारी झेल रहा है जिसके लिए उसका इलाज चल रहा है। इसके बावजूद डेढ साल बाद राष्ट्रपति ने उसकी दया याचिका ख़ारीज कर दी। गोरख की फाँसी की तारीख़ सेशंस अदालत ने मृत्युदंड वॉरंट में बिना उसके वक़ील की उपस्थिति के तय कर दी। जिस जेल में गौरख क़ैद था, उसके अधिकारियों ने बड़ी मुश्किलें उठा कर उसके परिवार वालों से आख़िरी मुलाक़ात सम्भव करवायी। अचंबित कर

21. (2015) 6 एससीसी 702, पैराग्राफ़ 21

22. (2015) 6 एससीसी 702, पैराग्राफ़ 21

देने वाली बात यह है की अपने भाई और बेटों के साथ इस आख़िरी मुलाक़ात में ही इस बात का पता चला। आख़िर के चंद घंटो में, जहाँ एक तरफ़ उसे मृत्यु का डर था, वहीं दूसरी तरफ़ वह इस बात का भी आभारी था की मृत्यु पंक्ति पर उसकी कठिन परिक्षा का भी जल्द अंत हो जाएगा।

गोरख की फाँसी पर स्थगन एक जनहित याचिका से हासिल किया गया। यह याचिका एक मानवाधिकार संगठन द्वारा दायर करी गयी थी, जिसे निर्धारित फाँसी से एक दिन पहले ही अख़बार की रिपोर्टों से इस बारे में जानकारी मिली थी। गोरख की फाँसी जिस दिन होने वाली थी उस दिन सुप्रीम कोर्ट ने स्थगन आर्डर जारी किया। कोर्ट ने कहा कि स्थगन इसलिए जारी किया गया क्योंकि राष्ट्रपति द्वारा दया याचिका की अस्वीकृति के संबंध में गोरख को कोई आधिकारिक संवाद प्राप्त नहीं हुआ था। उसे कोई भी क़ानूनी उपाय ढूँढने के लिए पर्याप्त समय नहीं दिया गया था। इस मुक़दमे के मद्देनजर सुप्रीम कोर्ट ने उसकी मौत की सज़ा को कम कर दिया और टिप्पणी करते हुआ कहा कि गोरख की दया याचिका में उल्लेख किया है कि मुक़दमे के दौरान से ही वह मानसिक बीमारी से ग्रस्त है परंतु गृह मंत्रालय इस महत्वपूर्ण पहलू पर विचार करने में विफल रहा।

हरिकिशन के वर्णनों में मृत्युदंड मिलने के बाद गंभीर अन्याय होने पर प्रकाश डाला गया है। बलात्कार और हत्या के लिए मौत की सज़ा पाने वाले हरिकिशन ने राष्ट्रपति के समक्ष दया याचिका दायर की जिसे छह साल बाद ख़ारिज कर दिया गया। इसके बाद उसे जेल में टेलीविजन के समाचार के माध्यम से अपने मृत्यु–अधिपत्र (फाँसी का आदेश) जारी होने के बारे में पता चला। हरिकिशन ने बयान दिया कि एक वरिष्ठ जेल अधिकारी ने जेल में उससे मुलाक़ात की लेकिन उसने मृत्यु–अधिपत्र के बारे में उसे सूचित नहीं किया। जबकि उसके मृत्यु–अधिपत्र की ख़बर सुर्खियों में थीं लेकिन हरिकिशन को उस के सम्बन्ध में कोई

आधिकारिक संवाद नहीं मिला था। किसी भी सरकारी संचार की अनुपस्थिति पर ताज्जुब करते हुए हरिकिशन ने इस बात पर टिप्पणी की कि, "मुझे अपनी फाँसी की तारीख के बारे में जानकारी नहीं थी लेकिन मीडिया को इस बारे में सब पता था"। स्थानीय पुलिस ने निर्धारित तिथि से महज़ छह दिन पूर्व उसके परिजनों को फाँसी की जानकारी दी। मीडिया द्वारा चित्रित राक्षसी छवि से परेशान होकर हरिकिशन ने अपने गुप्तांगों को फर्श की टाइल के टुकड़े से काट दिया। उसने राज्य द्वारा अंजाम दिए जाने से पहले ख़ुद को मारने के प्रयास में ऐसा किया। अपने साक्षात्कार के दौरान उन्होंने साझा किया कि अदालत में अपनी बेगुनाही साबित करने में उसकी अक्षमता के कारण उसे बेहद मानसिक पीड़ा सहनी पड़ी और उसने आत्महत्या करने की कोशिश की।

हरिकिशन की फाँसी से एक दिन पहले सुप्रीम कोर्ट ने दया याचिका की अस्वीकृति में साढ़े छः साल की अत्यधिक देरी को चुनौती देते हुए रिट याचिका से फाँसी पर स्थगन लगा दिया। कार्यपालिका की देरी को देखते हुए सुप्रीम कोर्ट को अंततः उसकी मौत की सज़ा को कम करना पड़ा।

उपसंहार

दया की माँग करते इन क़ैदियों के वर्णनों से हमें उनके भय, पीड़ा और निराशा के बारे में पता चलता है, जो प्रक्रिया की पारदर्शिता न होने के कारण और बढ़ जाते हैं। प्रणाली की जटिलताओं की कम समझ या बिल्कुल भी समझ न होने के कारण क़ैदी अपने आप को निराशा और भविष्य की सोच के बीच पाते हैं। जबकि क़ानून सभी क़ैदियों को उनकी अंतिम साँस तक जीवन के अधिकार की गारंटी देता है, इस अध्याय में चर्चित गंभीर प्रक्रियात्मक अनियमितताओं से पता चलता है कि क़ानूनी प्रणाली पूरी तरह से यह सुनिश्चित करने में बिल्कुल विफल रहती है। जानकारी के अभाव के कारण हर बार जब बैरकों के विशाल लोहे के दरवाज़े खुलते हैं तो क़ैदी इस सोच में पड़ जाते हैं कि कहीं अंत तो नहीं आ गया। दया याचिका की अस्वीकृति के बाद भी आपराधिक न्याय प्रणाली की बुनियादी क्षमताओं के अभाव के कारण क़ैदी अपनी क़ानूनी लड़ाई के अंत तक उपलब्ध संवैधानिक विकल्पों का पता नहीं लगा पाते। 'अंतिम समय' की तैयारी के पहले इस तरह के अमानवीय व्यवहार के कारण राज्य द्वारा संवैधानिक सुरक्षा के भव्य इरादे खोखले नज़र आते हैं।

प्रभाव

अपराध और सज़ा के मुद्दे पर बहस में ध्यान हमेशा पीड़ितों और उनके परिवारों पर रहता है। एक समाज के रूप में हमने वास्तव में कभी गंभीरता से इस पर ध्यान नहीं दिया कि अपराधियों के परिवारों को क्या सामना करना पड़ता है जब उनका एक सदस्य आपराधिक न्याय प्रणाली के साथ संघर्ष की स्थिति में हो।

एक तरफ पीड़ितों और उनके परिवारों[1] को मुआवज़े उपलब्ध कराने के लिए आपराधिक न्याय प्रणाली के भीतर एक आंदोलन किया गया है, परंतु जिन अपराधियों को राज्य द्वारा सज़ा के फ़ैसले का परिणाम सहन करना पड़ रहा है, उन अपराधियों के परिवारों को क्षतिपूर्ति देने के बारे में चर्चा का पूर्ण अभाव है। इससे एक बहुत ही कठिन नैतिक प्रश्न उठता है—क्या राज्य क़ैदियों के परिवार के जीवन को अनदेखा कर सकता है? उदाहरण के लिए, यदि परिवार के एकमात्र कमाई करने वाले सदस्य को आजीवन जेल में रखा गया या मृत्युदंड के तहत फाँसी दे दी जाए तो क्या राज्य पर उसके परिवार के देखभाल का दायित्व है? यदि बच्चों को स्कूल से बाहर निकाला जा रहा है क्योंकि उनके माता—पिता क़ैद में हैं तो क्या राज्य नैतिक रूप से ज़िम्मेदारी लेने के लिए बाध्य है? यह सवाल कि क्या राज्य को क़ैदियों के परिवार को मुआवज़ा देना चाहिए या नहीं, हमें बहुत असहज सवालों का सामना करने के लिए मजबूर करता है कि हम किस तरह से अपने समाज में अपराध और सज़ा को देखते है।

क़ैदियों और उनके परिवारों के साथ साक्षात्कार के दौरान हमें उनके उन विभिन्न अनुभवों का पता चला जो उन्हें झेलने पड़ते हैं, जब उनके किसी सदस्य को गिरफ़्तार किया जाता है और गंभीर अपराध के तहत दोषी ठहराया जाता है। इस अध्ययन में क़ैदियों से जुड़े अपराध हमेशा हाई प्रोफाइल घटनाओं पर आधारित रहे हैं क्योंकि इन पर मृत्युदंड लगाया जा सकता था।

1. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 357 ए प्रदान करती है कि राज्य सरकार और केंद्र सरकार समन्वय में, पीड़ित और उनके आश्रित, जिन्हें अपराध के परिणामस्वरूप नुकसान उठाना पड़ा और जिन्हें पुनर्वास की आवश्यकता है, उनको मुआवज़ा उपलब्ध कराने के लिए योजना तैयार करेगी।

भले ही ये अपराध कोई अंग्रेज़ी राष्ट्रीय दैनिक या समाचार चैनलों के संदर्भ में हाई प्रोफाइल नहीं रहे हों लेकिन अपने स्थानीय संदर्भों में, इन अपराधों ने ज़बरदस्त ध्यान और दबाव आकर्षित किया। अलग–अलग अपराधों ने आरोपी के परिवार के सदस्यों के प्रति उनके संदर्भों के अनुसार, विभिन्न तरह की प्रतिक्रियाओं को आकर्षित किया है। इसमें हिंसा, सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार और अत्यंत ग़रीबी से लेकर मज़बूत समुदाय का समर्थन और एक जुट हो कर आरोपी व उसके परिवार को सहयोग देने के उदाहरणों को देखा गया है। आपराधिक न्याय प्रणाली के साथ संघर्ष व समाज के साथ टकराव के कारण इन परिवारों को कितनी पीड़ा सहनी पड़ती है, यह किसी बाहरी व्यक्ति की समझ से परे है।

अपराध और गिरफ़्तारी की सामाजिक प्रतिक्रिया के कारण अपराध होने और आरोपी की गिरफ़्तारी के बीच का समय अक्सर परिवार के लिए ज़्यादा बद्तर होता है बनस्पत जब एक आरोपी को अंततः दोषी ठहराया जाता है। परंतु आरोपी/अपराधी के परिवार के सदस्यों के लिए संपूर्ण सामाजिक, आर्थिक, क़ानूनी और मनोवैज्ञानिक परिणाम समय के साथ ही धीरे– धीरे प्रकट होते हैं। न्यायपालिका के विभिन्न स्तरों को पार करके मृत्युदंड की कार्यवाही में मामला जब आगे बढ़ता है तो परिवारों को इस आभास से जूझना पड़ता है कि क़ैदी एक कदम और मृत्यु की तरफ बढ़ गया है। कई परिवारों के लिए मौत का साया, आपराधिक न्याय प्रणाली की भूलभुलैया से गुज़रते हुए उनके दैनिक जीवन का एक हिस्सा बन जाता है। हालाँकि इसका यह मतलब नहीं है कि लगातार जीवन और मौत की संभावना के बीच झूलते रहने से उसकी क्रूरता अपनी तीव्रता खो देती है। क़ैदी की मदद करने में असमर्थ होने की यह एक असहायता और निराशा की ज़िंदगी है। ग़रीबी, दूरी और कई बार उनके जीवन की बिगड़ती स्थिति को छुपाने की ज़रूरत ने परिवारों को क़ैदियों से अक्सर न मिलने के लिए मजबूर किया है। जीवन में मौत की इस निरंतर छाया के साथ संघर्ष करते हुए उन्हें यह महसूस होता है कि वह उस सज़ा का भुगतान कर रहे हैं, जिस अपराध में उनकी कोई भूमिका है ही नहीं। उन्हें लगता है कि वे आपराधिक न्याय प्रणाली में एक अनुप्रासंगिक क्षति हैं, जिन्हें समाज कुर्बान करने के लिए तत्पर है।

उपर्युक्त कथन के विपरीत ऐसे भी परिवार थे जिन्हें अपराध के कारण शर्म की गहरी भावना महसूस हुई। ऐसे उदाहरण मिले जहाँ परिवारों ने अपनी घृणा दिखाने के लिए अपराधी का परित्याग कर दिया, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि उस क़ैदी ने ही वह अपराध किया था या परित्याग इसलिए किया, क्योंकि वो समुदाय को दिखाने की कोशिश करना चाहते थे कि वे भी मानते हैं कि क़ैदी कठोर सज़ा का हक़दार था। कुछ परिवारों ने क़ैदी से संबन्धित घटना को

दरिद्रता, ऋण और बहिष्करण

गोपीचंद रविदास, साक्षात्कार के समय तक जेल में 20 साल से भी अधिक समय गुज़ार चुका था। गोपीचंद और तीन अन्य को जातिगत नरसंहार में कथित भूमिका के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई थी। इस नरसंहार में पीड़ित ऊँची जाति के थे। उनकी गिरफ़्तारी के नौ साल बाद गोपीचंद, गोवर्धन, महंत और युधिष्ठिर को दोषी ठहराया गया और उन्हें आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियों (निवारण) अधिनियम, 1987 (टाडा) के तहत एक नामित अदालत ने मौत की सज़ा सुनाई। एक साल बाद उनकी अपील पर सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट की बेंच सज़ा के मुद्दे पर विभाजित थी। मृत्युदंड आपराधिक अपील में 2:1 न्यायाधीशों की बहुमत से और बाद में समीक्षा याचिका चरण में सज़ा की पुष्टि की गई। जेल में इन दो दशकों के दौरान गोपीचंद को कभी ज़मानत, थोड़े दिनों की छुट्टी या पैरोल पर रिहा नहीं किया गया। वह अपनी पत्नी ललिता देवी और अपने पाँचों बच्चों से कभी– कभार जेल में ही मिलता है।

गोपीचंद रविदास का परिवार काम के अभाव और आय की कमी के कारण अत्यधिक ग़रीबी में रहता है। ललिता देवी को बच्चों की देखभाल के लिए काफ़ी कर्ज लेना पड़ा और छठी कक्षा के बाद उसके लिए बच्चों को स्कूल भेजना असंभव हो गया। बच्चे काम करते हुए पले–बढ़े और उसके तीन बेटे अब दिहाड़ी मज़दूर हैं। अपनी दो बेटियों की शादी करने के लिए ललिता देवी को गाँव के लोगों से रकम उधार लेनी पड़ी। वह ऋण चुका नहीं पाई है और भविष्य में भी चुका देने का कोई तरीका नहीं दिख रहा है। महंत की पत्नी हेमलता देवी की कहानी भी इसी तरह, ऋण और ग़रीबी के साथ संघर्ष की है। उसने बताया कि अपने पति की गिरफ़्तारी के बाद जीवित रहने के लिए काम करने के कारण वह अपने तीन बच्चों को शिक्षित नहीं कर पाई। गाँव के लोग उसे कई बार पैसे उधार दे चुके थे। अंततः उसके बेटे को घर छोड़ कर कारख़ाने में काम के लिए दूसरे राज्य में जाना पड़ा। दैनिक मजदूरी पर काम कर रही हेमलता देवी के पास शायद ही कभी इतने पैसे होते हैं कि वह यात्रा कर के महंत से मिलने जाए। हालाँकि उनकी ज़िंदगी अकल्पनीय रूप से कठिन है और दो दशक से अधिक समय बीत चुका है, फ़िर भी ललिता देवी को अभी भी यह आशा है कि गोपीचंद घर वापस आएगा। उसने हमें बताया कि न तो समय के बीतने ने और न ही कठिनाइयों से जूझने ने गोपीचंद के जाने के दर्द को कम किया है।

भूलने की और एक नई ज़िंदगी का निर्माण करने की बहुत कोशिश की। वो कोई भी ऐसी चर्चा नहीं करना चाहते थे जिसके कारण वो यादें फ़िर से उभर कर सामने आएँ।

नीचे दिए गए आख्यान में उन अनुभवों की जटिलताओं को दर्शाने की कोशिश की है जिनसे क़ैदियों के परिवार गुज़रे हैं। यह समाज में बदले की इच्छा, अपराध और अपराधियों की अस्वीकृति को दर्शाते हैं। इनसे यह भी पता चलता है कि इसका असर उन लोगों पर कैसा पड़ता है जिनकी अपराध के लिए कोई नैतिक ज़िम्मेदारी नहीं है।

पीढ़ियों पर प्रभाव - क़ैदियों के बच्चों की ज़िंदगियाँ

यह शायद कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि क़ैदियों के बच्चों को शैक्षिक अवसरों के अभाव, उपहास, माता या पिता की गिरफ़्तारी और सज़ा के कलंक के कारण बहुत कुछ झेलना पड़ा है।

रंजय के मुक़दमे की सुनवाई महज तीन माह चली जिसके बाद उसे देसी पिस्तौल से एक वर्षीय बच्चे की हत्या के लिए मृत्युदंड की सज़ा सुनाई गई। रंजय के ख़िलाफ़ अभियोजन पक्ष का यह मामला था कि 100 रुपए के ऊपर विवाद होने के कारण यह घटना हुई। ट्रायल कोर्ट और हाई कोर्ट ने रंजय के इस दावे को ख़ारिज कर दिया कि यह दुर्घटना शराब के प्रभाव में हुई। शिवमानि, रंजय की पत्नी का यह कहना था कि इस केस के कारण उसके अपना जीवन बनाने के सारे प्रयास बेकार हो गए। उसने बताया कि करीब दो दशकों के संघर्ष के बाद वह रंजय को छोटे–मोटे अपराध के जीवन को छोड़ कर स्थिर काम करने के लिए मना पाई थी। एक टोल टैक्स बूथ पर रंजय की नौकरी लगी थी। यह उनके परिवार की आवश्यकताओं के लिए काफ़ी था, जिसमें उनकी दो बेटियों और तीन पुत्रों की शिक्षा भी शामिल थी। वो कुछ साल तक ही संतुष्टि का जीवन जी पाए कि इस मामले ने उनकी ज़िंदगी को तबाह कर दिया। रातोंरात उन्हें क़ानूनी सहायता सुरक्षित करने की कोशिश में अपनी संपत्ति को बेचना पड़ा।

उसके दोनों बच्चों का स्कूल छुड़वाना पड़ा। उसकी सबसे बड़ी बेटी राधिका पर इसका गंभीर प्रभाव पड़ा जिसके कारण वह तीन प्रयासों में भी दसवीं की मानक परीक्षा पास करने में विफल रही। उसे पीड़िता के रिश्तेदारों की धमकियों के कारण इलाके से दूर भाग जाना पड़ा। उसके घर को तोड़–फोड़ दिया गया और उसको यह स्पष्ट रूप से कह दिया गया कि अगर वह वापस आई तो उसके बच्चों को नुकसान पहुँचाया जाएगा। जिस भी इलाके में वह जाती, वहाँ जैसे ही मकान मालिकों को केस के बारे में पता चलता तो उसे घर से बेदखल कर दिया जाता। शिवमानि और उसके बच्चे इस घटना के बाद से 18 बार मकान बदल चुके हैं। हालाँकि इस घोर ग़रीबी ने वास्तव में शिवमानि को नहीं कुचला। किन्तु उसकी सबसे बड़ी बेटी राधिका जो कभी रंजय के जेल जाने के बाद उसके लिए शक्ति स्तंभ थी, को एक होटल में रोज़गार मिल गया और वह घर छोड़ कर चली गई। राधिका ने सभी संपर्क तोड़ दिये जिसके कारण शिवमानि टूट गई और वह अब सोचती है कि क्या वह कभी इस कठोर परीक्षा से निकल पाएगी।

साक्षात्कार के समय शिवमानि, विभिन्न स्थानों पर कई साल काम करने के बाद अपनी छोटी बेटी का स्कूल में फ़िर से नामांकन करवाने में कामयाब हो गई थी। उसका सबसे बड़ा बेटा भी वापस स्कूल जाने लग गया है और वह उम्मीद करती है कि वह किसी दिन पुलिस बल में शामिल हो जाएगा। शिवमानि ने अपने घर के खर्चों के लिए गाँव में लोगों से ऋण ले रखा है। इसके अलावा बार–बार घर बदलने के कारण, काम मिलने की कठिनाई ने उसे अपने बच्चों के भविष्य को लेकर चिंतित कर दिया है। उसके जीवन में भाग्य के क्रूर मोड़ को देखते हुए शिवमानि का मानना है कि हालाँकि क़ैदी को अदालत द्वारा मौत की सज़ा सुनाई जाती है, लेकिन उसका परिवार रोज़ तिल तिल कर मरता है।

क़ैदी और उनके परिवारवाले अक्सर भावुक हो जाते हैं जब वह अपने बच्चों पर केस के प्रभाव को देखते हैं। बच्चे परिस्थितियों को झेल पाएँ, इसके लिए या तो उनसे इस बात को छुपाते हैं कि उनके माता या पिता को मृत्युदंड मिला है या अलग–अलग कहानियों की मदद लेते हैं कि उनके माता–पिता जेल में क्यों हैं। परंतु मौत की सज़ा से जुड़े मामले हाई प्रोफाइल होने के कारण बच्चों को सामाजिक व आर्थिक प्रतिकूल परिणामों से बचाना मुश्किल हो जाता है, ख़ास तौर पर उन मामलों में जब माता–पिता दोनों ही क़ैद में हों। बच्चों के भाग्य के क्रूर मोड़ पर

रोशिनी और उसके पति उरवी को मानव बलि के सिलसिले में एक नाबालिग की हत्या के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई। उसकी दो बेटियों और एक बेटे को जिनकी आयु 12 से 16 साल के बीच की थी, प्रेक्षण गृह में भेजने से पहले पुलिस स्टेशन में तीन दिनों के लिए हिरासत में रखा। वर्तमान में वे रोशिनी की बहन आशा के पास रहते हैं, जो उनके माता–पिता की गिरफ़्तारी के बाद उनकी देखभाल के लिए ज़िम्मेदार है।

आशा का मानना है कि उनके माता–पिता की गिरफ़्तारी और सज़ा ने बच्चों पर बहुत गहरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव छोड़ा है। आशा ने साझा किया कि उनके माता–पिता की क़ैद ने "उनके बचपन को चुरा लिया" और वे अपनी उम्र के बच्चों की तुलना में बहुत तेज़ी से बड़े हो गए। रोशिनी की सबसे बड़ी बेटी पर उसके माता–पिता की गिरफ़्तारी का सबसे ज़्यादा प्रभाव पड़ा क्योंकि वह उस उम्र की थी जब वह समझ सकती थी कि इसके परिणाम क्या होंगे। अपने माता–पिता की गिरफ़्तारी और पड़ोसियों के तानों से हिले हुए ये बच्चे बेहद शांत हैं और अन्य बच्चों के साथ बातचीत नहीं करते। आशा ने कहा कि वह बच्चों को यह बताकर शांत करने की अपनी तरफ से पूरी कोशिश करती है कि वे इसे एक बुरे सपने के रूप में सोचें और भूलने की कोशिश करें।

चिंतन करते हुए सभी वर्णनों में अन्याय और अनुचितत्ता की स्थिति आम थी। क़ैदी और उनके परिवारवाले अपने बच्चों के भविष्य के बारे में कोई वास्तविक समर्थन न दिखने के कारण असहाय महसूस करते हैं।

जनता की भावनाओं को प्रभावित करने में मीडिया का रोल

रिपोर्टिंग करते समय समान्यतया हाई प्रोफ़ाइल अपराधों और विशेष रूप से मृत्युदंड के मामलों में मीडिया का सार्वजनिक भावना के साथ एक सहजीवी संबंध है। सार्वजनिक भावनाओं को जहाँ मीडिया समाचार फ़ीड करता है वहीं बदले में सार्वजनिक भावनाओं की फ़ीड लेता है। राष्ट्रीय और स्थानीय रिपोर्टिंग में यह पेचीदा सम्बन्ध मृत्यु और प्रतिशोध के एक भयानक प्रदर्शन को उत्पन्न करता है, जिसमें अतिशयोक्ति, विरूपण, भय, हिंसा और बहिष्कार का विवरण है। हालाँकि मौत की सज़ा के ज़्यादातर मामले तब तक राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्रित नहीं होते जब तक क़ैदी फाँसी की कगार पर न हो, परंतु स्थानीय मीडिया का खेल बिल्कुल ही अलग है। लगभग सभी घटनाएँ जो मृत्युदंड से जुड़ी हैं, उनका स्थानीय महत्व ज़बरदस्त है और हमेशा स्थानीय प्रेस का ध्यान उन पर आकर्षित रहता है। चूँकि आपराधिक न्याय व्यवस्था के आरंभिक चरणों में सभी कलाकार इस स्थानीय संदर्भ में डूबे रहते हैं इसलिए स्थानीय मीडिया के प्रभाव को नज़रंदाज़ नहीं किया जा सकता है। अपराध के प्रति सामाजिक और राजनीतिक प्रतिक्रिया को निर्धारित करने में इसकी ज़बरदस्त क्षमता है जो गिरफ़्तार व्यक्ति के परिवार के सदस्यों के प्रति समाज के नज़रिए को प्रभावित करता है। इस तरह के मामलों की मीडिया कवरेज मुख्य रूप से राज्य एजेंसियों के कथन को दर्शाती है। कथित परिवारों की सामाजिक–आर्थिक प्रोफ़ाइल देखते हुए उनकी आवाज़ शायद ही कभी सुनी गई हो। सूचना के प्रसार की इन संरचनात्मक वास्तविकताओं के परिणाम से परिवारों को अक्सर अपने दम पर धमकियों, शर्म और डर का सामना करने के लिए छोड़ दिया जाता है।

बहिष्कार और हिंसा

मृत्युदंड पाए क़ैदियों के परिवारों को गिरफ़्तारी के समय से ही कलंक का सामना करना शुरू कर देना पड़ता है। यह विशेष रूप से यौन हिंसा

फ़ाज़िल को एक हाई प्रोफाइल आतंकी मामले में उसकी कथित भूमिका के लिए दोषी करार दिया गया और उसे मौत की सज़ा सुनाई गई। कश्मीर में अपने घर से गिरफ़्तारी के समय उसे अपनी गर्भवती पत्नी सलीमा और उनकी तीन साल की बेटी ज़ोया को पीछे छोड़ कर आना पड़ा। सलीमा ने उसकी गिरफ़्तारी के बाद उनकी दूसरी बेटी आफ़रीन को जन्म दिया। हालाँकि वह अपनी बेटियों की देखभाल कर सकती थी, पर सलीमा को हमेशा यह डर लगा रहता था कि कहीं उनके पिता पर एक 'आतंकवादी' का ठप्पा लगने से उनका भविष्य न प्रभावित हो। वह खुद केवल आठवीं तक पढ़ी थी इसलिए उसकी तमन्ना थी कि उसकी बेटियाँ एक अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूल में पढ़ने जाएँ। दुर्भाग्य से वह इस केस के कारण अपनी बड़ी बेटी का स्कूल में समय पर दाखिला नहीं करा पाई। एक गंभीर वृतांत में उसने हमें बताया कि उसकी बेटियों को इस कहानी पर विश्वास है कि उनके पिता एक मैकेनिक हैं जो पुलिस के वाहनों की मरम्मत करते हैं, जिसके कारण उन्हें जेल में रहना पड़ता है। वह उस भविष्य का सपना देखती है, जहाँ उसकी बेटियाँ अपने पिता से बिना किसी बंधन के मिल सकती है।[2]

और आतंकवाद से जुड़े मामलों में नज़र आता है। सामाजिक बहिष्कार का सामना करने के अलावा कई उदाहरण है जहाँ क़ैदियों के परिवारों को स्थानांतरित होने के लिए मजबूर किया गया, नौकरियों से वंचित रखा गया और दरिद्रता की ओर बढ़ाया गया। चूंकि क़ैदियों का एक बहुत बड़ा अनुपात पुरुष था, हमने अक्सर ऐसी स्थितियाँ पाईं जहाँ परिवार की महिलाओं को अचानक प्रतिकूल सामाजिक वातावरण और दुर्बल आर्थिक परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। क़ैदी की मदद करने में असमर्थ होने की लाचार भावना के साथ–साथ उन्हें अपनी कोई ग़लती न होने के बावजूद प्रताड़ित होने के एहसास का भी सामना करना पड़ा।

कई फ़ैसलों में न्यायाधीशों का कहना है कि वे मृत्युदंड की सज़ा सुना रहे हैं, क्योंकि यह 'सामूहिक अंतरात्मा की' और 'समाज की न्याय के लिए पुकार' की माँग है। इस खंड के आख्यान हमें 'न्याय' के नाम पर की गई कार्यवाहियों के विनाशकारी प्रभावों का सामना करने के लिए बाध्य करते हैं और हमें चेतावनी देते हैं कि सार्वजनिक भावना द्वारा निर्देशित न्याय बेहद ख़तरनाक हो सकता है।

समुदाय का समर्थन और सहायता

हालाँकि ज़्यादातर परिवारों के आख्यान सामाजिक बहिष्कार, हिंसा और निष्कासन से संबन्धित थे परंतु ऐसे भी आख्यान थे जहाँ देखा गया कि किस तरह स्थानीय समुदायों ने गिरफ़्तार हुए या अपराधी ठहराए हुए व्यक्ति के परिवार का संगठनात्मक समर्थन किया। ऐसे उदाहरण मोटे तौर पर उन मामलों में देखे गए हैं जहाँ एक बहुत मज़बूत धारणा थी कि गिरफ़्तार या दोषी करार व्यक्ति राज्य सरकार का टार्गेट (निशाना) है। हालाँकि यह आतंकवाद से सम्बंधित मामलों

2. साक्षात्कार के बाद, सुप्रीम कोर्ट ने फ़ाज़िल को उसके पाँच सह–आरोपी के साथ बरी कर दिया, और निर्दोष व्यक्तियों को फँसाने के लिए जाँच एजेंसियों को धिक्करा। तब तक फ़ाज़िल 11 साल जेल में और सात साल से अधिक फाँसी के इंतज़ार में बिता चुका था

गोपेश के मामले ने उसके गृह–राज्य में एक जुनून सा पैदा किया है– एक व्यक्ति के रूप में गोपेश और वे अपराध, जिनका आरोप उस पर लगाया गया है, पर अनगिनत लेख लिखे गए हैं और अनेक समाचार कार्यक्रमों का प्रसारण भी हुआ है। यहाँ तक कि स्थानीय भाषा में दो मुख्यधारा की फिल्में भी उस पर बनी हैं। इस संबंध में जिस तरीक़े से एक लोकप्रिय अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिका के पत्रकार ने चालाकी से उसकी कहानी में हेरफेर किया, गोपेश उसे लेकर बहुत नाराज़ है।

गोपेश ने हमें बताया कि चार्ली एडम्स, एक अमेरिकी पत्रकार ने जेल में उस से साक्षात्कार करना चाहा। जेल प्रशासन को बता देने के बावजूद कि उसे चार्ली एडम्स से बात करने की इच्छा नहीं है, फ़िर भी उसे गोपेश से मिलने के लिए अपने अनुवादक के साथ अंदर लाया गया। बैरक में अन्य क़ैदियों ने भी आग्रह किया कि गोपेश साक्षात्कार के लिए सहमति दे दे, इस आशा में कि इससे उसके मामले में मदद मिलेगी। चार्ली एडम्स ने गोपेश को आश्वासन दिया कि वह उस के लिए सुप्रीम कोर्ट में एक उत्कृष्ट वक़ील करवाएगा और जो कहानी वह लिखेगा, उस से दुनिया में गोपेश की बेगुनाही साबित हो जाएगी। अंततः जब गोपेश को चार्ली एडम्स द्वारा प्रकाशित लेख पढ़ने को मिला, वह चौंक गया और उसको झटका लगा कि लेख में उसे एक क्रूर क्रमिक (सीरियल) कातिल के रूप में चित्रित किया था और यहाँ तक कि उसकी तुलना 'जैक द रिपर' के साथ की गई थी। गोपेश ने हमें बताया कि उसने चार्ली एडम्स पर विश्वास कर के अपने सभी केस रिकॉर्ड उसे इस उम्मीद में दिखाये थे कि वो अपने वादे के अनुसार क़ानूनी सहायता दिलवाने में मदद करेंगे। इसी तरह उसके बारे में निकली दो फिल्मों में भी उसे सीरियल बलात्कारी, क़ातिल, पारलिंगी वेशधारी और नेक्रोफिलियाक के रूप में चित्रित किया है। उसकी अनुमति के बिना राज्य और देश भर के लाखों लोगों को उसे और उसके परिवार को इस तरह से चित्रित करने पर गोपेश ने इसके औचित्य पर प्रश्नचिन्ह लगाया है।

मीडिया के सभी रूपों में बदनाम करने के इस अभियान और लगाए गए आक्षेपों को देखते हुए गोपेश ने कहा कि वह आश्चर्यचकित है कि वो और उसका परिवार अभी तक जीवित है।

उमंग को साढ़े तीन साल की लड़की के बलात्कार और हत्या के मामले में गिरफ़्तार किया गया और नौ दिनों के अंदर मौत की सज़ा सुना दी गई। जब हमारे शोधकर्ता उसकी माँ से बात करने के लिए उमंग के गाँव पहुँचे तो उन्हें बताया गया कि वह सूर्यास्त के बाद ही लौटेंगी। शाम को जब वे वापस आए तो गाँव के उस हिस्से में कोई रोशनी नहीं थी और पूरी बातचीत मोबाइल फोन की टॉर्च की रोशनी में हुई। शोधकर्ता आम तौर पर रात में परिवारों से मिलने नहीं जाते परंतु इस विशेष स्थिति में केवल यही समय था जब वह उमंग की माँ से मिल सकते थे क्योंकि उसे हर रोज भोजन और सहायता के लिए भीख माँगने शहर जाना पड़ता था। खड़े हुए राहगीरों ने हमारे शोधकर्ताओं को बताया कि 'मूसाहारी टोला' में कई पुरुष और महिलाएं उस से नियमित रूप से दुर्व्यवहार करते हैं, यहाँ तक उसके बेटे के अपराध के लिए उसकी पिटाई भी करते हैं। यह स्पष्ट है कि वहाँ कोई भी उसकी मदद या समर्थन करने के लिए तैयार नहीं है। जब शोधकर्ताओं ने उसकी मिट्टी की झोपड़ी में प्रवेश किया तो कई गाँव वाले जिनमें से ज़्यादातर नशे में थे, झोपड़ी के आसपास इकट्ठे हो गए। उस से बात करने की बहुत कोशिश की परंतु वह कुछ शब्दों के अलावा और बोल ही नहीं पाई। वह सामने फर्श पर लोटने लगी जैसे उसने मानसिक संतुलन खो दिया हो और उसके आसपास क्या हो रहा है, उस को समझने की क्षमता खो दी हो। बीच–बीच में, वह ताकत जुटाकर और चेतना में आकर चिल्ला उठती, "वह निर्दोष है। ये लोग झूठे हैं। उसकी मदद करो। मैं तुमसे विनती करती हूँ, उसकी मदद करो, उसकी जान बचा लो।" भीड़ उसके दावों पर उत्तेजित हो जाती और उसकी हर याचिका पर उसे और गाली देती। पीड़िता के पिता ने उमंग की माँ के ख़िलाफ़ आरोप का नेतृत्व किया और हमारे शोधकर्ताओं को ज़ोर दे कर कहा कि उनकी कहानी का भी पक्ष सुने। जैसे ही स्थिति बिगड़ी, हमारे शोधकर्ताओं ने उमंग की माँ को छोड़ा और पीड़िता के घर चले गए। भीड़ भी उनके पीछे–पीछे गई।

भीड़ में एक महिला ने बातचीत में उमंग की पत्नी और बच्चों के गाँव छोड़ने के कारणों को बताया। उसकी बातों ने हमारे शोधकर्ताओं पर गहरा असर छोड़ा। पीड़िता के पिता ने उसे व उसके परिवार को धमकी दी थी, जिसके बाद उसने गाँव छोड़ दिया। पीड़िता के पिता ने कहा, "जो उसने मेरी बेटी के साथ किया, वो मैं उसकी बेटी के साथ करूंगा। तभी उसे एहसास होगा कि उसने क्या किया है और तभी मैं जी पाऊँगा"।

प्रयाग को एक हाई प्रोफाइल यौन हिंसा मामले में मृत्युदंड की सज़ा मिली। इस केस पर ज़बरदस्त स्थानीय और राष्ट्रीय ध्यानाकर्षण हुआ। दुर्भाग्यवश, अपराध के प्रति जनता के आक्रोश के कारण प्रयाग के परिवार पर विनाशकारी प्रभाव पड़े। उसके माता–पिता, जया और भुवन, बमुश्किल साक्षर थे और एक महानगरीय उपनगर में रहते थे। माँ एक घरेलू नौकर और पिता स्थानीय नगर निगम में एक सफ़ाई कर्मचारी के रूप में काम कर के किसी तरह से अपना जीवन यापन कर रहे थे। हमारे शोधकर्ताओं ने शहर के उस जेल के बाहर फुटपाथ पर जया और भुवन के साथ साक्षात्कार किया, जहाँ उनके बेटे को क़ैद किया गया था। एक घर में रहने से लेकर फुटपाथ तक का जया और भुवन का सफ़र दुश्मनी, सामाजिक कलंक और हिंसक अधिकार हरण से भरा था।

प्रयाग की गिरफ़्तारी से पहले उसका परिवार लगभग छह–सात महीने से उपनगर में अपने छोटे से घर में रह रहा था। गिरफ़्तारी के कुछ ही दिन बाद बिल्डिंग प्रबंधन समिति ने तीव्र मीडिया सुर्खियों और बार–बार पुलिस के आने जाने का बहाना ले कर उन्हे बिल्डिंग छोड़ देने का निर्देश दे दिया। हाउसिंग सोसायटी के तीव्र दबाव के कारण और बढ़ती आशंका कि उन पर हमला हो सकता है, जया और भुवन ने हाउसिंग सोसायटी को तुरंत छोड़ दिया। अपनी सारी संपत्ति घर में बंद ही पीछे छोड़ आए। उन्होंने ये कभी भी नहीं सोचा था कि उन्हें वापस जाने की अनुमति नहीं मिलेगी। शहर के जेल के बाहर फुटपाथ पर उनको दैनिक जीवन व्यतीत करते देखना एक दर्दनाक नज़ारा है। भुवन के पैर में सूजन आने के कारण उसे अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा। जया की घरेलू नौकर के रूप में 1100 रुपए की मासिक आय उनके गुज़ारे के लिए बहुत कम है। वे रात में फुटपाथ पर सोते हैं और बारिशों के समय पास के सरकारी अस्पताल के प्रांगण में। वे पास के भोजन स्टालों पर खाते हैं, और सार्वजनिक शौचालयों में स्नान करते हैं। जया और भुवन यह समझने के लिए संघर्ष कर रहे हैं कि किस तरह से उनके जीवन को नष्ट कर दिया गया है।

बृजमोहन को एक सह आरोपी के साथ 22 वर्षीय महिला के बलात्कार और हत्या के लिए गिरफ़्तार किया गया और चार साल और चार महीने में मौत की सज़ा सुनाई गई। बृजमोहन एक ग़रीब घर का था और उसकी माँ उर्मिला, बृजमोहन की गिरफ़्तारी से पहले एक कारख़ाने में काम करती थी। जब उर्मिला बृजमोहन की गिरफ़्तारी के बाद कारख़ाने गई तो उसे बताया गया कि उसकी नौकरी किसी और व्यक्ति को दे दी गई है और अगर उसकी सेवाओं की ज़रूरत महसूस होगी तो उसे सूचित कर दिया जाएगा। वह पैसा कमाने के लिए कई घरों में घरेलू मदद के रूप में काम लेने के लिए मजबूर हो गई। हालाँकि उर्मिला एक छोटे से घर में अपनी दो बेटियों के साथ रहती थी, परंतु बेटे की गिरफ़्तारी के बाद की प्रतिक्रियाओं के कारण उसे घर छोड़ना पड़ा।

गिरफ़्तारी के शुरुआती दिनों में ही लोगों ने गुस्से में उनके घर पर पत्थर मारने शुरू कर दिए और घर के सामने कचरे के ढेर लगा दिये। साथ ही जिस स्कूल में उसकी छोटी बेटी पढ़ाई कर रही थी उस स्कूल ने इस केस के बाद उसे अंदर घुसने से भी मना कर दिया। बढ़ते द्वेषभाव ने उर्मिला को घर छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया और अपने बदले हुए आर्थिक हालात के कारण वह शहर की झुग्गी बस्तियों में रहने के लिए लाचार हो गई । बस्ती में रहते हुए उर्मिला को अपनी बेटियों की सुरक्षा के लिए चिंता रहने लगी क्योंकि वहाँ उसे असुरक्षित लगता था। अधिक सुरक्षा की तलाश में वो अपनी बेटियों के साथ शहर के एक दूसरे हिस्से में चली गई।

असद को आतंकी मामले में षड्यंत्रकारी होने के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई। ज़ेबा ने इस घटना के कुछ ही हफ़्ते पहले असद से शादी की थी, असद के साथ–साथ उसे भी गिरफ़्तार कर लिया गया था। ज़ेबा बरी होने से पहले कई साल तक क़ैद में रही। जेल के बाहर भी उसका जीवन उतना ही मुश्किल है। उसके परिवार का कहना है कि वह अपने पति के साथ अब कोई ताल्लुकात नहीं रखे। ज़ेबा अपने पति के समर्थन और अपने परिवार का कहना मानने के बीच अब तक फँसी है। जब हमारे शोधकर्ता अंततः उस घर पहुंचे जहाँ ज़ेबा के रहने की संभावना थी तो उसने यह कह कर दरवाज़े पर जवाब दिया कि उस नाम का यहाँ कोई नहीं रहता। जब शोधकर्ता वापस लौटने लगे, तब उसने उन्हें पीछे के दरवाज़े से आवाज़ दी और कहा कि ये घर उसकी बहन के परिवार का है। साथ में यह भी कहा कि केस के बारे में उसे बात करने के लिए सख़्त मनाही है। उसने जल्दी से अपना फोन नंबर दिया और शोधकर्ताओं से कहा कि फोन करके बाहर मिलें। कई फोन कॉल के बाद हमें एहसास हुआ कि ज़ेबा न तो फोन पर और न ही मिल कर केस पर चर्चा करना चाहती थी। उसे विश्वास था कि वह खुफिया एजेंसियों की निगरानी में थी।

अंत में, कुछ हफ्तों के बाद अपने घर से दूर उसने एक कैफे में हमारे शोधकर्ताओं से मुलाकात की। ज़ेबा ने बताया कि उस पर उसकी बहन और माँ का बहुत दबाव है कि वह असद के साथ सभी संबंधों को तोड़ दे। दबाव इस हद तक है कि उसे घर में बातचीत के दौरान असद का नाम लेने की भी अनुमति नहीं है। गिरफ़्तारी के कुछ सप्ताह बाद ज़ेबा की बहन को अपने काम पर मालिकों के साथ परेशानी हुई, जिसके कारण उसे ज़ेबा व असद के साथ अपने सहयोग की हद का एक विस्तृत लिखित विवरण प्रस्तुत करना पड़ा। ज़ेबा ने बताया उसके पूरे विस्तारित परिवार ने इस मामले में घसीटे जाने के डर से, धीरे–धीरे उससे सारे सम्बन्ध तोड़ दिये हैं।

हालाँकि ज़ेबा इस डर में रहती है कि फ़िर से उसे मामले में निशाना बनाया जा सकता है परंतु उसको असद पर विश्वास है। असद को छोड़ने के लिए उसे धमकाया या मजबूर नहीं किया जा सकता। अपनी पहली गिरफ़्तारी से जुड़े कलंक और बिगड़ते स्वास्थ्य के कारण उसे काम मिलना बहुत ही मुश्किल हो रहा है। अपनी बढ़ती आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद ज़ेबा अकेले ही असद का यह दावा स्थापित करने में मदद कर रही है कि उसने डेढ़ दशक जेल में बिताया है उस अपराध के लिए जो उसने किया ही नहीं है। हालाँकि इस घटना से महज़ 15 दिन पहले ही ज़ेबा और असद की शादी हुई थी, पर ज़ेबा बिलकुल स्पष्ट है कि वह यह लड़ाई अंत तक लड़ेगी।

में सबसे अधिक स्पष्ट नज़र आता है, पर अन्य मामलों में भी समुदाय के समर्थन के उल्लेखनीय आख्यान हैं।

आतंकवाद के मामले, जहाँ मृत्युदंड मिलना एक गंभीर संभावना है, शायद परिवार पर सबसे अधिक भारी पड़ते हैं। ज़बरदस्त सामाजिक कलंक ही नहीं बल्कि परिवारों को सरकार की तरफ़ से अलग–अलग तरह के दबावों से जूझना पड़ता है। ऐसे मामलों पर बहस करने के लिए वक़ील मिलना बेहद मुश्किल हो जाता है। ऐसी परिस्थितियों में अभियुक्त अक्सर समुदाय के सहयोग पर भरोसा करते हैं।

क़ैदियों के परिवारों के नज़रिए – परित्याग को समझना

क़ैदियों के परिवारों से बातचीत में क़ैदियों की पृष्ठभूमि और आपराधिक न्याय प्रणाली के साथ अनुभवों के बारे में प्रतिक्रियाओं का एक व्यापक रूप सामने आया। एक तरफ़ तो कई परिवार

हरमीत व असव एक ग़रीब कृषि परिवार से हैं और उन्हें एक परिवार के तीन सदस्यों की हत्या के लिए मौत की सज़ा सुनाई गई है। समुदाय में यह व्यापक भावना है कि उन्हें फँसाया गया है। नतीजन हरमीत की माँ वीरमती, को गाँव से ज़बरदस्त समर्थन मिला है । उन्होंने यह बार–बार कहा कि गाँव के लोगों के समर्थन के बिना उनका और उनके परिवार का हरमीत की गिरफ़्तारी के कारण बनी आर्थिक स्थिति से जूझना मुश्किल था। पंचायत ने पैसे जुटाए और परिवार को ज़बरदस्त वित्तीय सहायता मुहैया करवाई, स्कूल फीस अदा की ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि हरमीत की बेटी स्कूल जाती रहे।

सबसे आश्चर्यजनक बात यह थी कि समुदाय ने यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया कि हरमीत और असव को सक्षम क़ानूनी प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। वीरमती ने बताया कि किस तरीक़े से गाँव के सब लोगों ने कुछ–कुछ योगदान देकर यह सुनिश्चित किया कि क़रीब एक लाख रुपए वक़ील के ख़र्च के इकट्ठे किए जा सकें। गाँव के लोगों ने यह भी सुनिश्चित किया कि अदालती कार्यवाही में भाग लेने के लिए वीरमती के लिए परिवाहन की व्यवस्था भी हो। उसका और उसके परिवार का ध्यान रखने के लिए वीरमती ने गाँव वालों के प्रति गहरा आभार व्यक्त किया। साथ ही यह बताया कि जब हरमीत और असव को मृत्युदंड की सज़ा सुनाई गई तो सारे गाँव पर उदासी और निराशा के बादल छा गए थे।

चितरंजन के परिवार को भी समुदाय आधारित संगठनों से महत्वपूर्ण सहयोग मिला। चितरंजन और तीन अन्य व्यक्तियों को बीस से अधिक सुरक्षा कर्मियों की हत्या में उनके कथित रूप से शामिल होने के लिए 'टाडा' के तहत मौत की सज़ा सुनाई गई थी। आठ साल और पाँच महीने तक चले मुक़दमे के अंत में टाडा अदालत द्वारा आजीवन कारावास की सज़ा सुनाए जाने के बाद सुप्रीम कोर्ट ने उनकी सज़ा असाधारण रूप से बढ़ा कर मृत्युदंड में तब्दील कर दी। गांवों में बेहद दुर्गम इलाकों में रहने के कारण उनके परिवारों को केस लड़ने के लिए मदद ढूँढने में संघर्ष करना पड़ा। चितरंजन के पिता आरून ने बताया की ज़मीनी स्तर के संगठनों ने करीब बीस वर्षों तक विभिन्न तरीकों से उन्हें समर्थन प्रदान किया। संगठन ने जेल में चितरंजन से मुलाक़ात करवाने से लेकर बच्चों की शिक्षा के लिए अथवा केस को लड़ने के लिए सहायता प्रदान की। इन संगठनों ने लोक चेतना में जागरूकता बढ़ाने में ज़बरदस्त भूमिका निभाई है। इन संगठनों के समर्थन के बिना यह अत्यंत दूरदराज़ के क्षेत्रों में संसाधनों के अभाव में रहते परिवारों का अपने मामलों की ओर मुख्यधारा का ध्यान आकर्षित करना असंभव होता।[3]

अपने अनुभव डॉक्यूमेंट करने के लिए बहुत उत्सुक थे– इस प्रयास में कि उनकी आवाज़ सुनी जाए, दूसरी तरफ़ कुछ ने हमारा उद्देश्य जानते ही हमसे बात करने से इंकार कर दिया। हमसे क़ैदियों के बारे में बात न करने के कारण कुछ इस प्रकार थे– क़ानून के साथ टकराहट का डर, परिवार पर शर्मिंदगी लाने के कारण क़ैदी का बहिष्कार करके एक नए जीवन की शुरुआत, अपने ही परिवार के सदस्यों की हत्या के लिए क़ैदी के प्रति अत्यधिक गुस्सा। कुछ

3. दया याचिकाओं के निपटारे में अनुचित देरी के आधार पर सुप्रीम कोर्ट ने मौत की सज़ा को आजीवन कारावास में बदल दिया था।

राजुल और ग़ालिब को एक बीस वर्षीय महिला के अपहरण और हत्या के आरोप में मौत की सज़ा सुनाई गई। राजुल और आमिन की शादी को गिरफ़्तारी के समय 19 साल हो चुके थे और उनके चार बच्चे हैं। आमिन को राजुल के प्रति बहुत गुस्सा था और उसे लगा कि गाँव वालों को 'उसे सही' कर देना चाहिए अगर उसने गाँव वापस आने की हिम्मत की। उसका राजुल के साथ रहने का कोई इरादा नहीं था और उसने यह निश्चय कर लिया था कि अगर राजुल कभी वापस भी आया तो वह उस से वियुक्ति (सेपरेशन) ले लेगी। अब उसकी चिंता केवल अपने चार बच्चों की थी। उसे यह सुनिश्चित करना था कि उनको किसी तरह से भुगतना नहीं पड़े। गिरफ़्तारी के बाद आरंभिक महीनों में राजुल जेल से आमिन को फोन कर साबुन, बाल्टी, तेल आदि चीजें खरीदने के लिए कुछ पैसे भेजने का अनुरोध करता। आमिन ने कहा कि उसने राजुल को इस तरह की मांगों के लिए फोन ना करने के लिए स्पष्ट कह दिया, क्योंकि उसे अपने सीमित संसाधनों में घर चलाना और बच्चों को देखना था। वह बहुत कठिनाइयों से, कई नौकरियाँ कर के, अपने बच्चों की देखभाल कर रही थी। उसने जेल में राजुल के जीवन की कठिनाइयों से ख़ुद को अलग रखने का फ़ैसला कर लिया था। आमिन ने जेल की स्थिति के बारे में हमारे शोधकर्ताओं से पूछा और टिप्पणी की कि राजुल को तो जेल में भोजन और दैनिक उपयोग की सारी चीज़ें उपलब्ध हैं परंतु उसे और उसके बच्चों को दुनिया की असली कड़वाहट का सामना करना पड़ रहा है। मज़े की बात यह है कि राजुल ने भी अपने साक्षात्कार के दौरान यही मनोभाव दोहराया कि उसे तो जेल में रोज़ खाना मिल जाता है, किंतु उसे अपनी पत्नी व बच्चों की चिंता सताती है। राजुल को फाँसी हो या आजीवन कारावास, आमिन उसके भाग्य के प्रति उदासीन होने का दावा करती है। ऐसा लगता है कि आमिन को कठोर वास्तविकताओं का सामना करने की वजह से इन सवालों के बारे में सोचने के लिए कोई समय नहीं है।

ऐसे परिवार थे जिनका क़ैदियों से कोई संपर्क न रखने के कारण ऊपर दिये कारणों का मिश्रण थे।

उपसंहार

यह समझना होगा कि समाज का हित इसी में है कि क़ैदियों के परिवारों की वंचितता और कमजोरियों को और न बढ़ने दिया जाए। इससे आपराधिक न्याय प्रणाली के साथ और अधिक टकराहट का खतरा बढ़ जाता है और हिंसा के चक्र को ट्रिगर करने की दिशा में योगदान देता है। दोषी को दंडित किया जाए या नहीं, यह दार्शनिक प्रश्न अलग है। परंतु दोषी व्यक्तियों के परिवार के सदस्यों पर इसकी कोई भी ज़िम्मेदारी, नैतिक या अन्यथा, रखने का कोई आधार नहीं हो सकता है। समाज के प्रतिशोध की ज़रूरत को क़ैदियों के परिवारों तक नहीं बढ़ा सकते। फ़िर भी वे अपराध, सज़ा और अपराधों के दोषी लोगों की छवि की कल्पना के सामाजिक दृष्टिकोण के परिणामों का सामना करने के लिए मजबूर हैं। न्याय की किसी भी सार्थक धारणा की माँग में हमें क़ैदियों के परिवारों को पीड़ितों के रूप में देखना चाहिए जिन्हें देखभाल और संरक्षण की ज़रूरत है बनस्पत दुष्प्रेरक (abettor) के रूप में तिरस्कार योग्य और सज़ा के प्रार्थी के रूप में।

भारत में मृत्युदंड (2000–2015): एक अवलोकन

परियोजना के दौरान हमने महसूस किया कि भारत में मृत्युदंड पाने वाले क़ैदियों के बारे में जानकारी का काफी अभाव है। इस अध्याय में हम 2000 से 2015 तक की अवधि के दौरान भारत में मृत्युदंड के मामलों का अवलोकन प्रस्तुत कर रहे हैं। हमने आपराधिक अपील की प्रक्रिया के माध्यम से प्रत्येक मौत की सज़ा के मामले के परिणाम का पता लगाने का प्रयास किया है। यह पुष्टि करने की कोशिश की है कि कितने मृत्युदंड की पुष्टि हुई, कितनों की सज़ा में बदलाव किया गया और कितनों को अदालत द्वारा बरी कर दिया गया।

इस खंड में दी गई जानकारी विभिन्न हाई कोर्ट द्वारा सन 2000 से आगे मृत्युदंड के मामलों के आंकड़ों पर आधारित है। 24 हाई कोर्ट से प्राप्त जानकारी में से हमें मध्यप्रदेश हाई कोर्ट से कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई। कलकत्ता हाई कोर्ट द्वारा उपलब्ध कराई गई जानकारी इस में शामिल नहीं की गई है क्योंकि यह काफी हद तक अपूर्ण थी।[1] हमने यह भी पाया कि अन्य हाई कोर्ट से प्राप्त मृत्युदंड मामलों के संबंध में जानकारी या तो अपूर्ण है या आंशिक रूप से ग़लत। हमने अनुसंधान में कई क़ानूनी डेटाबेस और अख़बारों की रिपोर्ट का उपयोग कर के डेटा को और व्यापक बनाने का प्रयास किया है। हम श्री बिक्रम जीत बत्रा और डॉ युग मोहित चौधरी का शुक्रिया अदा करना चाहेंगे जिन्होंने अपीलीय अदालतों में मृत्युदंड मामलों की सूची संकलित कर साझा करवाई।

इस शोध के माध्यम से हमने पाया कि सन 2000 से 2015 के बीच 1,118 मामलों में 1,810 क़ैदियों को ट्रायल कोर्ट द्वारा मृत्युदंड की सज़ा सुनाई गई (कुछ मामलों में एक से अधिक आरोपियों को मौत की सज़ा सुनाई गई थी)। इनमें से हम 1,486[2] मृत्यु दंड मामलों के परिणाम का पता लगाने में सक्षम रहे और पाया कि केवल 4.9% (73 क़ैदी) सुप्रीम कोर्ट में अपील के फ़ैसले के बाद भी **(ग्राफिक 1)** मृत्यु की प्रतीक्षा में थे। कुल मौत की सज़ा प्राप्त क़ैदियों में से 65.3% (970 क़ैदियों) की मृत्युदंड की सज़ा कम कर दी गई 29.8% (443 क़ैदियों) को बरी कर दिया गया। अंततः 95.1% क़ैदियों पर लगाया गया मृत्युदंड अनुचित और क़ानूनी नाजायज़ घोषित किया गया।

1. कलकत्ता हाई कोर्ट द्वारा दी गई सूचीं के अनुसार, केवल 9 व्यक्तियो को 2000 से 2015 के बीच मे मृत्युदंड दिया गया था। परंतु पश्चिम बंगाल के पाँच मे से चार क़ैदी परियोजना के तहत साक्षात्कार मे षामिल थे लेकिन कलकत्ता हाई कोर्ट द्वारा प्रदान किए गए डेटा मे षामिल नही थे। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रदान की गई जानकारी अधूरी है।

2. हमने निम्न श्रेणी के मामलों को शामिल नहीं किया है: हाई कोर्ट या सुप्रीम कोर्ट में लंबित मामले; हाई कोर्ट द्वारा निर्णय दिए गए मामले पर जिनके परिणाम का पता नहीं लगाया जा सका; मुक़दमे जिनको फ़िर से ट्रायल के लिए भेजा गया हो या निचली अदालत में भेजे गए मामले; वह मामले जहाँ आरोपी के फ़रार होने के कारण फ़ैसला नहीं हो सका और वह मामले जहाँ आरोपी को हाई कोर्ट में किशोर के रूप में घोषित किया गया हो।

दो अदालतों द्वारा मौत की सज़ा लेकिन सुप्रीम कोर्ट द्वारा बरी

पिछले 15 वर्षों में 15 व्यक्तियों को ट्रायल कोर्ट द्वारा मौत की सज़ा सुनाई गई और हाई कोर्ट द्वारा इसकी पुष्टि की गई, परंतु अंततः उन्हें सुप्रीम कोर्ट द्वारा बरी कर दिया गया (**ग्राफिक 1**)।

(तालिका 1) में सुप्रीम कोर्ट द्वारा बरी किए जाने से पहले इन व्यक्तियों का मृत्युदंड पर बिताए गए औसत समय का विवरण है। हालाँकि इन व्यक्तियों की संख्या सुप्रीम कोर्ट द्वारा सज़ा कम होने वाली संख्या की तुलना में कम है फ़िर भी यह एक महत्वपूर्ण समूह का प्रतिनिधित्व करता है। इन मामलों में भारत के सुप्रीम कोर्ट का यह दृष्टिकोण था कि इन क़ैदियों के प्रति अपराध सिद्ध नहीं किया जा सका, जबकि क़ानूनी प्रक्रिया के दो पिछले चरणों में उन्हें दोषी पाया गया था और उन्हें मौत की सज़ा सुनाई गई थी। इन व्यक्तियों ने सुप्रीम कोर्ट द्वारा सभी आरोपों से बरी किए जाने से पहले औसतन साढ़े तीन वर्ष (41.1 महीने) मृत्युदंड सज़ा के अंतर्गत कारावास में बिताए। इस तरह के मामलों में गुजरात के व्यक्तियों ने औसत में अधिकतम समय गुज़ारा, यहाँ तक कि 4 क़ैदियों ने दो मामलों में औसत 6 साल और 7 महीने (79.3 महीने) सुप्रीम कोर्ट से बरी होने के पहले कारावास में बिताए। इन चार व्यक्तियों में से तीन क़ैदी (केस के 6 व्यक्तियों में से) वो थे जिनको सुप्रीम कोर्ट ने मई 2014 में, अक्षरधाम मंदिर आक्रमण–2002 के मामले में बरी करते हुए कहा था "निर्णय सुनाने से पहले हम उन जाँच एजेंसियों, जिन्होंने राष्ट्र की अखंडता एवं सुरक्षा जैसे गंभीर मामलों की जाँच की, उनकी अक्षमता के प्रति अपनी वेदना व्यक्त करना चाहते हैं। पुलिस ने असली अपराधी, जो कई अनमोल लोगों की मृत्यु के ज़िम्मेदार थे, उन्हें पकड़ने की बजाए निर्दोष लोगों को पकड़ा और उनके ख़िलाफ़ गंभीर आरोप लगाया जिसके कारण उन्हें सज़ा–ए–मौत मिली"।

तालिका 1:

सुप्रीम कोर्ट द्वारा बरी किए जाने से पहले मृत्युदंड के तहत कारागार में व्यतीत औसत समयः 2000–2015

राज्य	क़ैदियों की संख्या	हाई कोर्ट में कार्यवाही की औसत समयावधि (महीनों में)	सुप्रीम कोर्ट में कार्यवाही की औसत समयावधि (महीनों में)	बरी होने से पहले मृत्यु प्रतीक्षा में बिताई औसत समयावधि (महीनों में)
असम	1	16	14	30
गुजरात	4	39	40.3	79.3
झारखंड	1	9	10	19
केरल	4	18	17	35
ओडिशा	3	12	12	24
पंजाब	2	4	15.5	19.5
कुल योग	15	19.8	21.3	41.1

ग्राफिक 1: ट्रायल कोर्ट द्वारा मृत्युदंड पाए क़ैदियों का परिणाम

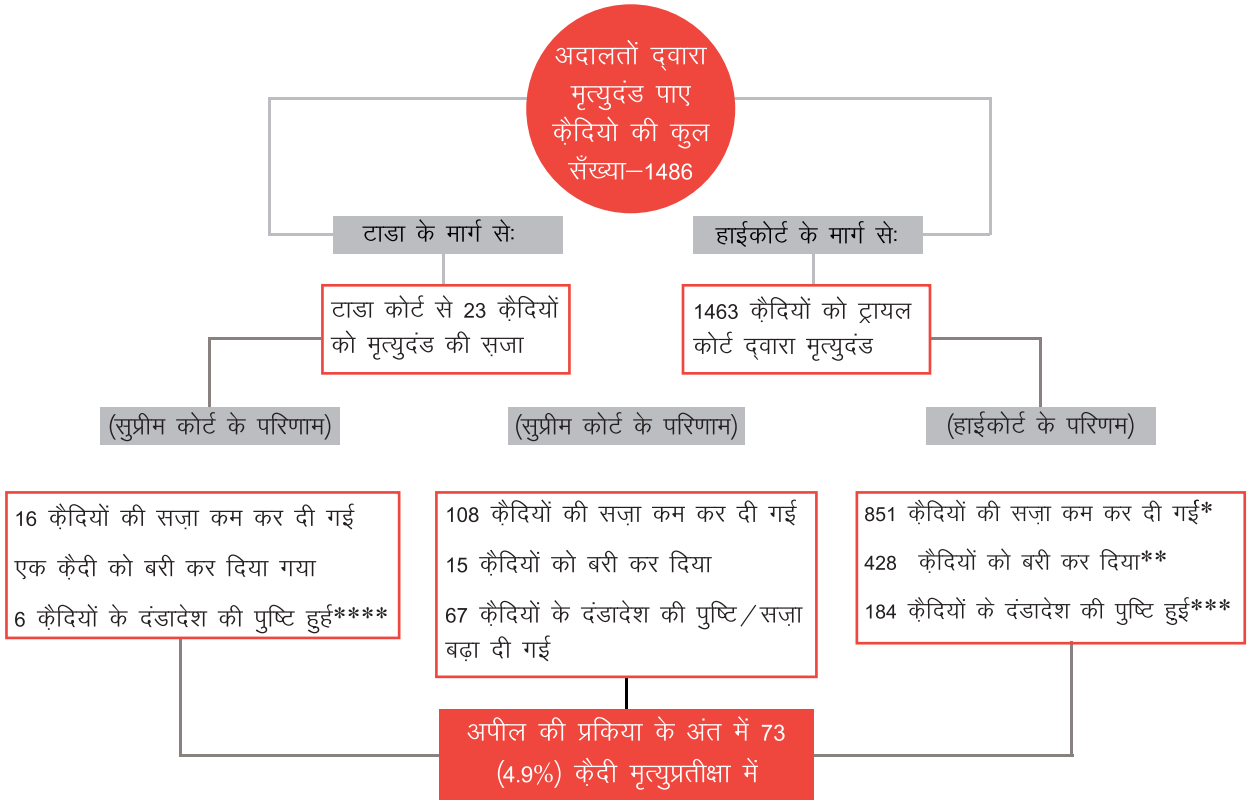

* 851 क़ैदियों में सें जिनकी सज़ा हाईकोर्ट ने कम कर दी थी, 5 की सज़ा सुप्रीम कोर्ट ने बढ़ा कर मृत्युदंड में बदल दी ।

** 428 क़ैदियों में सें जिनको हाईकोर्ट द्वारा बरी कर दिया गया था, 1 की सज़ा सुप्रीम कोर्ट ने बढ़ा कर मृत्युदंड में बदल दी ।

*** इस सँख्या में हाईकोर्ट द्वारा पुष्टि किए मामले शामिल नही किए गए हैं जो सुप्रीम कोर्ट में डेटा एकत्रित करते समय लम्बित थे।

**** टाडा कोर्ट द्वारा आजीवन कारावास पाए 4 क़ैदियों की सज़ा सुप्रीम कोर्ट द्वारा बढ़ा कर मृत्युदंड में बदल दी गयी । इन क़ैदियों को इस में शामिल नही किया गया है क्योकि उनको शरु में आजीवन कारावास की सज़ा सुनाई गई थी।

हमारा शोध इंगित करता है कि भारत में अक्सर औचित्य के बिना ट्रायल कोर्ट द्वारा मृत्युदंड की सज़ा दे दी जाती है। उनमें से 'विरल से विरलतम' मामलों को छान कर अलग करने के बोझ का एक बड़ा हिस्सा अपीलीय अदालतों के लिए छोड़ दिया जाता है। इस परियोजना के लिए फ़ील्ड वर्क के दौरान क़ैदियों और परिवारों के साथ बातचीत ने हमारे संदेह को वास्तविकता में बदल दिया कि ट्रायल कोर्ट के न्यायाधीश मृत्युदंड इसलिए देते हैं क्योंकि वे यह प्रकट नहीं करना चाहते कि अपराध के प्रति उनका रवैया नरम है। ग्राफिक 1 में प्रस्तुत आंकड़े इस वास्तविकता के सबूत हैं। भारत में मृत्युदंड प्रशासन का सबसे अनुचित हिस्सा उन व्यक्तियों की महत्वपूर्ण संख्या है, जो मृत्युदंड की सज़ा के तहत थे किन्तु ऊपरी अदालतों द्वारा उन्हें बरी कर दिया गया। निर्दोष घोषित होने से पहले सज़ा–ए–मौत के तहत कारावास में गुज़ारे महीने अकल्पनीय हैं। इससे आपराधिक न्याय व्यवस्था में उस संकट की हद और गहराई का पता चलता है जिसमें मृत्युदंड देने के कारणों का क़ानून से सम्बन्ध बहुत कम है।

उपसंहार

जिनके जीवन मृत्युदंड से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं हुए हैं, उन्हें इस बारे में बहुत कम जानकारी है कि भारत की आपराधिक न्याय प्रणाली में इस कठोर सज़ा को कैसे प्रबंधित किया गया है। मृत्युदंड पाने वाले वाले क़ैदियों और उनके परिवारों के साथ साक्षात्कार के माध्यम से हमने भारत में मौत की सज़ा के प्रशासन में शामिल विभिन्न प्रक्रियाओं की ओर ध्यान दिलाने की कोशिश की है।

हमने पाया है कि क़ानून के प्रावधानों और उसके वास्तविकताओं के बीच एक व्यापक अंतर है। बुनियादी सुरक्षा जैसे, अत्याचार के ख़िलाफ़ सुरक्षा का उल्लंघन, या मृत्युदंड मामलों की प्रक्रियाओं का प्रभावी होने में असफलता से आपराधिक न्याय प्रणाली के भीतर संकट की हद का पता चलता है। भारत में मृत्युदंड क़ानून के अत्यंत गंभीर नियम और निष्पक्ष सुनवाई संबंधी चिंताओं को यह कह कर नहीं टाला जा सकता कि आपराधिक न्याय प्रणाली की यह आम स्थिति है। उन मामलों में और भी गंभीर चिंतन की आवश्यकता है जहाँ मृत्युदंड, जो एक अनूठी सज़ा है, मिलने की संभावना है। सवाल यह उठता है कि मृत्यु–दंड देते समय क्या इस रिपोर्ट में प्रलेखित क़ानूनी उल्लंघनों की तीव्रता स्वीकार्य है या नहीं?

अदालतों के सामने सज़ा की प्रासंगिक जानकारी के अभाव को देखते हुए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि फ़ैसले अधिकतर अपराध की प्रकृति पर केंद्रित रहते हैं। अदालतों में मौत की सज़ा पर बहस में अक्सर व्यक्तियों को सिर्फ उनके अपराध से जाना जाता है, उनके अतीत या भविष्य के लिए उस बहस में कोई वास्तविक स्थान नहीं होता। मृत्युदंड जिस तरह प्रशासित है, उसमें सुधार के मुद्दों के साथ जुड़ाव की कमी एक बहुत ही महत्वपूर्ण चुनौती प्रस्तुत करता है। इस पर शायद ही कभी कोई ज़िक्र होता है कि मृत्युदंड पाने वाले क़ैदियों ने जेल में अपना समय कैसे बिताया है। जैसे–जैसे कोर्ट में अपील की प्रक्रिया से मामले आगे बढ़ते हैं और साल बीतते जाते हैं, व्यक्ति के मूल्यांकन में सुधार से संबन्धित सवाल सिर्फ उसके अपराध के रूप तक सीमित नहीं रखे जा सकते। जिस तरह सुप्रीम कोर्ट ने बचन सिंह के मृत्युदंड की संवैधानिकता को समर्थित किया, उसके अनुसार सज़ा में सुधार एक केन्द्रीय विचार है। आम तौर पर क़ैदी के सुधार की क्षमता का मूल्यांकन उसके व्यक्तित्व या इतिहास को देखते हुए नहीं होता है।

एक बार जेल के अंदर होने के बाद क़ैदियों के साथ जो बर्ताव किया जाता है, वह सुधार की प्रक्रिया को बढ़ावा नहीं देता। हालाँकि, जैसा कि पहले कहा गया है कि अपील की प्रक्रिया में कई साल लग जाते है, फ़िर भी जेल अक्सर मृत्युदंड पाए क़ैदियों को फाँसी का इंतज़ार करते हुए व्यक्तियों के रूप में देखते हैं। उन्हें वे अवसर उपलब्ध नहीं होते जो आम क़ैदियों को होते हैं,

जिसके कारण आगे किसी भी सुधार प्रक्रिया में बाधा आती है।

औपचारिक जेल नियम और अनौपचारिक भेदभावपूर्ण जेल प्रशासन द्वारा अपनाई प्रथाएँ सुनिश्चित करती हैं कि क़ैद की प्रतिकूल परिस्थितियाँ मृत्युदंड के तहत रहने की सज़ा के साथ जुड़ जाती हैं। मृत्युदंड पाए क़ैदियों को सिर्फ मौत के इंतज़ार करते व्यक्तियों के रूप में देखकर उन्हें शिक्षा और व्यवसाय के अवसरों से वंचित रखना अमानवीय है। यह जीवन और मौत के बीच अनिश्चितता के अनुभव को और भी तीव्र कर देता है, क्योंकि उनके पास सिर्फ अपनी मौत के इंतज़ार के अलावा और कुछ नहीं होता। हालाँकि, प्राथमिकता पर न होने के बावजूद इस अनुसंधान में ऐसी परिस्थितियों में रहने के मनोवैज्ञानिक परिणाम स्पष्ट हो गए हैं। आगे यह विषय अनुसंधान और उपचारात्मक उपायों के लिए एक प्राथमिकता बन जाना चाहिए। एक भारतीय जेल में मौत की सज़ा के तहत रहने के अनुभवों को निर्धारण करने वाले कारक यह प्रतिष्ठित करते हैं कि मृत्युदंड के तहत जो कष्ट झेला जाता है, वो और किसी भी प्रकार की सज़ा से गुणात्मक रूप से बिल्कुल अलग है।

समाज में जाति, धर्म, आर्थिक और शैक्षिक स्तर से कमज़ोर और उपेक्षित वर्गों पर मृत्युदंड के असमान प्रभाव के संदर्भ में व्यापक सामाजिक चिंताओं को उठाया गया है। कमज़ोर क़ैदियों के परिवार आपराधिक न्याय प्रणाली के बोझ के तहत और भी हाशिये पर हो जाते हैं। इस दंड के सामाजिक और आर्थिक परिणाम तथा अलग–अलग तरीक़ों से बहिष्कृत होना, इन परिवारों को और भी दरिद्र बना देते हैं। जैसे–जैसे मामले अपीलीय अदालतों और दया क्षेत्राधिकार के दायरे में चलते हैं, वैसे–वैसे परिवारों की आस्था आपराधिक न्याय व्यवस्था में और कम होती जाती है। क़ानूनी व्यवस्था की विडंबना है कि जैसे–जैसे एक क़ैदी की फाँसी का समय पास आता है, वैसे–वैसे न्याय का प्रशासन परिवारों के नज़रिए में अधिक अपारदर्शी होता जाता है। क़ैदियों के परिवारों को उच्च न्यायालय की कार्यवाही के बारे में पर्याप्त जानकारी मिलना मुश्किल हो जाता है। यह समस्या और भी गंभीर हो जाती है जब मामला सुप्रीम कोर्ट में चला जाता है। ऐसी स्थितियों में सुरक्षा के कोई प्रावधान नहीं हैं। नैतिक रूप से क़ैदी के परिवारों को स्वीकार्य संपार्श्विक लागत के रूप में देखने की प्रवृति को रोकना होगा।

इस परियोजना के दौरान क़ानूनी प्रतिनिधित्व की गुणवत्ता एक और गंभीर चिंता के रूप में उभरी। अपने वक़ीलों के साथ संवाद के अभाव, रहस्यमयी अदालती कार्यवाही और अपीलीय चरणों में उनके मामले में प्रगति का कोई वास्तविक ज्ञान न होना, मृत्युदंड पाए क़ैदियों के भय और दुःख को और बढ़ा देता है। बहुत बार क़ानूनी प्रतिनिधित्व को क़ानूनी सहायता प्रणाली

की कमियों के साथ मापा जाता है। परंतु इससे समस्या को ग़लत एवं उसकी तीव्रता को कम आँका जाता है। जैसा कि अध्याय 5, 'क़ानूनी प्रतिनिधित्व', में चर्चा की गई है कि 60% से अधिक मृत्युदंड क़ैदियों का प्रतिनिधित्व ट्रायल कोर्ट और उच्च न्यायालयों में निजी वक़ीलों ने किया था। यह अत्यंत चिंता का कारण है कि क़ैदियों और उनके परिवारों ने हर कीमत पर सरकारी क़ानूनी सहायता प्रणाली से बचना चाहा और निजी क़ानूनी प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए वे किसी भी हद तक गए। हालाँकि इससे उनकी आर्थिक स्थिति पर गहरा असर पड़ा होगा, बावजूद इसके उन्हें सक्षम क़ानूनी प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो पाया हो, ये ज़रूरी नहीं। यह स्पष्ट है कि मृत्युदंड के मामलों में क़ानूनी प्रतिनिधित्व की समस्या को क़ानूनी सहायता का निजी प्रतिनिधित्व के ख़िलाफ़ होना के रूप में नहीं देखा जा सकता किन्तु मृत्युदंड के मामलों में सक्षम क़ानूनी प्रतिनिधित्व की चिंता व्यापक है और इसको सिर्फ सरकारी क़ानूनी सहायता वक़ीलों तक सीमित नहीं रखा जा सकता है।

भारत में मृत्युदंड पर समकालीन चर्चाओं में यौन हिंसा और आतंकवाद के मुद्दों पर ज़बरदस्त फोकस है। इस रिपोर्ट में भी इन चिंताओं पर फोकस किया गया है। इस तरह के अपराधों के लिए तीव्र सामाजिक प्रतिक्रियाएँ रिपोर्ट में दी गई इन चिंताओं को और भी बढ़ा देती हैं। यह आपराधिक न्याय प्रणाली पर भी अधिक दबाव डालती हैं, जिसका परिणाम अक्सर हिरासत में हिंसा, अभियोक्ता का दुराचरण और निष्पक्ष जाँच का उल्लंघन होता है। उस संदर्भ में आतंकवाद को छोड़कर सभी अपराधों के लिए मौत की सज़ा को समाप्त करने के लिए भारत के विधि आयोग की 262वीं रिपोर्ट (अगस्त 2015) की सिफारिश को एक समझौते के रूप में संदेह के साथ देखा जाना चाहिए बनस्पत की ज़मीनी हकीकत पर आधारित सिफ़ारिश की तरह।

इस रिपोर्ट में जो आपराधिक न्याय प्रणाली के लिए सवाल उठाए हैं वे सिर्फ भारत के लिए ही नहीं हैं। मृत्युदंड के संदर्भ में अन्य देशों ने इन चुनौतियों का अलग ढंग से जवाब दिया है– मृत्युदंड का उन्मूलन (पूर्ण या आंशिक), फाँसी पर प्रतिबंध, व्यापक मृत्युदंड के विभिन्न पहलुओं से जुड़े आपराधिक न्याय प्रशासन में सुधार। दुनिया के विभिन्न हिस्सों में इस तरह की प्रतिक्रियाएं देखी गई हैं। एक वैश्विक प्रवृत्ति देखने को मिलती है जहाँ 193 में से 150 संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों ने (क़ानून या व्यवहार में) मृत्युदंड को समाप्त किया है। यहाँ तक कि संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन की तरह प्रतिधारण देशों में भी मृत्युदंड का काफी कम उपयोग देखने को मिलता है। निश्चित रूप से भारत में मृत्युदंड पर चर्चा को अपने स्थानीय संदर्भ पर महत्वपूर्ण वज़न देना चाहिए लेकिन साथ ही साथ आपराधिक

न्याय प्रणाली की प्रणालीगत वास्तविकताओं को भी इस संदर्भ का एक अनिवार्य हिस्सा बनाना चाहिए।

यह रिपोर्ट मृत्युदंड के उन्मूलन के मामले पर विचार करने के लिए नहीं है। मृत्युदंड के उन्मूलन पर एक व्यापक विचार की आवश्यकता है जो इस रिपोर्ट के दायरे से परे है, परंतु किसी भी चर्चा में इस रिपोर्ट में दिये आपराधिक न्याय प्रणाली के अंदरूनी संकटों पर विचार करना चाहिए। अभी भी मृत्युदंड पर इस रिपोर्ट द्वारा उठाए गए विभिन्न पहलुओं पर बहुत अधिक शोध की ज़रूरत है। मृत्युदंड पाए क़ैदियों का मानसिक स्वास्थ्य, मृत्युदंड और उनके अधिकारों के बीच संबंध, मृत्युदंड पर 'सार्वजनिक राय' के अर्थ की जाँच और ट्रायल कोर्ट की सज़ा की प्रथाओं का गहराई से विश्लेषण आदि कुछ ऐसे मुद्दे हैं, जिन पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है।

मृत्युदंड पर विचार–विमर्श में प्रणालीगत वास्तविकताओं को समझे बिना इस सज़ा के गुणों पर टिप्पणी की जाती है। बहुत लंबे समय से भारत में मृत्युदंड पर विचार–विमर्श में चिंता बनी हुई है। यह देखा गया है कि इन चर्चाओं के दौरान आपराधिक न्याय प्रणाली की वास्तविकताओं को मोटे तौर पर नज़रंदाज़ ही नहीं किया जा रहा है बल्कि उस पर बहुत विश्वास का निर्माण किया जा रहा है। इस सब के बीच ऊँची अभेद्य दीवारों के भीतर, हमारी नज़रों और मन से दूर, बंद दुनिया में बसने वाले लोगों की कहानियाँ नज़रंदाज़ हो रही हैं। यह रिपोर्ट उन आवाज़ों को आप तक पहुँचाने का हमारा प्रयास है ....

PROJECT 39A
EQUAL JUSTICE
EQUAL OPPORTUNITY

प्रोजेक्ट 39A नैशनल लॉ यूनिवर्सिटी, दिल्ली
सेक्टर 14, द्वारका,
नई दिल्ली - इंडिया
www.project39A.com
Twitter: @P39A_nlud
Email: p39a@nludelhi.ac.in

डिज़ाइन: जेनिसिस | 9810033682 | genesisiadvt@hotmail.com